समर्पण ।

जिनकी कृपासे
आज मुझे यह पुस्तक लेकर
मातृभाषा-हिन्दीके प्रेमी विद्वानोंकी
सेवामें
उपस्थित होनेका मौका मिला है;
उन्हीं
राजपूताना म्यूज़ियम, अजमेरके
सुपरिण्टेण्डेण्ट.
रायबहादुर पण्डित गौरीशंकर ओझाको
यह तुच्छ भेंट
सादर और सप्रेम
समर्पित करता हूँ ।

निवेदन ।

समस्त सभ्य जगत्में इतिहास एक बड़े ही गौरवकी वस्तु समझा जाता है; क्योंकि देश या जातिकी भावी उन्नतिका यही एक साधन है। इसीके द्वारा भूतकालकी घटनाओंके फलाफल पर विचार कर आगेका मार्ग निष्कण्टक किया जा सकता है। यही कारण है कि आजकल पश्चिमीय देशोंमें बालकोंको प्रारम्भसे ही अपने देशके इतिहासकी पुस्तकें और महात्माओंके जीवनचरित पढ़ाये जाते हैं। इसीसे वे अपना और अपने पूर्वजोंका गौरव अच्छी तरह समझने लगते हैं। हिन्दुस्तान ही एक ऐसा देश है कि जहाँके निवासी अपनी मातृभाषा-हिन्दीमें देशी ऐतिहासिक पुस्तकोंके न होनेसे इससे वञ्चित रह जाते हैं और आजकलकी प्रचलित अँगरेजी तवारीखोंको पढ़कर अपना और अपने पूर्वजोंका गौरव खो बैठते हैं। इस लिए प्रत्येक भारतीयका कर्तव्य है कि जहाँतक हो इस त्रुटिको दूर करनेकी कोशिश करे।

प्राचीन कालसे ही भारतवासी धार्मिक जीवनकी श्रेष्ठता स्वीकार करते आये हैं और इसी लिए वे मनुष्योंका चरित लिखनेकी अपेक्षा ईश्वरका या उसके अवतारोंका चरित लिखना ही अपना कर्तव्य समझते रहे हैं। इसीके फलस्वरूप संस्कृत-साहित्यमें पुराण आदिक अनेक ग्रन्थ विद्यमान हैं। इनमें प्रसंगवश जो कुछ भी इतिहास आया है वह भी धार्मिक भावोंके मिश्रणसे बड़ा जटिल हो गया है।

ईसाकी चौथी शताब्दीके प्रारम्भमें चीनी यात्री फाहियान भारतमें आया था। इसकी यात्राका प्रधान उद्देश्य केवल बौद्ध-धर्मकी पुस्तकोंका संग्रह और अध्ययन करना था। इसके यात्रा-वर्णनसे उस समयकी अनेक बातोंका पता लगता है। परन्तु इसके इतने बड़े इस सफरनामेमें उस समयके प्रतापी-राजा चन्द्रगुप्त द्वितीयका नाम तक नहीं दिया गया है। इससे भी हमारे उपर्युक्त लेख (प्राचीन कालसे ही भारतवासी मनुष्य-चरित लिखनेकी तरफ कम ध्यान देते थे) की ही पुष्टि होती है।

इस प्रकार उपेक्षाकी दृष्टिसे देखे जानेके कारण जो कुछ भी ऐतिहासिक सामग्री यहाँपर विद्यमान थी, वह भी कालान्तरमें लुप्तप्राय होती गई और होते होते दशा यहाँतक पहुँची कि लोग चारणों और भाटोंकी दन्तकथाओंको ही इतिहास समझने लगे।

आजसे १५० वर्ष पूर्व प्रसिद्ध परमार राजा भोजके विषयमें भी लोगोंको बहुत ही कम ज्ञान रह गया था। दन्तकथाओंके आधारपर वे प्रत्येक प्रसिद्ध विद्वान्को भोजकी सभाके नवरत्नोंमें समझ लेते थे। और तो क्या स्वयं भोज-प्रबन्धकार बल्लालको भी अपने चरितनायकका सच्चा हाल मालूम न था। इसीसे उसने भोजके वास्तविक पिता सिन्धुराजको उसका चचा और चचा मुञ्जको उसका पिता लिख दिया है। तथा मुञ्जका भोजको मरवानेका उद्योग करना और भोजका " मान्धाता स महीपतिः " आदि लिखकर भेजना बिलकुल बे-सिर-पैरका किस्सा रच डाला है। पाठकोंको

इसका खुलासा हाल इसी भागके परमार-वंशके इतिहासमें मिलेगा।

परन्तु अब समयने पलटा खाया है। बहुतसे पूर्वीय और पश्चिमीय विद्वानोंके संयुक्त परिश्रमसे प्राचीन ऐतिहासिक सामग्रीकी खासी खोज और छानबीन हुई है। तथा कुछ समय पूर्व लोग जिन लेखोंको धनके बीजक और ताम्रपत्रोंको सिद्धमन्त्र समझते थे उनके पढ़नेके लिए वर्णमालाएँ तैयार होजानेसे उनके अनुवाद प्रकाशित होगये हैं। लेकिन एक तो उक्त सामग्रीके भिन्न भिन्न पुस्तकों और मासिक-पत्रोंमें प्रकाशित होनेसे और दूसरे उन पुस्तकों आदिकी भाषा विदेशी रहनेसे अँगरेजी नहीं जाननेवाले संस्कृत और हिन्दीके विद्वान् उससे लाभ नहीं उठा सकते। इस कठिनाईको दूर करनेका सरल उपाय यही है कि भिन्न भिन्न स्थानों पर मिलनेवाली सामग्रीको एकत्रित कर उसके आधारपर मातृभाषा हिन्दीमें ऐतिहासिक पुस्तकें लिखी जाँय। इसी उद्देश्यसे मैंने 'सरस्वती'में परमारवंश, पालवंश, सेनवंश और क्षत्रपवंशका तथा काशीके 'इन्दु'में हैहयवंशका इतिहास लेख रूपसे प्रकाशित करवाया था और उन्हीं लेखोंको चौहान-वंशके इतिहास-सहित अब पुस्तक रूपमें सहृदय पाठकोंके सम्मुख उपस्थित करता हूँ। यद्यपि यह कार्य किसी योग्य विद्वान्की लेखनी द्वारा सम्पादित होनेपर विशेष उपयोगी सिद्ध होता, तथापि मेरी इस अनधिकार-चर्चाका कारण यही है कि जबतक समयाभाव और कार्याधिक्यके कारण योग्य विद्वानोंको इस विषयको हाथमें लेनेका अवकाश न मिले, *तब तकके लिए, मातृभाषा-प्रेमियोंका बालभाषितसमान*

इस लेखमालासे भी थोड़ा बहुत मनोरंजन करनेका उद्योग किया जाय।

यह लेखमाला १९१४ से सरस्वतीमें समय समयपर प्रकाशित होने लगी थी। इससे इसमें बहुतसे नवाविष्कृत ऐतिहासिक तत्त्वोंका समावेश रह गया है। परन्तु यदि हिन्दीके प्रेमियोंकी कृपासे इसके द्वितीय संस्करणका अवसर प्राप्त हुआ तो यथासाध्य इसमेंकी अन्य त्रुटियोंके साथ साथ यह त्रुटि भी दूर करनेका प्रयत्न किया जायगा।

इन इतिहासोंके लिखनेमें जिन जिन विद्वानोंकी पुस्तकोंसे मुझे सहायता मिली है उन सबके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना मैं अपना परम कर्तव्य समझता हूँ। उनके नाम पाठकोंको यथास्थान मिलेंगे।

जोधपुर
आषाढ शुक्ला १५ वि० सं० १९७७
ता० १ जुलाई १९२० ई०

निवेदक—
विश्वेश्वरनाथ रेउ।

भूमिका ।

लेखकका परिचय ।

मैं साहित्याचार्य पण्डित विश्वेश्वरनाथ शास्त्रीको संवत् १९६६ से जानता हूं, जब कि ये जोधपुर राज्यके आर्किऑलॉजिकल डिपार्टमेन्टमें नियत किये गये थे। इस महकमेका एक मेम्बर मैं भी था। इस महकमेमें इतिहाससे सम्बन्ध रखनेवाली डिंगल भाषाकी कविता संग्रह की जाती थी। इस महकममें काम करनेसे इनकी इतिहासमें रुचि हुई और समय पाकर वही रुचि क्रमसे उसके साधारण इतिहासकी हदको पारकर पुरातत्त्वानुसन्धान अर्थात् पुराने हालकी खोजके ऊँचे दरजे तक जा पहुँची, जो कि पुरानी लिपियोंमें लिखे संस्कृत प्राकृत आदि भाषाओंके शिलालेख ताम्रपत्र और सिक्कोंके आधारपर की जाती है।

ये संस्कृत और अँगरेजी तो जानते ही थे, केवल पुरानी लिपियोंके सीखनेकी आवश्यकता थी। इसके लिये ये मेरा पत्र लेकर राजपूताना म्यूज़ियम (अजायब घर) के सुपरिण्टेण्डेण्ट रायबहादुर पण्डित गौरीशंकर ओझासे मिले और उनसे इन्होंने पुरानी लिपियोंका पढ़ना सीखा।

जिस समय ये अजमेरमें पुरानी लिपियोंका पढ़ना सीखते थे उस समय इन्होंने बहुतसे सिक्कों आदिके कास्ट बनाकर मेरे पास भेजे थे, जिन्हें देखकर मैंने समझ लिया था कि ये भी ओझाजीकी तरह किसी दिन हिन्दी साहित्यको कुछ पुरातत्त्व-सम्बन्धी ऐसे रत्न भेट करेंगे, जिनसे हिन्दी साहित्यकी उन्नति होगी। मुझे यह देख बड़ा हर्ष हुआ कि मेरा वह अनुमान ठीक निकला।

इनका उद्योग देख ईश्वरने भी इनकी सहायता की और कुछ समय बाद इन्हें जोधपुर (मारवाड़) राज्यके अजायबघरकी ऐसिस्टेण्टीका पद मिला। उस समय यहाँका अजायबघर केवल नाम मात्रका था। परन्तु इनके उद्योगसे इसकी बहुत कुछ उन्नति हुई। इसमें पुरातत्त्वविभाग खोला गया और इसकी दिन दिन तरक्की

करता हुआ देख भारतगवर्नमेण्टने भी इसे अपने यहाँके रजिस्टर्ड म्यूजियमोंकी फेहरिस्तमें दाखिल कर लिया, जिससे इस अजायबघरको पुरातत्त्वसम्बन्धी रिपोर्टें, पुस्तकें और पुराने सिक्के वगैरा मुफ्त मिलने लगे। इसके बाद इन्हींके उद्योगसे जोधपुरमें पहले पहल राज्यकी तरफसे पबलिक लाइब्रेरी (सार्वजनिक पुस्तकालय) खोली गई और इन्हींकी देख रेखमें आज वह अजायबघरके साथ ही साथ नये ढंगपर सर्वांगसुन्दर पुस्तकालयके रूपमें मौजूद है।

इसी अरसेमें जोधपुर राज्यके जसवन्त-कालेजमें संस्कृतके प्रोफेसरका पद खाली हुआ और शास्त्रीजीने अपने म्यूजियम और लाइब्रेरीके कामके साथ साथ ही करीब सवा वर्ष तक यह कार्य भी किया। इनका बर्ताव अपने विद्यार्थियोंके साथ हमेशा सहानुभूतिपूर्ण रहता था और इनके समयमें इलाहाबाद यूनिवर्सिटीकी एफ० ए० और बी० ए० परीक्षाओंमें इनके पढ़ाये विषयोंका रिजल्ट सैन्ट पर सैन्ट रहा।

हालाँ कि इनको वहाँ पर अधिक वेतन मिलनेका मौका था, परन्तु प्राचीन शोधमें प्रेम होनेके कारण इन्होंने अजायब घरमें रहना ही पसन्द किया। इसपर राज्यकी तरफसे आप म्यूजियम (अजायब घर) और लाइब्रेरी (पुस्तकालय) के सुपरिण्टेण्डेण्ट नियत किये गये। तबसे ये इसी पद पर हैं और राज्यके तथा गवर्नमेण्टके अफसरोंने इनके कामकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की है।

इन्होंने सरस्वती आदि पत्रोंमें कई ऐतिहासिक लेखमालाएँ लिखीं और उन्हींका संग्रहरूप यह 'भारतके प्राचीन राजवंश' का प्रथम भाग है। इसमें हिन्दीके प्रेमियोंको भी आजसे करीब २००० वर्ष पहले तकका बहुत कुछ सच्चा हाल मालूम हो सकेगा।

क्षत्रप-वंश।

इस प्रथम भागमें सबसे पहले क्षत्रपवंशी राजाओंका इतिहास है। ये लोग विदेशी थे और जिस तरह जालोर (मारवाड़ राज्यमें) के पठान जो कि खान कहलाते थे हिन्दीमें लिखे पत्रों और परवानोंमें 'महाखान' लिखे जाते थे, उसी तरह क्षत्रपोंके सिक्कोंमें भी क्षत्रप शब्दके साथ 'महा' लगा मिलता है।

क्षत्रपोंके सिक्कों पर खरोष्ठी लिपिके लेख होनेसे इनका विदेशी होना ही सिद्ध होता है, क्योंकि ब्राह्मी लिपि तो हिन्दुस्तानकी ही पुरानी लिपि थी पर यूनानी

और खरोष्ठी लिपि सिकन्दरके पीछे उसी तरह इस देशमें दाखिल हुई थी, जिस तरह मुसल्मानी राज्यमें अरबी, फारसी और तुर्की आयुगी थी। मगर भारतकी असल लिपि ब्राह्मी होनेसे मुसल्मानी सिक्कोंपर भी कई सौ बरसों तक उसीके बदले हुए रूप हिन्दी अक्षर लिखे जाते थे।

सिकन्दरने ईरान फतह करके पंजाब तक दखल कर लिया था और अपने एशियाई राज्यकी राजधानी ईरानमें रखकर ईरानियोंने बडे राज्यको कई सरदारोंमें बाँट दिया था, जो सतरफ कहलाते थे। मुसल्मानी इतिहासोंमें इनको 'तवायफुल-मलूक' अर्थात् फुटकर राजा लिखा है। इनमें अशकानी घरानेके राजा मुख्य थे और वे ही हिन्दुस्थानमें आकर शक कहलाने लगे थ। उन्होंने ही विक्रम सम्वत् १३५ में शक सम्वत् चलाया था। यही शक सम्वत् अनन्तके मिले हुए क्षत्रपोंके १२ लेखो और (शक सम्वत् १०० से ३०४ तकके) सिक्कोंमें मिलता है। ३०० वर्षों तक क्षत्रपोंका राज्य रहा था।

ईरानमेंके पारसियोंके पुराने शिला-लेखोंमें और आसारे अजम नामक ग्रन्थमें क्षत्रप शब्दकी जगह क्षापथाय' शब्द लिखा है। यह भी क्षत्रप शब्दसे मिलता हुआ ही है और इसका अर्थ बादशाह है।

<u>खरोष्ठी</u> लिपि अरबी फारसीकी तरह दहनी तरफसे बाईं तरफको लिखी जाती थी। इसीका दूसरा नाम <u>गांधारी</u> लिपि भी था। सम्राट् अशोकके कई लेख इस लिपिमें लिखे गये हैं। परन्तु पारसके पुराने लेखोंकी लिपि हिन्दीकी तरह बाईंसे दाईं तरफको लिखी जाती थी।

इस लिपिके अक्षर कीलके माफिक होनेसे यह मीरवी नामसे प्रसिद्ध है। गुजरातके पारसियोंने इसका नाम कीलोरीकी लिपि रक्खा है। इससे भी वही मतलब निकलता है। उसका नमूना पृथक् दिया जाता है।

---

१ सतरफ शब्द बहुत पुराना है। जरदस्त नामेके तीसरे खण्डमें लिखा है कि बादशाह दराएस (दारा) ने जिसका फतहका झण्डा सिंध नदीके किनारेसे धिमली (यूरप) के किनारेतक फहराता था अपनी इस इतनी बड़ी अमल्दारीको २० सूबों-में बाँटकर एक एक सूबा एक एक सतरफको सौंप दिया था जिनमें यह खिराजके सिवाय दूसरी लागें भी लिया करता था।

'आसारे अजम' में लिखा है कि पहले 'मीखी' खतको आर्मा कहते थे। यह नाम ठीक ही प्रतीत होता है, क्योंकि इसमें लिखी हुई भाषा आर्यभाषा संस्कृत से मिलती हुई है।

दूसरी पुरानी लिपि पारसियोंकी पहलवी थी। इसके भी बहुतसे शिलालेख मिले हैं। इसके अक्षरोंका आकार कुछ कुछ खरोष्ठी अक्षरोंसे मिलता हुआ है। परन्तु यह दाहिनी तरफसे लिखी जाती थी।

तीसरी लिपि जद अवस्ताकी पुरानी प्रतियोंमें लिखी मिलती है। यह पुस्तक जरदश्ती अर्थात् अग्निहोत्री पारसियोंके धर्मकी है। इसकी लिपि अर्बी लिपिकी तरह दाहिनी तरफसे लिखी जाती थी। परन्तु इसमें लिखी इबारत संस्कृतसे मिलती है अरबीसे नहीं। बड़ा आश्चर्य है कि आर्यभाषा सिमेटिक (अरबी) जैसे अक्षरोंमें उल्टी तरफसे लिखी जाती थी। यह विषय बड़े वादविवादका है। इस लिये इस जगह इसके बारेमें ज्यादा लिखनेकी जरूरत नहीं है।

क्षत्रपोंके समयकी ब्राह्मी और खरोष्ठीका नक्शा तो साहित्याचार्यजीने दे दिया है परन्तु ऊपर पहलवी और जद अवस्ताका जिक्र आजानेसे इतिहासप्रेमियोंके लिये हम उनके भी नक्शे आगे देते हैं।

क्षत्रपोंके समयके अङ्कोंका हिसाब भी, विचित्र ही था। जैसा कि पुस्तकसे प्रकट होगा। मारवाड़ राज्यके (नागोर परगनेके मागलोद गाँवमेंके) दधिमथी माताके शिलालेखका सम्वत् २८९ भी इसी प्रकार खोदा गया है। जैसे —(२००)+(८०)+(९)

क्षत्रपोंके यहाँ बड़े भाईके बाद छोटा भाई गद्दी पर बैठता था। इसी तरह जब सब भाई राज कर चुकते थे तब उनके बेटोंकी बारी आती थी। यह रिवाज तुर्कोंसे मिलता हुआ था। टर्की (रूम) में वंशपरम्परासे ऐसा ही होता आया है और आज भी यही रिवाज मौजूद है। ईरानके तुर्क बादशाहोंमें यह विचित्रता सुना गई है कि जिस राजकुमारके मा और बाप दोनों राज घरानेके हों वही बापका उत्तराधिकारी हो सकता है। राजपूतानेकी मुसलमानी रियासत टोंकमें भी कुछ ऐसा ही कायदा है कि गद्दी पर नवाबका वही लड़का बैठ सकता है जो मा और बाप दोनोंकी तरफसे मीरखानी अर्थात् नवाब अमीरखाँकी औलादमें हो।

मीरवी लिपि के अक्षरों का नमूना ।
मीरवी अक्षर
नागरी अक्षर
मीरवी अक्षर
नागरी अक्षर
अ
ब
प
त
ट
स
ज
ख
द
म
मि
मु
र
ज़
ष
श
फ़
क
क़
म
न
व
ह
य

मीखीलिपि के एक लेख की नकल

अ	द	म	·	क	ओ	र
ओ	श	·	ख	श	आ	य
थ	ी (इ)	य	·	ह	ख	आ
म	न	ी (ई)	श	ी (ई)	य	

अक्षरान्तर और भाषान्तर :–

(अक्षरान्तर) – अदम कोरोश खशायथीय. हखामनीशीय

(भाषान्तर) – मैं हूं कोरोश बादशाह हखामनीशीय (वंश) का

क्षत्रपोंके सिक्कों आदिसे इस बातका पता नहीं चलता कि वे अपने देशसे कौनसा धर्म लेकर आये थे। सम्भव है कि वे पहले जरदस्ती धर्मके माननेवाले हों, जो कि सिकन्दरसे बहुत पहले ईरानमें जरदस्त नामके पैगम्बरने चलाया था। फिर यहाँ आकर वे हिंदू और बौद्ध धर्मको मानने और हिंदुओं जैसे नाम रखने लगे थे।

हैहय-वंश।

क्षत्रप-वंशके बाद हैहय-वंशका इतिहास दिया गया है। साहित्याचार्यजीने इसको भी नई तहकीकातके आधारभूत शिलालेखों और दानपत्रोंके आधार पर तैयार किया है। इतिहासप्रेमियोंको इससे बहुत सहायता मिलेगी।

यह (हैहय) वंश चन्द्रवंशीराजा यदुके परपोते हैहयसे चला है और पुराने जमानेमें भी यह वंश बहुत नामी रहा है। पुराणोंमें इसका बहुतसा हाल लिखा मिलता है। परन्तु इस नये सुधारके जमानेमें पुराणोंकी पुरानी बातोंसे काम नहीं चलता। इस लिये हम भी इस वंशके सम्बन्धमें कुछ नई बातें लिखते हैं।

हैहयवंशके कुछ लोग महाभारत और अग्निपुराणके निर्माणकालमें शौण्डिक (कलाल) कहलाते थे और कल्चुरी राजाओंके ताम्रपत्रोंमें भी उनको हैहयोंकी शाखा लिखा है। ये लोक शैव थे और पाशुपत पंथी होनेके कारण शराब अधिक काममें लाया करते थे। इससे मुमकिन है कि ये या इनके सम्बंधी शराब बनाते रहे हों और इसीसे इनका नाम कल्चुरी हो गया हो। संस्कृतमें शराबको ' कल्य ' कहते हैं और ' चुरि'का अर्थ ' चुआनेवाला ' होता है।

इनमें जो राजघरानेके लोग थे वे तो कलचुरी कहलाते थे और जिन्होंने शराबका व्यापार शुरू कर दिया वे ' कल्यपाल ' कहलाने लगे, और इसीसे आजकलके कलवार या कलाल शब्दकी उत्पत्ति हुई है[२]।

जातियोंकी उत्पत्तिकी खोज करनेवालोंको ऐसे और भी अनेक उदाहरण मिल सकते हैं। राजपूतानेकी बहुत सी जातियाँ अपनी उत्पत्ति राजपूतोंसे ही बताती हैं। वे पूरबकी कई जातियोंकी तरह अपनी वंशपरम्पराको पुराने क्षत्रियोंसे मिलनेका दावा नहीं करतीं जैसे कि उधरके कलवार, शौण्डिक और हैहयवंशी होनेका करते हैं।

---

(१) उर्दूमें छपी हिन्दू क्लासिकिल डिक्शनरी, पे० २९६

(२) जबलपुर-ज्योति, पृ० २४

मारवाड़में कलालोंकी एक शाखा है वह अपनी उत्पत्ति टाक जातिके राजपूतोंसे बतलाती है[१]।

इसी प्रकार गुजरातके बादशाह भी 'टाक-गोत' के कलालोंमेंसे ही थे, और शराबके व्यापारसे ही इनको बादशाही मिली थी। इनके इतिहासोंमें भी इनको 'टाक' लिखा है, और इनके कलाल कहलानेका यह सबब दिया है कि, इनका मूलपुरुष साहू वजीह-उल्मुल्क, जो कि फीरोजशाहका साला था अमीरोंमें दाखिल होनेसे पहले उसका शराबदार (*शराबके कोठारका अधिकारी*) था।

इसी प्रकार नागोरके पुराने रईस खानजादे भी कलाल ही थे।

अबतक एक भी ऐसी किताब नहीं मिली है जो हिंदुस्तानके पुराने राजाओंके समयके राज्यप्रबन्धका हाल बतलावे। पर जब अकबर जो कि, दो पीढ़ीका ही तातारसे आया हुआ था और जिसके राज्यका सब इन्तिजाम यहींके हिन्दू मुसलमान विद्वानोंके हाथमें था, *अपने प्रबन्धके लिये अच्छा गिना जाता है*, तब फिर पीढ़ियोंसे जमे हुए विद्वान् राजाओंका प्रबंध तो क्यों नहीं अच्छा होगा। इसके उदाहरणस्वरूप हम राजाधिराज कलचुरी कर्णदेवके एक दानपत्रसे प्रकट होने वाली कुछ बातें लिखते हैं —

"राज्यका काम कई भागोंमें बंटा हुआ था, जिनके बड़े बड़े अफसर थे। एक बड़ी राजसभा थी, *जिसमें बैठ कर राजा, युवराज और सभासदोंकी सलाहसे, काम* किया करता था। इन सभासदोंके ओहदे अकबर वगैरा मुगल बादशाहोंके अरकान दौलत (राजमंत्रियों) से मिलते हुए ही थे —

१ महामंत्री—वकील-उल-सल्तनत (प्रतिनिधि)

२ महामात्य—वजीर-ए आजम।

३ *महासामन्त—सिपहसालार (अमीर-उल-उमरा, खानखानाँन)*।

४ महापुरोहित—सदर-उल-सिदूर (धर्माधिकारी)।

५ महाप्रतीहार—मीरमंजिल।

६ महाक्षपटलिक—मीरमुनशी (मुनशी-उल-मुल्क)।

७ महाप्रमात—मीरअदल।

८ महाश्वसाधनिक—मीर-आखुर (अखता बेगी)।

---

(१) मारवाड़की मर्दुमशुमारीकी रिपोर्ट सन् १८९१, पृ० ३३

९ महाभाण्डागारिक—दीवान खज़ाना ।

१० महाध्यक्ष—नाज़िरकुल ।

इसी प्रकार हरएक शासन विभागके लेखक (अहल्कार) भी अलग अलग होते थे; जैसे धर्मविभागका लेखक-धर्मलेखी ।"

उसी ताम्रपत्रसे यह भी जाना जाता है कि जो काम आजकल बंदोबस्तका महकमा करता है वह उस समय भी होता था। गाँवोंके चारों तरफ़की हद्दें बँधी होती थीं । जहाँ कुदरती हद् नदी या पहाड़ वगैरहकी नहीं होती थी वहाँ पर खाई खोदकर बना ली जाती थी । दफ्तरोंमें हदबंदीके प्रमाणस्वरूप बस्ती, खेत, बाग, नदी, नाला, झील, तालाब, पहाड़, जंगल, घास, आम, महुआ, गढ़े, गुफा वगैरह जो कुछ भी होता था उसका दाखला रहता था, और तो क्या आने जानेके रास्ते भी दर्ज रहते थे । जब किसी गाँवका दानपत्र लिखा जाता था तब उसमें साफ़ तौरसे खोल दिया जाता था कि किस किस चीज़का अधिकार दान लेने वालेको होगा और किस किसका नहीं ।

मन्दिर, गोचर और पहले दान की हुई ज़मीन उसके अधिकारसे बाहर रहती थीं ।

कल्चुरियोंका राज्य, उनके शिलालेखोंमें, त्रिकलिंग अर्थात् कलिंग नामके तीन देशोंपर और उनके बाहर तक भी होना लिखा मिलता है । सम्भव है कि यह बढ़ाकर लिखा गया हो । पर एक बातसे यह सही जान पड़ता है । वह यह है कि इन्होंने अपने कुलगुरु पाशुपतपंथके महन्तोंको ३ लाख गाँव दान दिये थे । यह संख्या साधारण नहीं है । परन्तु वे महन्त भी आजकलके महन्तों जैसे स्वार्थी नहीं थे बल्कि गुणी, साहित्यसेवी, उदार और परमार्थी थे । वे अपनी उस बड़ी भारी जागीरकी आमदनीको लोकहितके कामोंमें लगाते थे । इन महन्तोंमेंसे विश्वेश्वर शंभु नामक महन्त; जो कि संवत् १३०० के आसपास विद्यमान् था बड़ा ही सज्जन, सुशील और धर्मात्मा था । इसने सब जातियोंके लिये सदावत खोल देनेके सिवाय दवाख़ाना, दाईख़ाना और महाविद्यालयका भी प्रबन्ध किया था । संगीतशाला और नृत्यशालामें नाच और गाना सिखानेके लिये काश्मीर देशसे गवैये और कत्थक बुलवाये थे[1] ।

---

(१) जबलपुर-ज्योति ।

जब पुरुषार्थ की हुई जातिमें ऐसा होता था तब कल्चुरी राजाके अपने राज्यमें तो और भी बड़े बड़े ऐतिहासिक काम होते होंगे। परन्तु उनका लिखा पूरा विवरण न मिलनेसे लाचारी है।

कलचुरियोंके राज्यके साथ ही उनकी जाति भी जाती रही। अब कहीं कोई उनका नाम लेनेवाला नहीं सुना जाता है। हैहयवंशके कुछ लोग जरूर मध्यप्रदेश, मयुक्तप्रान्त और बिहारमें पाये जाते हैं। हमको मुन्शी माधव गोपालसे पता लगा है कि रतनपुर (मध्यप्रदेश) में हैहयवंशियोंका राज्य उनके मूल पुरुष सिद्धनामसे चला आता था। पर यहाँके ५६ वें राजा रघुनाथसिंहको मरहठोंने रतनपुरसे निकाल दिया। उसकी औलादमें रतनगोपालसिंह इस समय उन्हीं जिलेमें ८ गाँवोंके जागीरदार हैं। यह रतनपुर सिद्धनामके बेटे मोरध्वजका बसाया था।

मयुक्तप्रान्तमें हल्दी जिला बलियाके राजा हैहयवंशी हैं। परन्तु वे अपनेको सूरजवंशी बताते हैं[1]।

ऐसे ही कुछ हैहयवंशी बिहारमें भी सुने जाते हैं, जिनके पास कुछ जमींदारी रह गई है।

परमार-वंश।

हैहयवंशके बाद परमार वंशका इतिहास लिखा गया है।

भीनमाल (मारवाड) में पहले पहल इस (पवाँर) वंशका राज्य कृष्णराजने कायम हुआ था। यह आबूके राजा धंधुकका बेटा और देवराजका पोता था। परमारोंके आबू पर अधिकार करनेसे पहले हस्तिकुंडीके हथुंडिये राठोड़ोंने भीलोंसे छीनकर उस प्रदेश पर अपना राज्य कायम किया था।

आबूके शिलालेखोंमें परमारोंके मूल पुरुषका नाम धूमराज लिखा है। मारवाड और मालवेके पवाँर राजा भी उसीकी औलादमें थे। हम ऊपर लिख चुके हैं कि कृष्णराजने भीनमाल (मारवाड) में अपना राज्य जमाया। वहींसे इनकी कई शाखाओंने निकल कर जालोर, सिवाना, कोटकिराडू, पूगल, लुद्रवा, पम्कर, मण्डोर आदि गाँवोंमें अपना राज्य कायम किया। कुछ समय बाद परमारोंका आबूवाली

---

(१) सहीकाए जरीन, जिल्द १।

मुख्य शाखाका राज्य चौहानोंने छीन लिया और इनकी राजधानी चन्द्रावतीको बरबाद कर दिया।

जालोर और सिवानेकी शाखाका राज्य भी चौहानोंने ले लिया।

कोटकिराडूमें धरणीवाराह बड़ा राजा हुआ। उसकी औलादके पवाँर वाराही पवाँरके नामसे प्रसिद्ध हुए। इसके पीछे पूँगल, लुद्रवा और मण्डोर पर भाटियोंने अपना अधिकार कर लिया और किराडूको भी उजाड़ दिया। परन्तु धरणीवाराहके पोते वाहड़रावने भाटियोंको मारवाड़से निकाल कर किराडूसे ७ कोस दक्खनकी तरफ बाड़मेर शहर बसाया। इसका बेटा वाहड़राव और वाहड़रावका सॉखला हुआ। इससे सॉखला शाखा निकली और इसके भाई सोटाके वंशज सोटा पवाँर कहलाने लगे।

सॉखला शाखाने मारवाड़की उत्तर थलीमेंके ओसिया, रुन, जाँगलू वगैरह पर अपना राज्य कायम किया, जिसको अन्तमें राठोडोंने ले लिया। आज कल ये गाँव जोधपुर और बीकानेरके राज्योंमें हैं। सॉखलाके भाई सोटाने सूमरा भाटियोंसे धाटका राज लेकर ऊमरकोटमें अपनी राजधानी कायम की। अकबर यहीं पर पैदा हुआ था। उसवक्त राना परसा वहाँका राजा था। बादमें यह राज्य सिंधके मुसलमानोंके अधिकारमें चला गया और उनसे राठोडोंने छीन लिया, जो अब अँगरेजी सरकारके अधिकारमें है और उसकी एवजमें भारत सरकार जोधपुर दरबारको १०००० रुपये सालाना रॉयल्टीके रूपमें देती है।

वाहड़रावका बेटा अनन्तराव सॉखला था। इसने गिरनार (गुजरात) के राजा खैंगारको पकड़ कर पिंजरेमें कैद कर दिया था।

सॉखलाने ओसियाँमें आनेसे पहले ही इस नगरको उप्पलदेव पवाँरने बसाया था। यह उप्पलदेव मण्डोरके राजाका साला था और भीनमालमें कुछ गडबड होनेके कारण मंडोरमें आगया था। यहाँ पर इसके बहनोईने मंडोरसे बीस कोस उत्तरका एक बड़ा थल जो उजाड़ पड़ा था इसे रहनेको दे दिया। यहीं पर उप्पलदेवने ओसियाँला नामका एक शहर बसाया। यही शहर अब ओसियाँ नामसे प्रसिद्ध है। यहाँ (ओसियाले) के पवाँर धाँभू कहलाते थे। शायद भीनमालके

(१) मारवाड़ी भाषामें ओसियाला शरणागतको कहते हैं।

पवाँर भी धंधुककी औलादमें होनेके कारण ही धाँधू कहलाते होंगे । धाँधू पवाँरोंके राज्य पर भाटियोंने कब्जा कर लिया और उनसे इसे साँखलोंने छीन लिया ।

ओसियाँके सिचियाय माताके विशाल मन्दिरसे जाना जाता है कि उपलदेव पवाँरका राज्य बहुत बड़ा था, क्यों कि यह मन्दिर लाखों रुपयेकी लागतका है और एक किलेके समान अब तक साबित खड़ा है ।

भीनमालमे पवाँरोंकी और भी शाखाएँ निकली थी । उनमेंसे कालमा नामकी शाखाका राज्यसाचोरमें था और काबा शाखाका राज्य भीनमालके पास रामसेन वगैरह कई ठिकानोंमें था। कुछ समय बाद कालमा पवाँरोंसे तो चौहानोंने राज्य छीन लिया और काबा शाखावाले अब तक रामसेन वगैरह (जसवन्तपुराके) गाँवोंमें मौजूद हैं ।

इस प्रकार परमारोंके मारवाड़मेंके इतने बड़े राज्यमेंसे अब केवल काबा पवाँरोंके पास थोड़ीभी जमीदारी रह गई है ।

मालवेमें भी परमारोंका विशाल राज्य था । जिसके बाबत ख्यातोंमें यह सोरठा लिखा मिलता है:—

" पिरथी बड़ा पवाँर पिरथी परमारां तणी ।
एक उजीणी धार दूजो आबू बैसणो ॥ "

यह राज्य मुसलमान बादशाहोंकी चढ़ाइयोंसे बरबाद हो गया । मगर वहाँसे निकली हुई कुछ शाखाएँ अब तक नीचे लिखी जगहोंमें मौजूद हैं:—

मालवा—धार और देवास ।

बुंदेलखण्ड—अजयगढ़ ।

मध्यभारत—राजगढ़ और नरसिंहगढ़ । ये उमटशाखाके पवाँर हैं ।

बिहारमें—भोजपुरिया, बक्सरिया वगैरह परमारोंके राज्य डुमराव आदिमें हैं ।

संयुक्तप्रान्तमें—टिहरी गढ़वाल (स्वतन्त्र राज्य) ।

बागड़के पवाँरोंका राज्य गुहिलोतोंने ले लिया था । यहीं पर अब डूँगरपुर और बाँसवाड़ेकी रियासतें हैं ।

पालवंश।

परमारोंके बाद पालवंशियोंका इतिहास है।

इन्होंने अपने दानपत्रोंमें सारे हिन्दुस्तानको फतह करने या उसपर हुकूमत करनेका दावा किया है। पर असलमें ये बंगाल और विहारके राजा थे। शायद कभी कुछ आगे भी बढ़ गये हों।

इनमेंके पहले राजा गोपालके वर्णनमें आईने-अकबरी और फरिश्ताका भी नाम आया है, कि वे गोपालको भूपाल बताते हैं। फरिश्ताने भूपालका ५५ वर्ष राज्य करना लिखा है। यही बात उससे पहलेकी बनी आईने-अकबरीमें भी दर्ज है। पर गोपाल (भूपाल) धर्मपाल और देवपालके पीछेके नाम आईने-अकबरीसे नहीं मिलते हैं। उसमें भूपालसे जगपाल तक १० राजाओंका ६९८ बरस राज्य करना और जगपालके पीछे सुखसेनका राजा होना लिखा है।

आईने अकबरीमें १० राजाओंके नाम इस प्रकार हैं—

१ भूपाल	६ विग्रपाल
२ धर्मपाल	७ जैपाल
३ देवपाल	८ राजपाल
४ भोपतपाल	९ भोपाल
५ धनपतपाल	१० जगपाल

सेनवंश।

पालवंशके बाद सेनवंशका इतिहास लिखा गया है। शेख अबुल फज्लने भी आईन अकबरीमें पालवंशी राजाओंके पीछे सेनवंशी राजाओंकी वंशावली दी है। परन्तु उनको कायस्थ लिखा है। उसने पालवंशियों और उनके पहलेके दो दूसरे राजघरानोंको भी, जो महाभारतमें काम आनेवाले राजा भगदत्तकी सन्तानके पीछे बंगालके सिंहासन पर बैठते रहे थे अपनी उस समयकी तहकीकातसे कायस्थ ही लिखा है। अब जो दानपत्रों या शिलालेखोंमें पालोंको सूरजवंशी और सेनोंको चन्द्रवंशी लिखा मिलता है शायद वह ठीक हो। परन्तु लेखोंमें जिस तरह और और बातें बढ़ावा देकर लिखी हुई होती हैं उसी तरह वंशोंका भी हाल होता है। यहाँ तक कि एक ही घरानेको किसी लेखमें सूर्यवंशी, किसीमें चन्द्रवंशी और

किसीमें अतिशयदी जिया मिलता है। इसकी मिसाल इसी इतिहासमें जगह जगह मिल सकती है।

बंगालमें वैद्य ही सेनवंशी नहीं है कायस्थ भी हैं, जिनका राज्य चन्द्रदीप जिले बाकरगंजमें मुसल्मानोंसे पहलेसे चला आता था। पर अब अंगरेजी अमलदारीमें करजा ज़ियादा होनेसे बरबाद हो गया है[१]।

आइने अकबरीमें नीचे लिखे ७ सेनवंशी राजाओंका १०६ बरस तक राज करना लिखा है —

१ सुखसेन
२ बल्लालसेन (गौडका किला इसीका बनवाया हुआ था)
३ लखमनसेन
४ माधवसेन
५ केशवसेन
६ सदासेन
७ राजा नौजा (दनौजा माधव)

जब राजा नौजा मर गया तब राय लखमनसेनका बेटा लखमनिया राजा हुआ। उसकी राजधानी नदियामें थी। ज्योतिषियोंने उसको राज्य और धर्म पलट जानेकी खबर दी थी और सामुद्रिक शास्त्रके अनुसार इन कामोंका करनेवाला बख्तियार खिलजी बताया था। यह बख्तियार सुलतान शहाबुद्दीन गोरीका गुलाम था और सिर्फ १८ सवारोंसे बिहार जैसे बड़े सूबेको फतह कर चुका था। राजा ने तो ज्योतिषियोंके कहने पर ध्यान नहीं दिया पर वे लोग वहमके मारे नदियासे निकल भागे और अपने साथ ही दूसरोंको भी कामरूप और जगन्नाथपुरीकी तरफ लेते गये। यह सुन जब खिलजीबच्चा बंगालमें आया तब राजाको भी भागना पड़ा। खिलजीने नदियाको उजाड़ कर लखनौती बसाई जिसकी नींव राजा लखमनसेन डाल गया था। सुल्तान कुतुबुद्दीन ऐबकने भी जो संवत् १२४९ से शहाबुद्दीन गोरीका नायबराय था, लखनौतीको बखतियारकी जागीरमें लिख दिया। कुतुबुद्दीनकी ही मददसे बखतियारने संवत् १२५५ में बिहार और संवत् १२५६ में

---

(१) कायस्थकुलदर्पण (बंगला)।

बगाल फतह किया था। परन्तु इस पर भी सन्तोष न होनेके कारण उसने कामरूप, आसाम और तिब्बत पर भी चढाई कर दी, जहाँसे हारकर लौटते हुए हिजरी सन् ६०० (वि० स० १२६१) में देवकोटमें वह अपने ही एक अमीर अलीमर दानके हाथमें मारा गया।

इन सनवशर इतिहासमें दूसरा वादविवादका विषय लखमनसन सवत् है। पहले तो यह सवत् बंगाल और बिहारमें चलता था पर अब सिर्फ मिथिलामें ही चलता है। अकबरनामेसे जाना जाता है कि सम्राट् अकबरने जब अपना सन् 'इलाही सन्' के नामसे चलाया था तब उसके वास्ते एक बहुत बडा फरमान् निकाला था। उसमें लिखा है कि हिंदुस्तानमें कई तरहके सवत् चलते हैं। उनमे एक लखमनसेन सवत् बगालमें चलता है और वहाके राजा लखमनसेनका चलाया हुआ है जिसके अबतक हिजरी सन् ९९२ विक्रमसवत् १६४१ और शालिवाहनके शक सवत् १५०६ में ४६५ बरस बीते हैं। इससे जाना जाता है कि लखमनसेन सवत् विक्रमसवत् ११७६ और शक सवत् १०४१ में चला था। परन्तु बाँकीपुरकी द्विजपत्रिकामें इसके विरुद्ध शक सवत् १०२८ में लखमनसनका बगालके राजसिंहासन पर बैठकर अपना सवत् चलाना लिखा है। इन दोनोंमें १३ बरसका फर्क पडता है क्योंकि श० स० १०२८ वि० स० ११६३ में था। अकबरनामेके लेखमे इस समय वि० स० १९७७ में लखमनसेन सवत् ८०१ और द्विजपत्रिकाके हिसाबसे ८१४ होता है। न मालूम मिथलाके पचागोंमें इसकी सही सख्या आजकल क्या है। आरा नागरीप्रचारिणीपत्रिकाके चौथे बरसकी तीसरी सख्यामें विद्यापति ठाकुरके शासन गाँव विसपीका दानपत्र छपा है। उसके गद्यभागके अन्तमें तो लक्ष्मणसेन सवत् २९३ सावन सुदी ७ गुरौ खुदा है। परन्तु पद्यविभागके श्लोकोंके नीचे तीन सवत् इस तौरसे खुदे है —

सन् ८०७
सवत् १४५५
शके १३२९

ये तीनों सवत् और चौथा लक्ष्मणसेन सवत् ये चारों ही सवत् बेमेल है, क्योंकि ये गणितसे आपसमें मेल नहीं खाते। यदि सवत् १४५५ और शके

१३२९ मेंसे २९३ निकालें तो क्रमश ११६२ और १०३६ बाकी रहते हैं। परन्तु एक तो वि० स० और श० स० का आपसका अन्तर १३५ है और ऊपर लिखे दोनों सवतोंका अन्तर १२६ ही आता है। दूसरा पहले लिखे अनुसार अगर लक्ष्मणसेन सवत्का प्रारम्भ वि० स० ११७६ और श० स० १०४१ में मानें तो इन दोनों (वि० स० ११६१ और श० स० १०३६) में क्रमश १४ और ५ का फर्क रहता है। इसलिये विद्यापतिके लेखके सवत् ठीक नहीं हो सकते। लक्ष्मणसेन सवत् २९३ में अकबरनामेके अनुसार विक्रमसवत् १४६९ और श० स० १३३४ और द्विजपत्रिकाके लेखसे वि० स० १४५६ और श० स० १३२१ होते हैं।

ऊपरके लेखमें सन् ८०७ के पहले सन्का नाम नहीं दिया है। अगर इसको हिजरी सन मानें तब भी वि० स० १४५५ में हि० सं० ८०० था ८०७ नहीं। इससे जाहिर होता है कि आरा नागरीप्रचारिणीसभाकी पत्रिकामें इन बातों पर गौर नहीं किया गया है।

मग या शाकद्वीपीय ब्राह्मण।

सेनवशके इतिहासमें मग या शाकद्वीपीय ब्राह्मणोंका भी वर्णन आगया है। राजपूतानेके सेवक और भोजक जातिके लोग अपनेको ब्राह्मण कहते हैं। परन्तु जैनमन्दिरोंकी सेवा करने और ओसवाल बनियोंकी वृत्तिके कारण उनके घरकी रोटी खानेसे दूसरे ब्राह्मण उनको अपने बराबर नहीं समझते। जब सवत् १८९१ की मरदुमशुमारीमें पीछे मारवाडकी जातियोंकी रिपोर्ट लिखी गई थी तब सेवकोंने लिखवाया था कि—" भरतखण्डके ब्राह्मण तो भूदेव हैं और सूर्यमण्डलसे उतरे हुए मग ब्राह्मण शाकद्वीपके रहनेवाले हैं। यहाँके ब्राह्मण मन्दिरोंकी पूजा नहीं करते थे। इसीलिये अपने बनवाये सूर्यके मन्दिरकी पूजा करनेके वास्ते कृष्णका पुत्र साम्ब शाकद्वीपसे कई मग ब्राह्मणोंको लाया था और उनका विवाह भोज जातिकी कन्याओंसे करवाके यहाँके ब्राह्मणोंमें मिला दिया था। इससे हमारा नाम सेवक और भोजक पड गया। नहीं तो असलमें हम शाकद्वीपीय ब्राह्मण हैं, और सूरजके बेटे जरशस्तसे हमारी उत्पत्ति हुई है तथा आदित्यशर्मा हमारी उपाधि है। इसके प्रमाणमें हस्तलिखित भविष्यपुराणके ये श्लोक हैं —

जरशस्त इतिख्यातो वचार्थोऽयातिमागतः ।
पुनश्चभूयः संप्राप्य यथार्थं लोकपूजितः ॥
भोजकन्या सुजातत्वाद्भोजकास्तेन ते स्मृताः ॥
आदित्यशर्मा यः लोके वचार्थोऽयातिमागताः ॥

इसी विषयमें बम्बईमें छपे भविष्यपुराणमें इस प्रकार लिखा है —

जरशब्द इतिख्यातो वंशकीर्तिविवर्धन ॥ ४४ ॥
अग्निजात्यामघाप्रोक्ताः सोमजात्या द्विजातय. ।
भोजकादित्य जात्याहि दिव्यास्ते परिकीर्तिता. ॥ ४५ ॥

—अध्याय १३९ ।

आगे चलकर उसीके अध्याय १४० में लिखा है —

भोजकन्या सुजातत्वाद्भोजकास्तेन ते स्मृताः ॥ ३८ ॥

जरका अर्थ बड़ा नामवाला होता है ।

बहुतसे ऐतिहासिक जरशस्त, मग और शाकद्वीपी शब्दोंसे इनका पारसी होना मानते हैं, क्यों कि जरशस्त (जरदश्त) पारसियोंके पैगम्बरका नाम था । इसीने ईरानमें आगकी पूजा चलाई थी जिसको पारसी लोग अबतक करते आते हैं । शेख-सादीने आग पूजनेवालेका नाम मग लिखा है —

अगर सद साल मग आतिश फ़रोज़द ।
चो आतिश अंदरो उफ़तद बिसोज़द ॥

इस बारेमें अधिक देखना हो तो मारवाड़की जातियोंकी रिपोर्टमें देख सकते हैं ।

चौहान-वंश ।

सेनवंशके बाद चौहानवंश है । ये (चौहान) भी अपनेको परमारोंकी तरह अग्निवंशी समझते हैं । शिलालेखोंमें इनका सूर्यवंशी होना भी लिखा मिलता है ।

राजपूतानेमें पहले पहल इनका राज्य साँभरमें हुआ था । इससे ये लोग साँभरा चौहान कहलाने लगे । इसके पूर्व ये रवालसिया चौहान कहलाते थे । इसमें पाया

जाता है कि इनका मूल पुरुष वासुदेव सवालख पहाडकी तरफसे आया था। ये पहाड पंजाबमें हैं। सवालख पहाडका यह अर्थ बताया जाता है कि उनके सिलसिलेमें छोटे बडे सवालाख पहाड हैं जैसा कि बाबरने अपनी डायरीमें लिखा है। चौहानोंके शिलालेखों और दानपत्रोंमें इसका संस्कृतरूप सपादलक्ष कर दिया है और इसीसे चौहानोंको सपादलक्षीय लिखा है। आज कल लोग साँभर, अजमेर और नागोरको सपादलक्ष देश समझते हैं, मगर असलमें नागोरमेंके थानेके गाँव स्वालख कहाते हैं जहाँ पर स्वालखसे आये हुए जाट बसते हैं।

साम्भर, दिल्ली, अजमेर, और रणथम्भोरके चौहान संभरी कहलाते थे। इनकी शाखामें आजकल पान्ची ठिकाना नीमराणा इलाके अलवरमें है और मैनपुरी, इटावा वगैरहकी तरफसे मेवाड़में गये हुए चौहानोंके कई बडे बडे ठिकाने बेदला वगैरह मेवाडमें हैं। ये पुरबिये चौहान कहाते हैं।

लाखनसी चौहान साँभरसे नाडोलमें आ रहा था। इसके वंशज नाडोला चौहान कहलाये। लाखनसीकी पन्द्रहवीं पीढीमें केल्हण और कीतू हुए। ये आसराजके बेटे थे। इनमेंसे केल्हण तो नाडोलमें रहा और कीतूने पवाँरोंसे जालोरका किला छीन लिया। यह किला जिस पहाडी पर है उसे सोनगिर कहते हैं, इसीसे कीतूके वंशज सोनगरा चहुवाँन कहलाये।

सुलतान शहाबुद्दीनने जब पृथ्वीराजसे दिल्ली और अजमेर फतह किया तब कीतूका पोता उदैसी उसका ताबेदार हो गया। इसीसे जालोरका राज कई पीढ़ियों तक बना रहा और आखिर सुलतान अलाउद्दीनके वक्तमें रावकान्हडदेवसे गया।

ऊपर लिखी सोनगरा शाखामेंसे दो शाखाएँ और निकलीं। एक देवडा और दूसरा साँचोरा। देवडा चौहानोंने तो आबू और चन्द्रावतीको फतह करके परमारोंकी असली शाखाका राज खतम कर दिया। उन्हींके (देवडों) के वंशज आजकल सिरोहीके राव (राना) हैं। दूसरी शाखाके चौहानोंने कालमा शाखाके पवाँरोंसे साँचोर छीन लिया था। इससे वे साँचोरा कहलाये। साँचोर नगर जोधपुर राज्यमें है और उसके आसपासके बहुतसे गाँवोंमें साँचोरा चौहानोंकी जमींदारी है। इनका पाटवी चीतलवानका राव है।

नाडोलके चौहानोंकी दूसरी बड़ी शाखा हाडा नामसे हुई । इस (हाडा) शाखाके चौहान हाड़ोती—कोटा और बूँदीमें राज करते हैं ।

नाडोलके चौहानोंकी तीसरी शाखाका नाम खीची है । इस (खीची) शाखाका बड़ा राज्य गढगागरूनमें था, जो अब कोटेवालोंके कब्जेमें है । खीचियोंसे यह राज्य मालवेके बादशाहोंने ले लिया था और उनसे दिल्लीके बादशाहोंके कब्जेमें आया और उन्होंने कोटेवालोंको दे दिया । परन्तु गागरूनके आसपास खीचियोंके कई छोटे छोटे ठिकाने राघोगढ, मधुसूदन, वगैरह अब भी मौजूद हैं ।

गुजरात पर चढाई करते समय तुर्कोंने चौहानोंसे नाडोलका राज्य ले लिया था । मगर उनके कमजोर हो जाने पर जालोरके सोनगरा चौहानोंने नाडोल पर कब्जा करके मडोर तक अपना राज्य बढा लिया । उस समयके उनके शिलालेख मडोरसे मिले है । अब भी नाडोले चौहान बावधिराद इलाके पालनपुर एजेन्सीमें छोटे छोटे रईस हैं ।

रणथभोरके चौहान राजाओमें वाल्हणदेव, जैतसी और हम्मीर बडे नामी राजा हुए है । कुवालजीके शिलालेखमे लिखा है कि जैतसीकी तलवार कछवाहोंकी कठोर पीठ पर कुठारका काम करती थी और उसने अपनी राजधानीमें बैठे हुए ही राजा जैसिंघको तपाया था ।

हम्मीरने सुल्तान अलाउद्दीनके बागी मीर मोहम्मदशाहको मय उसके साथियोंके रणथभोरमें पनाह दी थी । ये लोग जालोरसे भाग कर आये थे । सुल्तानके मोहम्मदशाहको माँगने पर हम्मीरने अपने मुसल्मान शरणागतकी रक्षाके बदले अपना प्राण और राज्य दे डाला । ऐसी जवाँमर्दीकी मिसाल मुसल्मानोंकी किसी भी तवारीखमे नहीं मिलती है कि किसी मुसलमान बादशाहने अपने हिन्दू शरणागतकी इस प्रकार रक्षा की हो ।

हम्मीर कवि भी था । इसने शृङ्गारहार ' नामक एक ग्रन्थ संस्कृतमे बनाया था । यह ग्रन्थ बीकानेरके पुस्तकालयमे मौजूद है ।

---

(१) ये नरवर और ग्वालियरके कछवाहे थे ।

(२) यह मालवेका राजा होगा ।

ख्यातोंमें इस वंशके हिन्दूनाम चौहान, चवाण और चवान लिखे मिलते हैं। इन्हींके संस्कृत रूप चाहमान और चतुर्बाहुमान हैं। चतुर्बाहुमानकी एक मिसाल पृथ्वीराजरासेके पद्मावती खण्डमें लिखे इस दोहेसे जाहिर होती है —

बरगोरी पद्मावती गहगोरी सुलतान।
प्रिथीराज आए दिल्ली चतुर्भुजा चौहान।

भाटोंका कहना है कि अग्निकुण्डसे पैदा होते समय चौहानके चार हाथ थे। इसी आधारपर चदने भी पृथ्वीराजको 'चतुर्भुजा चौहान' लिख दिया है। मगर 'मदायनुलमुईन' नामकी फारसी तवारीखमें लिखा है कि चौहानोंका राज्य चारों तरफ फैल गया था। इसीसे उनको चतुर्भुज कहते थे।

हम भारतके प्राचीन राजवंशके प्रथम भागकी भूमिकाको जो कि शिलालेखों और दानपत्रोंके आधारके सिवाय फारसी तवारीखों और भाटोंकी बहियों तथा मूता-नैनसीकी ख्यात वगैरहकी सहायतासे लिखा गया है यहीं समाप्त करते हैं और साथ ही प्रार्थना करते हैं कि सहृदय पाठक भूलचूकके लिये क्षमा प्रदान करें।

१२ मई सन् १९२०,
जोधपुर।

देवीप्रसाद,
सहकारी-अध्यक्ष इतिहास कार्यालय,
जोधपुर।

विपय-सूची ।

विषय.	पृष्ठांक.
बलिराज	२८६
विग्रहपाल	२८६
महेन्द्र (महीन्दु)	२८६
अणहिल	२८७
बालप्रसाद	२८९
जेन्द्रराज	२८९
पृथ्वीपाल	२९०
जोजलदेव	२९०
रायपाल	२९१
अश्वराज	२९१
कटुकराज	२९३
आल्हणदेव	२९५
केल्हण	२९६
जयतसिंह	२९७
धाँधलदेव	२९८
नाडोलके चौहानोंका वंशवृक्ष	२९९
(जालोरके सोनगरा चौहान)	
कीर्तिपाल	३०१
समरसिंह	३०३
उदयसिंह	३०३
चाचिगदेव	३०७
सामन्तसिंह	३०८
कान्हडदेव	३०८
मालदेव	३११
वनवीरदेव	३१३
रणवीरदेव	३१३
सांचोरकी शाखा	३१४

विषय.	पृष्ठांक.
नाडोलके चौहानोंका नकशा	३१५
जालोरके चौहानोंका नकशा	३१५
चंद्रावतीके देवड़ा चौहान	
मानसिंह	३१८
प्रतापसिंह	३१८
बीजड़	३१८
लुंढ (लुंभा)	३१८
तेजसिंह	३१९
कान्हड़देव	३१९
परिशिष्ट	
धौलपुरके चौहान	३२०
भड़ोचके चौहान	३२०
चौहानोंके वर्तमान राज्य	३२०

ई० स० १५० के समयका आन्ध्रों और क्षत्रपोंके राज्यका नकशा	१०
क्षत्रपोंके लेखों और सिक्कों आदिमें मिले हुए ब्राह्मी अक्षरोंका नकशा	१०
क्षत्रपोंके समयके खरोष्ठी अक्षरोंका नकशा	१०
पश्चिमी क्षत्रपोंका वंशवृक्ष	३६
क्षत्रप और महाक्षत्रप होनेके वर्ष	३६
आबूके परमारोंका वंशवृक्ष	८४
आबूके परमारोंकी वंशावली	८४
मालवेके परमारोंका वंशवृक्ष	१७६
मालवेके परमारोंकी वंशावली	१७६
पालवंशियोंका वंशवृक्ष	१९६
सेनवंशियोंका वंशवृक्ष	२२४
सांभरके चौहानोंका वंशवृक्ष	२६२
रणथंभोरके चौहानोंका वंशवृक्ष	२७८

शुद्धाशुद्धिपत्र।

पृ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	२४	I. R. A. S.	J. R. A. S.
४	२४	(टिप्पणी)	×
१३	९	छहरातस	क्षहरातसं
१५	९	चटनस	चटनस
१५	२४	लेखसे	लेखसे'
२८	१७	दामसेनपुत्रस	दामसेनस पुत्रस
३७	१७	अन्ध	आन्ध्र
३८	१३	५३२	५३१
३८	२४	p. 264	p. 294
३९	११	६६६	६६७
४२	१५	योहला	नोहला
४३	२५	Ind; 252,	Ind; 259
४४	१७	८—कोक्कल	८—कोक्कल
४९	१८	कलिरूप	कालरूप
५०	२	(वि० सं० ११९९)	(वि० सं० ११७९)
५०	१७	लक्ष्मदेवने त्रिपुरीपर	लक्ष्मदेवके लेखसे पाया जाता है कि उसने त्रिपुरी पर
५१	१५	आल्हणदेवीने एक	आल्हणदेवीने नर्मदाके तटपर (भेडाघाटमे) एक
५८	५	दो	तीन
५८	२४	c. a. s r. 17, 76 and 17 p x x	At Sur. India vol, 17, p x x

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५९	फुटनोट न० १		Ind. Ant , Vol XAI P 82
५९	२०	P 40	P 47
६०	१०	सुवर्णागृधध्वज	सुवर्ण गृधध्वज
६३	४	शत्रुके	शत्रु
६६	५	निपुण थ[1]	निपुण थे[2]
६६	फुटनोट		(१) Mysore Inscriptions, P 330 (२) Shravan Belgola In scriptions no 56
६८	१६	अनात	आनीत
७१	१४	यभुलाटुद	य मूलादुद
७१	फुटनोट		(१) Ep Ind Vol X P 11
७३	४	द्विनातियोंवे	द्विजाति योटके
७४	६	११११ (१०६१)	१११२ (१०५६)
७६	२४	गत्वा	मत्वा
७८	२६	अगस्त	सितवर
८२	१	१३०३	१३०९
८३	३	वर्मोगा	वमोण
८४	२३	११६३	११६२
९१	१४	[६]	[९]
१००	१८	राजपूतानर्का	राजपूतोंका
१२६	९	असम्भव सिद्ध नहीं	सम्भव सिद्ध नहीं होता
१२७	१	३°–४१ उत्तर और ७५°–११ पूर्व	३३°–११' उत्तर और ७५°–११' पूर्व
१४४	१६	(६)	(२)
१४४	१९	(६)	[९]

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४७	२४	256	259
१५२	२५	308	368
१७६	५	श्चण्डेम्नि	श्चण्डोम्नि
१८३	१४	देहृदेवी	देद्देवी
२०४	७	" सन	" हिजरी सन्
२०४.	२१	शक सवत्	गत शक सवत्
२०५	१	गेत कलियुग	गेत शक
२०५	२	कार्तिक–	अमान्तमासकी कार्तिक
२१०	४	४०००	४००
२२४	८		नेपालका राजा नान्यदेव विजयसेनका समकालीन था।
२२४	१५		वि० स० १३३७ में दनुजमाधव था और देहलीका बादशाह बलबन उसका समकालीन था
२२५	१५	कायम	प्रारम्भ
२३६	१२	रासल्चुदे	रासल्लदेवी
२३६	फुटनोट	Prof pittrson's 4th report, P. 87	Prof pittrson's 4th report P 8.
२३९	३	जयदेव	अजयदेव
२४८	११	११२२	१२२५
२७३	२०	जवावसे	जवानसे
२९०	४	आडवा	आउवा
२९१	११	भाद्रपद कृष्णा ८	ज्येष्ठ शुक्रा ५
२९६	१७	देवमेतत्	देवमतमेतत्
२९७	१६	चाल्हणदेवी	जाल्हणदेवी
२९७	२१	राज पुत्र	महाराज-पुत्र
२९८	२	नहरवालेको	×

भारतके प्राचीन राजवंश।

१ क्षत्रप-वंश।

क्षत्रप-शब्द। यद्यपि 'क्षत्रप' शब्द संस्कृतका सा प्रतीत होता है, और इसका अर्थ भी क्षत्रियोंकी रक्षा करनेवाला हो सकता है। तथापि असलमें यह पुराने ईरानी (Persian) 'क्षथ्रपावन' शब्दका संस्कृत-रूप है। इसका अर्थ पृथ्वीका रक्षक है। इस शब्दके 'खतप' (खत्तप), छत्रप और छत्रव आदि प्राकृत-रूप भी मिलते हैं।

संस्कृत-साहित्यमें इस शब्दका प्रयोग कहीं नहीं मिलता। केवल पहले पहल यह शब्द भारत पर राज्य करनेवाली एक विशेष जातिके राजाओंके सिक्कों और ईसाके पूर्वकी दूसरी शताब्दीके लेखोंमें पाया जाता है।

ईरानमें इस शब्दका प्रयोग जिस प्रकार सम्राट्के सूबेदारके विषयमें किया जाता था, भारतमें भी उसी प्रकार इसका प्रयोग होता था। केवल विशेषता यह थी कि यहाँ पर इसके साथ महत्त्व-सूचक 'महा' शब्द भी जोड दिया जाता था। भारतमें एक ही समय और एक ही स्थानके क्षत्रप और महाक्षत्रप उपाधिधारी भिन्न भिन्न नामोंके सिक्के मिलते हैं। इससे अनुमान होता है कि स्वाधीन शासकको महाक्षत्रप और उसके उत्तराधिकारी—युवराज—को क्षत्रप कहते थे। यह उत्तराधिकारी अन्तमें स्वयं महाक्षत्रप हो जाता था।

सारनाथसे कुशन राजा कनिष्कके राज्यके तीसरे वर्षका एक लेख[1] मिला है। इससे प्रकट होता है कि महाक्षत्रप खर पलान कनिष्कका सूबेदार था। अतः यह बहुत सम्भव है कि महाक्षत्रप होने पर भी ये लोग किसी बड़े राजाके सूबेदार ही रहते हों।

पृथक् पृथक् वंश। ईसाके पूर्वकी पहली शताब्दीसे ईसाकी चौथी शताब्दीके मध्य तक भारतमें क्षत्रपोंके तीन मुख्य राज्य थे, दो उत्तरी और एक पश्चिमी भारतमें। इतिहासज्ञ तक्षशिला (Taxila उत्तर-पश्चिमी पञ्जाब) और मथुराके क्षत्रपोंको उत्तरी क्षत्रप तथा पश्चिमी भारतके क्षत्रपोंको पश्चिमी क्षत्रप मानते हैं।

राज्य-विस्तार। ऐसा प्रतीत होता है कि ईसाकी पहली शताब्दीके उत्तरार्धमें ये लोग गुजरात और सिन्धसे होते हुए पश्चिमी भारतमें आये थे। सम्भवतः उस समय ये उत्तर-पश्चिमी भारतके कुशन राजाके सूबेदार थे। परन्तु अन्तमें इनका प्रभाव यहाँतक बढ़ा कि मालवा, गुजरात, काठियावाड़, कच्छ, सिन्ध, उत्तरी कोंकन और राजपूतानेके मेवाड़, मारवाड़, सिरोही, झालावाड़, कोटा, परतापगढ़, किशनगढ़, डूँगरपुर, बाँसवाड़ा और अजमेरतक इनका अधिकार होगया[2]।

जाति। यद्यपि पिछले क्षत्रपोंने बहुत कुछ भारतीय नाम धारण कर लिये थे, केवल 'जद' (घसद) और 'दामन' इन्हीं दो शब्दोंसे इनकी वैदेशिकता प्रकट होती थी, तथापि इनका विदेशी होना सर्वसम्मत है। सम्भवतः ये लोग मध्य एशियासे आनेवाली शक-जातिके थे।

भूमक, नहपान और चष्टनके सिक्कोंमें खरोष्ठी अक्षरोंके होनेसे तथा नहपान, चष्टन, घसमोतिक, दामजद आदि नामोंसे भी इनका विदेशी होना ही सिद्ध है।

---

(१) I R. A. S., 1903, p. 1.
(२) Ep. Ind., Vol. VIII p. 38.

नासिकसे मिले एक लेखमें क्षत्रप नहपानके जामाता उषवदातको शक लिखा है। इससे पाया जाता है कि, यद्यपि करीब ३०० वर्ष भारतमें राज्य करनेके कारण इन्होंने अन्तमें भारतीय नाम और धर्म ग्रहण कर लिया था और क्षत्रियोंके साथ वैवाहिक सम्बन्ध भी करने लग गये थे, तथापि पहलेके क्षत्रप वैदिक और बौद्ध दोनों धर्मोको मानते थे और अपनी कन्याओंका विवाह केवल शकोंसे ही करते थे।

भारतमें करीब ३०० वर्ष राज्य करनेपर भी इन्होंने 'महाराजाधिराज' आदि भारतीय उपाधियाँ ग्रहण नहीं कीं और अपने सिक्कोंपर भी शक-सवत ही लिखवाते रहे। इससे भी पूर्वोक्त बातकी पुष्टि होती है।

रिवाज। जिस प्रकार अन्य जातियोंमें पिताके पीछे बडा पुत्र और उसके पीछे उसका लड़का राज्यका अधिकारी होता है उस प्रकार क्षत्रपोंके यहाँ नहीं होता था। इनके यहाँ यह विलक्षणता थी कि पिताके पीछे पहले बडा पुत्र, और उसके पीछे उससे छोटा पुत्र। इसी प्रकार जितने पुत्र होते थे वे सब उमरके हिसाबसे क्रमशः गद्दी पर बैठते थे। तथा इन सबके मर चुकने पर यदि बडे भाईका पुत्र होता तो उसे अधिकार मिलता था। अतः अन्य नरेशोंकी तरह इनके यहाँ राज्याधिकार सदा बडे पुत्रके वंशमें ही नहीं रहता था।

शक-संवत्। फर्गुसन साहबका अनुमान है कि शक-सवत् कनिष्कने चलाया था। परन्तु आज कल इसके विरुद्ध अनेक प्रमाण उपस्थित किये जाते हैं। इनमें मुख्य यह है कि कनिष्क शक-वशका न होकर कुशन वशका था। लेकिन यदि ऐसा मान लिया जाय कि यह संवत् नो उसीने प्रचलित किया था, परन्तु क्षत्रपोंके अधिकार-प्रसारके साथ ही इनके लेखादिकोंमें लिखे जानेसे सर्वसाधारणमें इसका प्रचार हुआ, और इसी कारण इसके चलाने वाले कुशन राजाके नाम पर इसका

(१) Ep Ind, Vol VIII p. 85.

नामकरण न होकर, इसे प्रसिद्धिमें लानेवाले शकोंके नाम पर हुआ, तो किसी प्रकारकी गड़बड़ न होगी। यह बात सम्भव भी है। परन्तु अभी तक पूरा निश्चय नहीं हुआ है।

बहुतसे विद्वान् इसको प्रतिष्ठानपुर (दक्षिणके पैठण) के राजा शालिवाहन (सातवाहन) का चलाया हुआ मानते हैं। जिनप्रभसूरि-रचित कल्पप्रदीपसे भी इसी मतकी पुष्टि होती है।

अलबेरुनीने लिखा है कि शक राजाको हरा कर विक्रमादित्यने ही उस विजयकी यादगारमें यह संवत् प्रचलित किया था।

कच्छ और काठियावाड़से मिले हुए सबसे पहलेके शक-संवत् ५२ से १४३ तकके क्षत्रपोंके लेखों[1] में और करीब शक-संवत् १०० से शक-संवत् ३१० तकके सिक्कोंमें केवल संवत् ही लिखा मिलता है, उसके साथ साथ 'शक' शब्द नहीं जुड़ा रहता।

पहले पहल इस संवत्के साथ शक-शब्दका विशेषण वराहमिहिर-रचित संस्कृतकी पञ्चसिद्धान्तिकामें ही मिलता है। यथा—

"सप्ताश्विवेदसंख्यं शककालमपास्य चैत्रशुक्लादौ"

इससे प्रकट होता है कि ४२७ वें वर्षमें यह संवत् शक-संवत्के नामसे प्रसिद्ध हो चुका था। तथा शक-संवत् १२६२ तकके लेखों और ताम्रपत्रोंसे प्रकट होता है कि उस समय तक यह शक-संवत् ही लिखा जाता था, जिसका 'शक राजाका संवत्' 'या शकोंका संवत्' ये दोनों ही अर्थ हो सकते हैं।

शक-संवत् १२७६ के यादव राजा बुक्कराय प्रथमके दानपत्रमें इसी संवत्के साथ शालिवाहन (सातवाहन) का भी नाम जुड़ा हुआ मिला है। यथा—

(1) Eq Ind, Vol VIII, p 42

'नृपशालिवाहन शके १२७६'

इससे प्रकट होता है कि ईसवी सन्‌की १४ वीं शताब्दीमें दक्षिण-वालोंने उत्तरी भारतके मालवसंवत्‌के साथ विक्रमादित्यका नाम जुडा हुआ देखकर इस संवत्‌के साथ अपने यहाँकी कथाओंमें प्रसिद्ध राजा शालिवाहन (सातवाहन) का नाम जोड दिया होगा।

यह राजा आन्ध्रभृत्य-वंशका था। इस वंशका राज्य ईसवी सन् पूर्वकी दूसरी शताब्दीसे ईसवी सन् २२५ के आसपास तक दक्षिणी भारत पर रहा। इनकी एक राजधानी गोदावरी पर प्रतिष्ठानपुर भी था। इस वंशके राजाओंका वर्णन वायु, मत्स्य, ब्रह्माण्ड, विष्णु और भागवत आदि पुराणोंमें दिया हुआ है। इसी वंशमें हाल शातकर्णी बड़ा प्रसिद्ध राजा हुआ था। अतः सम्भव है कि दक्षिणवालोंने उसीका नाम संवत्‌के साथ लगा दिया होगा। परन्तु एक तो सातवाहनके वंशजोंके शिला-लेखोंमें केवल राज्य-वर्ष ही लिखे होनेसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि उन्होंने यह संवत् प्रचलित नहीं किया था। दूसरा, इस वंशका राज्य अस्त होनेके बाद करीब ११०० वर्ष तक कहीं भी उक्त संवत्‌के साथ जुड़ा हुआ शालिवाहनका नाम न मिलनेसे भी इसी बातकी पुष्टि होती है। कुछ विद्वान् इस संवतको तुरुष्क (कुशन) वंशी राजा कनिष्कका, कुछ क्षत्रप नहपानका, कुछ शक राजा वेन्सकी और कुछ शक राजा अय (अज–Azeo) का प्रचलित किया हुआ मानते हैं। परन्तु अभी तक कोई बात पूरी तौरसे निश्चित नहीं हुई है।

शक-संवत्‌का प्रारम्भ विक्रम-संवत् १३६ की चैत्रशुक्ला प्रतिपदाको हुआ था, इस लिए गत शक संवत्‌में १३५ जोडनेसे गत चैत्रादि विक्रम-संवत् और ७८ जोडनेसे ईसवी सन् आता है। अर्थात् शक-संवत्‌का और विक्रम-संवत्‌का अन्तर १३५ वर्षका है, तथा शक-संवत्‌का और

(१) K list of Ins. of S India, p 78, No 455.

ईसवीसनका अन्तर करीब ७८ वर्षका है, क्योंकि कभी कभी ७९ जोड़नेसे ईसवीसन् आता है।

भाषा। नहपानकी कन्या दक्षमित्रा और उसके पति उषवदात और पुत्र मित्रदेवके लेख तो प्राकृतमें हैं। केवल उषवदातके बिना संवतके एक लेखका कुछ भाग संस्कृतमें है। नहपानके मंत्री अयमका लेख भी प्राकृतमें है। परन्तु रुद्रदामा प्रथम, रुद्रसिंह प्रथम, और रुद्रसेन प्रथमके लेख संस्कृतमें हैं। तथा भूमकसे लेकर आजतक जितने क्षत्रपोंके सिक्के मिले हैं उन परके एकाध लेखको छोड़कर बाकी सबकी भाषा प्राकृत-मिश्रित संस्कृत है। इनमें बहुधा षष्ठी विभक्तिके 'स्य' की जगह 'स' होता है। किसी किसी राजाके दो तरहके सिक्के भी मिलते हैं। इनमेंसे एक प्रकारके सिक्कोंमें तो षष्ठी विभक्तिका द्योतक 'स्य' या 'स' लिखा रहता है और दूसरेमें समस्त पद करके विभक्तिके चिह्नका लोप किया हुआ होता है। यथा—

पहले प्रकारके—रुद्रसेनस्य पुत्रस्य या रुद्रसेनस पुत्रस।

दूसरे प्रकारके—रुद्रसेनपुत्रस्य।

इन सिक्कोंमें एक विलक्षणता यह भी है कि, 'राज्ञो क्षत्रपस्य' पदमें कवर्गके सम्मुख होने पर भी सन्धि-नियमके विरुद्ध राज्ञः के विसर्गको ओकारका रूप दिया हुआ होता है। इनका अलग अलग खुलासा हाल प्रत्येक राजाके वर्णनमें मिलेगा।

लिपि। क्षत्रपोंके सिक्कों और लेखों आदिके अक्षर ब्राह्मी लिपिके हैं। इसीका परिवर्तित रूप आजकलकी नागरी लिपि समझी जाती है। परन्तु भूमक, नहपान और चष्टनके सिक्कों पर ब्राह्मी और खरोष्ठी दोनों लिपियोंके लेख हैं और बादके राजाओंके सिक्कों पर केवल ब्राह्मी लिपिके

(१) कुप्वो ≍क ≍पौ च (अ० ८। ३।३७)

है। पूर्वोक्त खरोष्ठी लिपि, फ़ारसी अक्षरोंकी तरह, दाईं तरफ़से बाँईं तरफ़को लिखी जाती थी।

इनके समयके अङ्कोंमें यह विलक्षणता है कि उनमें इकाई, दहाई आदिका हिसाब नहीं है। जिस प्रकार १ से ९ तक एक एक अङ्कका बोधक अलग अलग चिह्न है, उसी प्रकार १० से १०० तकका बोधक भी अलग अलग एक ही एक चिह्न है। तथा सौके अङ्कमें ही एक दो आदिका चिह्न और लगादेनेसे २००, ३०० आदिके बोधक अङ्क हो जाते है।

उदाहरणार्थ, यदि आपको १५५ लिखना हो तो पहले सौका अङ्क लिखा जायगा, उसके बाद पचासका और अन्तमें पाँचका। यथा—
१००+५०+५=१५५

आगे क्षत्रपोंके समयके ब्राह्मी अक्षरों और अङ्कोंकी पहचानके लिए उनके नक़शे दिये जाते है, उनमें प्रत्येक अक्षर और अङ्कके सामने आधुनिक नागरी अक्षर लिखा है। आशा है, इससे संस्कृत और हिन्दीके विद्वान् भी उस समयके लेखों, ताम्रपत्रों और सिक्कोंको पढ़नेमें समर्थ होंगे।

इसीके आगे खरोष्ठी अक्षरोंका भी नक़शा लगा दिया गया है, जिससे उन अक्षरोंके पढनेमें भी सहायता मिलेगी।

लेख। अबतक इनके केवल १२ लेख मिले है। ये निम्नलिखित पुरुषोंके हैं—

उषवदात–(ऋषभदत्त)–यह नहपानका जामाता था। इसके ४ लेख मिले है[१]। इनमेंसे दोमें तो संवत् है ही नहीं और तीसरेमें टूट गया है। केवल चैत्र-शुक्ला पूर्णिमा पढ़ा जाता है[२]। तथा चौथे लेखमें शक-संवत् ४१, ४२ और ४५ लिखे हैं[३]। परन्तु यह लेख श० सं० ४२ के वैशाखमासका है।

(१) { Ep Ind, Vol VIII, p. 78,
Ep Ind, Vol. VII, p 57,
(२) Ep. Ind., Vol VIII, p 85, (३) Ep. Ind, Vol. VIII, p 82,

दक्षमित्रा—यह नहपानकी कन्या और उपर्युक्त उषवदातकी स्त्री थी। इसका १ लेख मिला है[1]।

मित्र देवणक–(मित्रदेव)—यह उषवदातका पुत्र था। इसका भी एक लेख मिला है[2]।

अयम (अर्यमन्)—यह वत्सगोत्री ब्राह्मण और राजा महाक्षत्रप स्वामी नहपानका मन्त्री था। इसका शक-संवत् ४६ का एक लेख मिला है[3]।

रुद्रदामा प्रथम—यह जयदामाका पुत्र था। इसके समयका एक लेख शक-संवत् ७२ मार्गशीर्ष-कृष्णा प्रतिपदाका मिला है[4]।

रुद्रसिंह प्रथम—यह रुद्रदामा प्रथमका पुत्र था। इसके समयके दो लेख मिले हैं। इनमेंसे एक शक संवत् १०३ वैशाख शुक्ला पञ्चमीका[5] और दूसरा चैत्र शुक्ला पञ्चमीका है[6]। इसका संवत् टूट गया है।

रुद्रसेन प्रथम—यह रुद्रसिंह प्रथमका पुत्र था। इसके समयके २ लेख मिले हैं। इनमें पहला शक संवत् १२२ वैशाख कृष्णा पञ्चमीका[7] और दूसरा शक संवत् १२७ (या १२६) भाद्रपद कृष्णा पञ्चमीका है[8]।

सिक्के। भूमक और नहपान क्षहरात वंशी तथा चष्टन और उसके वंशज क्षत्रपवंशी कहलाते थे।

भूमकके केवल ताँबेके सिक्के मिले हैं। इन पर एक तरफ नीचेकी तरफ फलकवाला तीर, वज्र और खरोष्ठी अक्षरोंमें लिखा लेख तथा दूसरी तरफ सिंह, धर्म-चक्र और ब्राह्मी अक्षरोंका लेख होता है।

---

(१) Ep Ind Vol. VIII, p 81, (२) Ep Ind l VII' p 56'
(३) J Bo Br Roy As Soc, Vol. V, p 169.
(४) Ep Ind, Vol VIII, p 36, (५) Ind Ant, Vol X, p 157,
(६) J R A S, 1890 p 651, (७) J R A S, 1890, p 652
(८) Ind. Ant., Vol. XII, p 32,

नहपानके चाँदीके सिक्कोंमें एक तरफ राजाका मस्तक और ग्रीक अक्षरोंका लेख तथा दूसरी तरफ अधोमुख बाण, वज्र और ब्राह्मी तथा खरोष्ठी लिपिमें लेख रहता है। परन्तु इसके ताँबेके सिक्कों पर मस्तकके स्थानमें वृक्ष बना होता है।

इसी नहपानके चाँदीके कुछ सिक्के ऐसे भी मिले हैं, जो असलमें इसके ऊपर वर्णित चाँदीके सिक्कोंके समान ही होते है परन्तु उन पर आन्ध्रवंशी राजा गौतमीपुत्र श्रीसातकर्णीकी मुहरें भी लगी होती है। ऐसे सिक्कों पर पूर्वोक्त चिह्नों या लेखोंके सिवा एक तरफ तीन चश्मों (अर्धवृत्तों) का चैत्य बना होता है जिसके नीचे एक सर्पाकार रेखा होती है और ब्राह्मी लिपिमें "राञो गोतमि पुतस सिरि सातकणिस" लिखा रहता है तथा दूसरी तरफ उज्जयिनीका चिह्न विशेष बना रहता है।

चष्टन और उसके उत्तराधिकारियोंके चाँदी, ताँबे, सीसे आदि धातुओंके सिक्के मिलते हैं। इनमें चाँदीके सिक्के ही बहुतायतसे पाये जाते हैं। अन्य धातुओंके सिक्के अब तक बहुत ही कम मिले हैं। तथा उन परके लेख भी बहुधा संशयात्मक ही होते हैं। उन पर हाथी, घोडा, बैल अथवा चैत्यकी तसवीर बनी होती है और ब्राह्मी लिपिमें लेख लिखा रहता है। सीसेके सिक्के केवल स्वामी रुद्रसेन तृतीय (स्वामी रुद्रदामा द्वितीयके पुत्र) के ही मिले हैं।

क्षत्रपोंके चाँदीके सिक्के गोल होते हैं। इनको प्राचीनकालमें कार्षापण कहते थे। इनकी तोल ३४ से ३६ ग्रेन अर्थात् करीब १४ रत्तीके होती है। नासिकसे जो उपवदातका श० सं० ४२ वैशाखका लेख मिला है[1] उसमें ७०००० कार्षापणोंको २००० सुवर्णोंके बराबर लिखा

(1) Ep. Ind., Vol. VIII. 82.

है। इससे सिद्ध होता है कि ३५ कार्षापणोंमें एक सुवर्ण (उस वक्तके कुशन-राजाओंका सोनेका सिक्का) आता था। यदि कार्षापणका तोल ३६ ग्रेन (१४ रत्तीके करीव) और सुवर्णका तोल १२४ ग्रेन (६ माशे २ रत्तीके करीव) मानें तो प्रतीत होता है कि उस समय चाँदीसे सुवर्ण-की कीमत करीव १० गुनी अधिक थी।

चष्टनसे लेकर इस वंशके सिक्कोंकी एक तरफ़ टोपी पहने हुए राजाका मस्तक बना होता है। इन सिक्कों परके राजाके मुखकी आकृतियोंका आपसमें मिलान करने पर बहुत कम अन्तर पाया जाता है। इससे अनुमान होता है कि उस समय आकृतिके मिलान पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था।

नहपान और चष्टनके सिक्कोंमें राजाके मस्तकके इर्द गिर्द ग्रीक अक्षरोंमें भी लेख लिखा होता है। परन्तु चष्टनके पुत्र रुद्रदामा प्रथमके समयसे ये ग्रीक अक्षर केवल शोभाके लिए ही लिखे जाने लगे थे। जीवदामासे क्षत्रपोंके सिक्कों पर मस्तकके पीछे ब्राह्मी लिपिमें वर्ष भी लिखे मिलते हैं। ये वर्ष शक-संवत्के हैं।
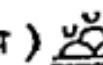
इन सिक्कोंकी दूसरी तरफ़ चैत्य (बौद्धस्तूप) होता है, जिसके नीचे एक सर्पाकार रेखा होती है। चैत्यकी एक तरफ़ चन्द्रमा और दूसरी तरफ़ तारे (या सूर्य्य) बने होते हैं। देखा जाय तो असलमें यह चैत्य मेरु-पर्वतका चिह्न है, जिसके नीचे गङ्गा और दाएँ बाएँ सूर्य्य और चन्द्रमा बने होते हैं। पूर्वोक्त चैत्यके गिर्द वृत्ताकार ब्राह्मी लिपिका लेख होता है। इसमें राजा और उसके पिताका नाम तथा उपाधियाँ लिखी रहती हैं। लेखके बाहरकी तरफ़ बिन्दुओंका वृत्त बना होता है।

जयदामाके ताँबेके सिक्कों पर ६ चश्मोंका चैत्य मिला है। परन्तु उसके नीचे सर्पाकार रेखा नहीं होती है।

क्षत्रपोंके इतिहासकी सामग्री। क्षत्रपोंके इतिहास लिखनेमें इनके केवल एक दर्जन लेखों तथा कई हजार सिक्कोंसे ही सहायता मिल सकती है। क्योंकि इनका प्राचीन लिखित विशेष वृत्तान्त अभी तक नहीं मिला है।

भूमक ।

[श० स० ४१ (ई० स० ११९=वि० स० १७६) के पूर्व]

शक संवत् ४१ (ईसवी सन् ११९=विक्रमी संवत् १७६ के पूर्व क्षहरत-वंशका सबसे पहला नाम भूमक ही मिला है। परन्तु इसके समयके लेख आदिकोंके अब तक न मिलनेके कारण यह नाम भी केवल सिक्कों पर ही लिखा मिलता है।

उक्त भूमकके अब तक ताँबेके बहुत ही थोड़े सिक्के मिले हैं। इन पर किसी प्रकारका संवत् नहीं लिखा होता। केवल सीधी तरफ खरोष्ठी अक्षरोंमें "छहरदस छत्रपस भुमकस" और उल्टी तरफ ब्राह्मी अक्षरोंमें "क्षहरातस क्षत्रपस भूमकस" लिखा होता है।

हम प्रस्तावनामें पहले लिख चुके है कि इसके सिक्कों पर एक तरफ अधोमुख बाण और वज्रके तथा दूसरी तरफ सिंह और चक्र आदिके चिह्न बने होते है। सम्भवतः इनमेंका सिंहका चिह्न ईरानियोंसे और चक्रका चिह्न बौद्धोंसे लिया गया होगा।

यद्यपि इसके समयका कोई लेख अब तक नहीं मिला है तथापि इसके उत्तराधिकारी नहपानके समयके लेखसे अनुमान होता है कि भूमकका राज्य शक-संवत् ४१ के पूर्व था।

नहपान।

[श० स० ४१—४६ (ई० स० ११९—१२४= वि०स० १७६—१८१)]

यह सम्भवतः भूमकका उत्तराधिकारी था। यद्यपि अबतक इस विषयका कोई लिखित प्रमाण नहीं मिला है तथापि भूमकके और इसके सिक्कोंका मिलान करनेसे प्रतीत होता है कि यह भूमकका उत्तराधिकारी ही था।

इसकी कन्याका नाम दक्षमित्रा था। यह शकवंशी दीनिकके पुत्र उषवदात (ऋषभदत्तकी) की पत्नी थी। इसी दक्षमित्रासे उषवदातके *मित्र देवणक नामक एक पुत्र हुआ था। हम पहले लिख चुके है कि* उषवदातके ४ लेख मिले हैं। इनमेंसे ३ नासिकसे और १ कार्लेसे मिला है। इसकी स्त्री दक्षमित्राका लेख भी नासिकसे और इसके पुत्रका कार्लेसे ही मिला है। पूर्वोक्त लेखोंमेंसे उषवदातके केवल एकही लेखमें शक-सवत् ४२ दिया हुआ है। परन्तु इसीमें पीछेसे शक सवत् ४१ *और ४५ भी लिख दिये गये है। उक्त लेखोंमें उषवदातको राजा* क्षहरात क्षत्रप नहपानका जामाता लिखा है। परन्तु जुन्नरकी बौद्धगुफासे जो शक सवत् ४६ (ई० स० १२४=वि० स० १८१) का नहपानके मन्त्री अयम (अर्यमन्) का लेख मिला है, उसमें नहपानक नामके पहले राजा महाक्षत्रप स्वामीकी उपाधियाँ लगी है। इससे प्रकट होता है कि उससमय—अर्थात् शक सवत् ४६ में—यह नहपान स्वतन्त्र राजा हो चुका था।

इसका राज्य गुजरात, काठियावाड, कच्छ, मालवा और नासिकतक के दक्षिणके प्रदेशोंपर फैला हुआ था। इस बातकी पुष्टि इसके जामाता उषवदात (ऋषभदत्त) के लेखसे भी होती है।

नहपानके समयके लेख शक-संवत् ४१ से ४६ (ई० स० ११९ से १२४=वि० सं० १७६ से १८१) तकके ही मिले हैं। अतः इसने कितने वर्ष राज्य किया था इस बातका निश्चय करना कठिन है। परन्तु अनुमानसे पता चलता है कि शक-संवत् ४६ के बाद इसका राज्य थोड़े समयतक ही रहा होगा। क्योंकि इस समयके करीब ही आन्ध्र-वंशी राजा गौतमी-पुत्र शातकर्णिने इसको हरा कर इसके राज्यपर अधिकार कर लिया था और इसके सिक्कोंपर अपनी मुहरें लगवा दी थीं।

नहपानके सिक्कों पर ब्राह्मी लिपिमें "राज्ञो छहरातस नहपानस" और खरोष्ठी लिपिमें "रञो छहरतस नहपनस" लिखा होता है। परन्तु गौतमीपुत्र श्रीशातकर्णिकी मुहरवाले सिक्कोंपर पूर्वोक्त लेखोंके सिवा ब्राह्मीमें "राञो गोतमिपुतस सिरि सातकणिस" विशेष लिखा रहता है।

नहपानके चाँदी और ताँबेके सिक्के मिलते हैं। इन पर क्षत्रप और महाक्षत्रपकी उपाधियाँ नहीं होतीं, परन्तु इसके समयके लेखोंमें इसके नामके आगे उक्त उपाधियाँ भी मिलती है।

इसका जामाता ऋषभदत्त (उषवदात) इसका सेनापति था। ऋषभदत्त-के पूर्वोल्लिखित लेखोंसे पाया जाता है कि इस (ऋषभदत्त) ने मालवा-वालोंसे क्षत्रिय उत्तमभद्रकी रक्षा की थी। पुष्कर पर जाकर एक गाँव और तीन हजार गायें दान की थीं। प्रभासक्षेत्र (सोमनाथ—काठिया-वाड) में आठ ब्राह्मण-कन्याओंका विवाह करवाया था। इसी प्रकार और भी कितने ही गाँव तथा सोने चाँदीके सिक्के ब्राह्मणों और बौद्ध भिक्षुकोंको दिये थे, सरायें और घाट बनवाये थे, कुए खुदवाये थे, और सर्वसाधारणको नदी पार करनेके लिए छोटी छोटी नौकायें नियत की थीं।

चष्टन ।

[श० सं० ४६—७२ (ई० स० १२४—१५०= वि० स० १८१—२०७) के मध्य]

यह घ्समोतिकका पुत्र था । इसने नहपानके समयमें नष्ट हुए क्षत्रपोंके राज्यको फिर कायम किया।

ग्रीक-भूगोलज्ञ टालेमी (Ptolemy) ने अपनी पुस्तकमें चष्टनका उल्लेख किया है। यह पुस्तक उसने ई० स० १३० के करीब लिखी थी। इसीमें यह भी लिखा है कि उस समय पैठन, आन्ध्रवंशी राजा वसिष्ठीपुत्र श्रीपुलुमावीकी राजधानी थी। इससे प्रकट होता है कि चष्टन और उक्त पुलुमावी समकालीन थे।

चष्टनके और इसके उत्तराधिकारियोंके सिक्कोंको देखनेसे अनुमान होता है कि चष्टनने अपना नया राजवंश कायम किया था। परन्तु सम्भवत: यह वंश भी नहपानका निकटका सम्बन्धी ही था।

नासिककी बौद्धगुफासे वासिष्ठीपुत्र पुलुमावीके समयका एक लेख मिला है[1]। यह पुलुमावीके राज्यके १८ वें या १९ वें वर्षका है। इसमें गौतमीपुत्र श्रीशातकर्णिको क्षहरत-वंशका नष्ट करनेवाला और शातवाहन-वंशको उन्नत करनेवाला लिखा है। इससे अनुमान होता है कि शायद चष्टनको गौतमीपुत्रने नहपानसे छीने हुए राज्यका सूबेदार नियत किया होगा और अन्तमें वह स्वाधीन होगया होगा।

चष्टनका अधिकार मालवा, गुजरात, काठियावाड़ और राजपूतानेके कुछ हिस्से पर था। इसीने उज्जैनको अपनी राजधानी बनाया, जो अन्त तक इसके वंशजोंकी भी राजधानी रही।

इसके और इसके वंशजोंके सिक्कोंपर अपने अपने नामों और उपाधियोंके सिवा पिताके नाम और उपाधियाँ भी लिखी होती हैं। इससे

(१) J Bm Br Roy As Soc, Vol VII, p ०1

[१]पता चलता है कि चष्टनका स्थापित किया हुआ राज्य क्षत्रप विश्वसेनके समय (ई० स० ३०४) तक बराबर चलता रहा था । श० स० २२७ (ई० स० ३०५) में उस पर क्षत्रप रुद्रसिंह द्वितीयका अधिकार होगया था । यह रुद्रसिंह स्वामी जीवदामाका पुत्र था ।

चष्टनके चाँदी और ताँबेके सिक्के मिले हैं । इनमेंके क्षत्रप उपाधिवाले चाँदीके सिक्कोंपर ब्राह्मी अक्षरोंमें " राज्ञो क्षत्रपस ध्समोतिकपुत्रस ..." और महाक्षत्रप उपाधिवालों पर " राज्ञो महाक्षत्रपस घ्समोतिकपुत्रस चष्टनस " पढा गया है । तथा खरोष्ठीमें क्रमशः " रञो छ .." और " चटनस " पढ़ा जाता है ।

हम पहले लिख चुके हैं कि चष्टनके और उसके वंशजोंके सिक्कोंपर चैत्य बना होता है । इससे भी अनुमान होता है कि इसकी राज्यप्राप्तिसे आन्ध्रोंका कुछ न कुछ सम्बन्ध अवश्य ही था । क्योंकि नहपानको जीत कर आन्ध्रवंशी शातकर्णिने ही पहले पहल उक्त चैत्यका चिह्न उसके सिक्कोंपर लगवाया था ।

यद्यपि चष्टनके तांबेके चौरस सिक्के भी मिले हैं । परंतु उन पर लिखा हुआ लेख साफ साफ नहीं पढा जाता ।

जयदामा ।

[श० स० ४६–७२ (ई० स० १२४—१५०=वि० स० १८१—२०७) के मध्य]

यह चष्टनका पुत्र था । इसके सिक्कों पर केवल क्षत्रप उपाधि ही मिलती है । इससे अनुमान होता है कि या तो यह अपने पिताके जीते जी ही मर गया होगा या अन्ध्रोंने हमला कर इसे अपने अधीन कर लिया होगा । यद्यपि इस विषयका अब तक कोई पूरा प्रमाण नहीं मिला है, तथापि इसके पुत्र रुद्रदामाके जूनागढसे मिले लेखसे पिछले

(१) Ep Ind, Vol VIII, p 38

अनुमानकी ही पुष्टि होती है। उसमें रुद्रदामाका स्वभुजबलसे महाक्षत्रप बनना और दक्षिणापथके शातकर्णीको दो बार हराना लिखा है।

जयदामाके सिक्कोंपर राजा और क्षत्रप शब्दके सिवा स्वामी शब्द भी लिखा होता है। यद्यपि उक्त 'स्वामी' उपाधि लेखोंमें इसके पूर्वके राजाओंके नामोंके साथ भी लगी मिलती है, तथापि सिक्कोंमें यह स्वामी रुद्रदामा द्वितीयसे ही बराबर मिलती है।

जयदामाके समयसे इनके नामोंमें भारतीयता आ गई थी। केवल जद (घ्सद) और दामन् इन्हीं दो शब्दोंसे इनकी वैदेशिकता प्रकट होती थी।

इसके ताँबेके चौरस सिक्के ही मिले हैं। इन पर ब्राह्मी अक्षरोंमें "राज्ञो क्षत्रपस स्वामी जयदामस" लिखा होता है। इसके एक प्रकारके और भी ताँबेके सिक्के मिलते है, उन पर एक तरफ हाथी और दूसरा तरफ उज्जैनका चिह्न होता है। परन्तु अब तकके मिले इस प्रकारके सिक्कोंमें ब्राह्मी लेखका केवल एक आध अक्षर ही पढा गया है। इसलिए निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि ये सिक्के जयदामाके ही हैं या किसी अन्यके।

रुद्रदामा प्रथम।

[श० स० ७२ (ई० स० १५०=वि० स० २०७)]

यह जयदामाका पुत्र और चष्टनका पौत्र था। तथा इनके वंशमें यह बडा प्रतापी राजा हुआ।

इसके समयका शक-संवत् ७२ का एक लेख[1] जूनागडसे मिला है। यह गिरनार-पर्वतकी उसी चट्टानके पीछेकी तरफ खुदा हुआ है जिस पर मौर्यवंशी राजा अशोकने अपना लेख खुदवाया था। इस लेखसे पाया जाता है कि इसने अपने पराक्रमसे ही महाक्षत्रपकी उपाधि प्राप्त

(१) Ep Ind, Vol VIII, p 36

की थी तथा आकर (पूर्वी मालवा), अवन्ति (पश्चिमी मालवा), अनूप, आनर्त (उत्तरी काठियावाड), सुराष्ट्र (दक्षिण काठियावाड), श्वभ्र (उत्तरी गुजरात), मरु (मारवाड), कच्छ, सिन्धु (सिन्ध), सौवीर (मुलतान), कुकुर (पूर्वी राजपूताना), अपरान्त (उत्तरी कोंकन), और निषाद (भीलोंका देश) आदि देशों पर अपना अधिकार जमाया था ।

इसने यौद्धेय (जोहिया) लोगोंको हराया और दक्षिणके राजा शातकर्णीको दो वार परास्त किया । परन्तु उसे निकटका सम्बन्धी समझकर जानसे नहीं मारा । शायद यह राजा (वासिष्ठीपुत्र) पुलुमावी द्वितीय होगा, जिसका विवाह इसी रुद्रदामाकी कन्यासे हुआ था ।

रुद्रदामाने अपने आनर्त्त और सुराष्ट्रके सूबेदार सुविशाख द्वारा सुदर्शन झीलका जीर्णोद्धार करवाया था । उक्त समयकी यादगारमें ही पूर्वोक्त लेख भी खुद्रवाया था ।

यह राजा बडा विद्वान् और प्रतापी था । इसे अनेक स्वयंवरोंमें राजकन्याओंने वरमालायें पहनाई थीं । इसकी राजधानी भी उज्जैन ही थी । परन्तु राज्य-प्रबन्धकी सुविधाके लिए इसने अपने राज्यके भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें सूबेदार नियत कर रक्खे थे ।

रुद्रदामाके केवल महाक्षत्रप उपाधिवाले चाँदीके सिक्के ही मिलते हैं । इन पर " राज्ञो क्षत्रपस जयदामपुत्रस राज्ञोमहाक्षत्रपस रुद्रदामस " लिखा होता है । परन्तु किसी किसी पर "...जयदामपुत्रस..." के बजाय "...जयदामस पुत्रस...." भी लिखा मिलता है । "

इसके दो पुत्र थे । दामजद और रुद्रसिंह ।

सुदर्शन झील । उपर्युक्त झील, जिसकी यादगारमें पूर्वोल्लिखित लेख खोदा गया था, जूनागढमें गिरनार-पर्वतके निकट है । पहले पहल

इसे मौर्यवंशी राजा चन्द्रगुप्त (ईसाके पूर्व ३२२ से २९७) के सूबेदार वैश्य पुष्यगुप्तने बनवाया था । उक्त चन्द्रगुप्तके पौत्र राजा अशोकके समय (ईसाके पूर्व २७२–२३२) ईरानी तुपास्फने इसमेंसे नहरें निकाली थीं । परन्तु महाक्षत्रप रुद्रदामाके समय सुवर्णसिकता और पलाशिनी आदि नदियोंके प्रवाहसे इसका बाँध टूट गया । उस समय उक्त राजाके सूबेदार सुविशाखने इसका जीर्णोद्धार करवाया । यह सुविशाख पह्लव-वंशी कुलाइपका पुत्र था । तथा इसी कार्य्यकी यादगारमें उक्त लेख गिरनार पर्वतकी उसी चट्टानके पीछे खुदवाया गया था जिसपर अशोकने नहरें निकलवाते समय अपनी आज्ञायें खुदवाई थीं । अन्तमें इसका बाँध फिर टूट गया । तब गुप्तवंशी राजा स्कन्दगुप्तने, ईसवी सन् ४५८ में, इसकी मरम्मत करवाई ।

दामजद्श्री (दामघ्सद) प्रथम ।

[श० स० ७२–१०० (ई० स० १५०–१७८=वि० सं० २०५–२३५)]

यह रुद्रदामा प्रथमका पुत्र और उत्तराधिकारी था । यद्यपि इसके भाई रुद्रसिंह प्रथम और भतीजे रुद्रसेन प्रथमके लेखोंमें इसका नाम नहीं है तथापि जयदामाका उत्तराधिकारी यही हुआ था ।

इसके भाई और पुत्रके संवत्वाले सिक्कोंको देखनेसे पता चलता है कि दामजद्के बाद इसके भाई और पुत्र दोनोंमें राज्याधिकारके लिए झगडा चला होगा । परन्तु अन्तमें इसका भाई रुद्रसिंह प्रथम ही इसका उत्तराधिकारी हुआ । इसीसे रुद्रसिंहने अपने लेखकी वंशावलीमें अपने पहले इसका नाम न लिख कर सीधा अपने पिताका ही नाम लिख दिया है । बहुधा वंशावलियोंमें लेखक ऐसा ही किया करते हैं ।

इसने केवल चाँदीके सिक्के ही ढलवाये थे । इन पर क्षत्रप और महाक्षत्रप दोनों ही उपाधियाँ मिलती हैं । इसके क्षत्रप उपाधिवाले सिक्कोंपर " राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रदामपुत्रस राज्ञो क्षत्रपस दामघ्सदस" या " राज्ञो

महाक्षत्रपस रुद्रदाम्नपुत्रस राज्ञ क्षत्रपस दामजदश्रिय " लिखा रहता है। परन्तु कुछ सिक्के ऐसे भी मिले हैं जिन पर " राज्ञो महाक्षत्रपस्य रुद्रदाम्न पुत्रस्य राज्ञ क्षत्रपस्य दामघस. " लिखा होता है। तथा इसके महाक्षत्रप उपाधिवाले सिक्कों पर " राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रदाम्नपुत्रस राज्ञो महाक्षत्रपस दामजदश्रिय " लिखा रहता है।

इसके दो पुत्र थे—सत्यदामा और जीवदामा।

जीवदामा।

[श० स० १ [० ०]–१२० (ई० स० १ [७८]–१९८=वि० स० २३५—२५५)]

यह दामजसका पुत्र और रुद्रसिंहका भतीजा था। इस राजासे क्षत्रपोंके चाँदीके सिक्को पर सिरके पीछे ब्राह्मी लिपिमें बराबर संवत् लिखे मिलते हैं। परन्तु जीवदामाके मिश्र धातुके सिक्कों पर भी संवत् लिखा रहता है।

जीवदामाके दो प्रकारके चाँदीके सिक्के मिले है। इन दोनों पर महाक्षत्रपकी उपाधि लिखी होती है। तथा इन दोनों प्रकारके सिक्कोंको ध्यानपूर्वक देखनेसे अनुमान होता है कि इन दोनोंके ढलवानेमें कुछ समयका अन्तर अवश्य रहा होगा। इस अनुमानकी पुष्टिमें एक प्रमाण और भी मिलता है। अर्थात् इसके चचा रुद्रसिंह प्रथमके सिक्कोंसे प्रकट होता है कि वह दो दफे क्षत्रप और दो ही दफे महाक्षत्रप हुआ था। इससे अनुमान होता है कि जीवदामाके पहली प्रकारके सिक्के रुद्रसिंहके प्रथम बार क्षत्रप रहनेके समय और दूसरी प्रकारके अपने चचा रुद्रसिंहके दूसरी बार क्षत्रप होनेके समय ढलवाये गये होंगे।

जीवदामाके पहले प्रकारके सिक्को पर उल्टी तरफ " राज्ञो महाक्षत्रपस दामजदश्रिय पुत्रस राज्ञो महाक्षत्रपस जीवदाम्न " और सीधी तरफ सिरके पीछे शक-संवत् १ [+ ' +] लिखा रहता

(१) संवत् एक सौके अगले अक्षर पढ़े नहीं गये हैं।

है । यद्यपि उक्त संवत् स्पष्ट तौरसे लिखा पढा नहीं जाता तथापि इसके चचा रुद्रसिंह प्रथमके सिक्कोंपर विचार करनेसे इसका कुछ कुछ निर्णय हो सकता है। रुद्रसिंह पहली बार श० स० १०३ से ११० तक और दूसरी बार ११३ से ११८ या ११९ तक महाक्षत्रप रहा था। इससे अनुमान होता है कि या तो जीवदामाके इन सिक्कों पर श० स० १०० से १०३ तकके या ११० से ११३ तकके बीचके संवत् होंगे। क्योंकि एक समयमें दो महाक्षत्रप नहीं होते थे। इन सिक्कोंके लेख आदिक बहुत कुछ इसके पिताके सिक्कोंके लेखादिसे मिलते हुए है।

इसके दूसरी प्रकारके सिक्कों पर एक तरफ "राज्ञो महाक्षत्रपस दामजदस पुत्रस राज्ञो महाक्षपस जीवदामस" और दूसरी तरफ श० स० ११९ और १२० लिखा रहता है। ये सिक्के इसके चचा रुद्रसिंह प्रथमके सिक्कोंसे बहुत कुछ मिलते हुए हैं।

जीवदामाके मिश्रधातुके सिक्कों पर उसके पिताका नाम नहीं होता। केवल एक तरफ "राज्ञोमहाक्षत्रपस जीवदामस" लिखा होता है और दूसरी तरफ शक-संवत् लिखा रहता है जिसमेंसे अब तक केवल श० स० ११९ ही पढा गया है।

आज तक ऐसा एक भी स्पष्ट प्रमाण नहीं मिला है जिससे यह पता चले कि रुद्रसिंहके महाक्षत्रप रहनेके समय जीवदामाकी उपाधि क्या थी।

रुद्रसिंह प्रथम।

[श० सं० १०२– ११८, ११९ ? (ई० स० १८०–१९६, १९७ ?–वि० सं० २३७–२५३, २५४ ?)]

यह रुद्रदामा प्रथमका पुत्र और दामजदका छोटा भाई था। इसके चाँदी और मिश्रधातुके सिक्के मिलते हैं। इससे पता चलता है कि यह श० स० १०२—१०३ तक क्षत्रप और श० स० १०३ से ११० तक

महाक्षत्रप था । परन्तु श० सं० ११० से ११२ तक यह फिर क्षत्रप हो गया था और श० स० ११३ से ११८ या ११९ तक दुबारा महाक्षत्रप रहा था ।

अब तक इसका कुछ भी पता नहीं चला है कि रुद्रसिंह महाक्षत्रप होकर फिर क्षत्रप क्यों हो गया । परन्तु अनुमानसे ज्ञात होता है कि सम्भवत् जीवदामाने उस पर विजय प्राप्त करके उसे अपने अधीन कर लिया होगा । अथवा यह भी सम्भव है कि यह किसी दूसरी शक्तिके हस्ताक्षेपका फल हो ।

रुद्रसिंहके क्षत्रप उपाधिवाले श० स० ११० के ढले चाँदीके सिक्कोंमें उलटी तरफ कुछ फरक है । अर्थात् चन्द्रमा, जो कि इस वंशके राजाओंके सिक्कों पर चैत्यकी बाईं तरफ होता है, दहिनी तरफ है, और इसी प्रकार दाईं तरफका तारामण्डल बाईं तरफ है । परन्तु यह फरक श० स० ११२ में फिर ठीक कर दिया गया है । अत यह नहीं कह सकते कि यह फरक योंही हो गया था या किसी विशेष कारणवश किया गया था ।

रुद्रसिंहके पहली वारके क्षत्रप उपाधिवाले सिक्कों पर "राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रदामपुत्रस राज्ञोक्षत्रपस रुद्रसीहस" और महाक्षत्रप उपाधिवालों पर "राज्ञो महाक्षत्रपस रुदादाम्न पुत्रस राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रसीहस" अथवा 'रुद्रदाम्न पुत्रस 'के स्थानमें 'रुद्रदामपुत्रस' लिखा रहता है । तथा दूसरी वारके क्षत्रप उपाधिवाले सिक्कों पर "राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रदाम्न पुत्रस राज्ञो क्षत्रपस रुद्रसीहस" और महाक्षत्रप उपाधिवालों पर "राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रदामपुत्रस राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रसीहस" अथवा 'रुद्रदामपुत्रस' की जगह 'रुद्रदाम्नपुत्रस' लिखा होता है । तथा इन सबके दूसरी तरफ क्रमशः पूर्वोक्त शक-संवत् लिखे रहते हैं ।

इसके मिश्रधातुके सिक्कों पर एक तरफ "राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रसीहस" और दूसरी तरफ श० स० ११[1] × लिखा मिलता है।

इस रुद्रसिंहके समयके दो लेख भी मिले हैं। इनमेंसे एक श० सं० १०३ की वैशाख शुक्ला पञ्चमीका है[2]। यह गुंढा (काठियावाड़) में मिला है। इसमें इसकी उपाधि क्षत्रप लिखी है। दूसरा लेख चैत्र शुक्ला पञ्चमीका है[3]। यह जूनागढमें मिला है और इसका संवत् टूट गया है। इस लेखमें राजाका नाम नहीं लिखा। केवल जयदामाके पौत्रका उल्लेख है। अत पूरी तौरसे नहीं कह सकते कि यह लेख इसीका है या इसके भाई दामजदका है।

इसके तीन पुत्र थे। रुद्रसेन, संघदामा और दामसेन।

सत्यदामा।

[सम्भवत श० स० ११९—१२० (ई० स० १९७—१९८=वि० स० २५४—२५५)]

यह दामजदश्री प्रथमका पुत्र था।

इसके क्षत्रप उपाधिवाले चाँदीके सिक्के मिले हैं। इन पर एक तरफ "राज्ञो महाक्षत्रपस्य दामजदश्रिय पुत्रस्य राज्ञो क्षत्रपस्य सत्यदाम्न" लिखा रहता है। यह लेख करीब करीब संस्कृत-रूपसे मिलता हुआ है। इन सिक्कोंके दूसरी तरफ शक-संवत् लिखा होता है। परन्तु अब तक एक सौके आगले अङ्क नहीं पढ़े गये हैं।

सत्यदामाके सिक्कोंकी लेख-प्रणालीसे अनुमान होता है कि या तो यह अपने पिता दामजदश्री प्रथमके महाक्षत्रप होनेके समय क्षत्रप था या अपने भाई जीवदामाके प्रथम बार महाक्षत्रप होनेके समय।

(१) यह अङ्क स्पष्ट नहीं पढ़ा जाता है।

(२) Ind Ant, Vol. X, P. 157, (३) J. R A. S., 1890, P 651,

रापसन साहबका अनुमान है कि शायद यह सन्यदामा जीवदामाका बडा भाई होगा ।

रुद्रसेन प्रथम ।

[श० स० १२१—१४४ (ई० स० १९९—२२२= वि० स० २५६—२७९)]

यह रुद्रसिंह प्रथमका पुत्र था ।

इसके चाँदी और मिश्रधातुके सिक्के मिलते हैं । इन पर शक-संवत् लिखा हुआ होता है । इनमेंसे क्षत्रप उपाधिवाले चाँदीके सिक्कों पर एक तरफ "राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रसीहसपुत्रस राज्ञः क्षत्रपस रुद्रसेनस" और दूसरी तरफ श० स० १२१ या १२२[1] लिखा रहता है । तथा महाक्षत्रप उपाधिवालों पर उलटी तरफ "राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रसीहस पुत्रस राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रसेनस" और सीधी तरफ श० स० १२२ से १४४ तकका कोई एक संवत् लिखा होता है ।

इसके मिश्रधातुके सिक्कोंपर लेख नहीं होता । केवल श० स० १३१ या १३३ होनेसे विदित होता है कि ये सिक्के भी इसीके समयके हैं ।

रुद्रसेनके समयके दो लेख भी मिले हैं । पहला मूलवासर (बड़ौदा राज्य) गाँवमें मिला है[2] । यह श० स०१२२ की वैशाख कृष्णा पञ्चमीका है । इसमें इसकी उपाधि "राजा महाक्षत्रप स्वामी" लिखी है । दूसरा लेख जसधन (उत्तरी काठियावाड़) में मिला है[3]। यह श० स० १२७ (या १२६) की भाद्रपद कृष्णा पञ्चमीका है । इसमें एक तालाव बनवानेका वर्णन है । इसमें इनकी वंशावली इस प्रकार दी है—

---

(१) यह २ का अङ्क स्पष्ट पढा नहीं जाता है ।
(२) J R A S, 1890, p 652, (३) J. R A. S, 1890, p 652,

१ राजा महाक्षत्रप भद्रमुख स्वामी चष्टन
२ राजा क्षत्रप स्वामी जयदामा
३ राजा महाक्षत्रप भद्रमुख स्वामी रुद्रदामा
४ राजा महाक्षत्रप भद्रमुख स्वामी रुद्रसिंह
५ राजा महाक्षत्रप स्वामी रुद्रसेन

इसमें जयदामाके नामके आगे भद्रमुखकी उपाधि नहीं है। इसका कारण शायद इसका महाक्षत्रप न हो सकना ही होगा। तथा पूर्वोक्त वंशावलीमें दामजदश्री और जीवदामाका नाम ही नहीं दिया है। इसका कारण उनका दूसरी शाखामें होना ही है।

रुद्रसेनके दो पुत्र थे। पृथ्वीसेन और दामजदश्री (द्वितीय)।

पृथ्वीसेन।

[श० स० १४४ (ई० स० २२२ = वि० सं० २७९)]

यह रुद्रसेन प्रथमका पुत्र था।

इसके केवल क्षत्रप उपाधिवाले चाँदीके ही सिक्के मिले हैं। इनपर एक तरफ "राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रसेनस पुत्रस राज्ञो क्षत्रपस पृथिविसेनस" और दूसरी तरफ श० सं० १४४ लिखा रहता है।

यह राजा क्षत्रप ही रहा था। महाक्षत्रप न हो सका, क्योंकि इसी वर्ष इसका पिता मर गया और इसके चचा संघदामाने राज्यपर अपना अधिकार कर लिया।

(इसके बाद शकसंवत् १५४ तकका एक भी क्षत्रप उपाधिवाला सिक्का अब तक नहीं मिला है।)

संघदामा।

[श० सं० १४४, १४५ (ई० स० २२२, २२३=वि० सं० २७९, २८०)]

यह रुद्रसिंह प्रथमका पुत्र था।

इसके केवल चाँदीके महाक्षत्रप उपाधिवाले सिक्के ही मिले हैं। इन पर एक तरफ " राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रसीहस पुत्रस राज्ञो महाक्षत्रपस्य संघदाम्ना " और दूसरी तरफ श० सं० १४४ या १४५ लिखा होता है।

श० सं० १४४ में इसका बड़ा भाई रुद्रसेन प्रथम और श० सं० १४५ में इसका उत्तराधिकारी दामसेन महाक्षत्रप था। अतः इसका राज्य इन दोनों वर्षोंके मध्यमें ही होना सम्भव है।

दामसेन।

[श० सं० १४५—१५८ (ई० स० २२३—२३६=वि० सं० २८०–२९३)]

यह रुद्रसिंह प्रथमका पुत्र था।

इसके चाँदी और मिश्रधातुके सिक्के मिलते हैं। चाँदीके सिक्कों पर उलटी तरफ " राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रसीहस पुत्रस राज्ञो महाक्षत्रपस दामसेनस " और सीधी तरफ श० सं० १४५ से १५८ तक का कोई एक संवत् लिखा रहता है। इससे प्रकट होता है कि इसने श० सं० १५८ के करीब तक ही राज्य किया था। क्योंकि इसके बाद श० सं० १५८ और १६१ के बीच ईश्वरदत्त महाक्षत्रप हो गया था। इस ईश्वरदत्तके सिक्कों पर शक-संवत् नहीं लिखा होता। केवल उसका राज्य-वर्ष ही लिखा रहता है।

श० सं० १५१ के दामसेनके चाँदीके सिक्कों पर भी (रुद्रसिंह प्रथमके क्षत्रप उपाधिवाले श० सं० ११० के चाँदीके सिक्कोंकी तरह) चैत्यकी बाईं तरफवाला चन्द्रमा दाईं तरफ और दाईं तरफका तारामण्डल बाईं तरफ होता है।

इसके मिश्रधातुके सिक्कों पर नाम नहीं होता। केवल संवत्से ही जाना जाता है कि ये सिक्के भी इसीके समयके हैं।

इसके चार पुत्र थे। वीरदामा, यशोदामा, विजयसेन और दामजदश्री (तृतीय)।

दामजद्श्री (द्वितीय)।

[श० सं० १५४, १५५ (ई० स० २३२, २३३=वि० सं० २८९, २९०)]

यह रुद्रसेन प्रथमका पुत्र था।

इसके सिकोंसे पता चलता है कि यह अपने चचा महाक्षत्रप दामसेन-के समय श० सं० १५४ और १५५ में क्षत्रप था।

इसके क्षत्रप उपाधिवाले चाँदीके सिक्के मिले हैं। इन पर एक तरफ़ " राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रसेनपुत्रस राज्ञः क्षत्रपस दामजदश्रियः " और दूसरी तरफ़ श० सं० १५४ या १५५ लिखा होता है।

ये सिक्के भी दो प्रकारके होते हैं। एक प्रकारके सिक्कों पर चन्द्रमा और तारामण्डल क्रमशः चैत्यके बाएँ और दाएँ होते हैं और दूसरी तरहके सिक्कों पर क्रमशः दाएँ और बाएँ।

वीरदामा।

[श० सं० १५६—१६० (ई० स० २३४—२३८=वि० सं० २९१—२९५)]

यह दामसेनका पुत्र था।

इसके क्षत्रप उपाधिवाले चाँदीके सिक्के मिले हैं। इन पर उलटी तरफ " राज्ञो महाक्षत्रपस दामसेनस पुत्रस राज्ञः क्षत्रपस वीरदाम्नः " और सीधी तरफ श० सं० १५६ से १६० तकका कोई एक संवत् लिखा रहता है।

इसके पुत्रका नाम रुद्रसेन (द्वितीय) था।

ईश्वरदत्त।

[श० सं० १५८ से १६१ (ई० स० २३६ से २३९= वि० सं० २९३ से २९६) के मध्य।]

इसके नामसे और इसके सिक्कोंमें दिये हुए राज्य-वर्षोंसे अनुमान होता है कि यह पूर्वोल्लिखित चष्टनके वंशजोंमेंसे नहीं था। इसका नाम

नोट—जिन नामोंके आगे १ से २२ तकके अङ्क लिखे हैं वे महाक्षत्रप हुए थे। और जो केवल क्षत्रप ही रहे थे उनके नामके आगे कुछ नहीं लिखा है। परन्तु जो न तो महाक्षत्रप ही हुए और न क्षत्रप ही उनके नामके आगे तारेका (*) चिन्ह लगा दिया गया है।

(पृष्ठ २६)

और राज्य-वर्षोंके लिखनेकी प्रणाली आभीर[1]-राजाओंसे मिलती है, जिन्होंने नासिकके आन्ध्र राजाओंके राज्यपर अधिकार कर लिया था। परन्तु इसके नामके आगे महाक्षत्रपकी उपाधि लगी होनेसे अनुमान होता है कि शायद इसने क्षत्रपोंके राज्य पर हमला कर विजय प्राप्त की हो,[1] जैसा कि प० भगवानलाल इन्द्रजीका अनुमान है।

राप्सन साहबने ईश्वरदत्तके सिक्कों परके राजाके मस्तककी बनावटसे और अक्षरोंकी लिखावटसे इसका समय श० स० १५८ और १६१ के बीच निश्चित किया है[2]।

क्षत्रपोंके सिक्कोंको देखनेसे भी यह समय ठीक प्रतीत होता है, क्योंकि इस समयके बीचके महाक्षत्रपका एक भी सिक्का अब तक नहीं मिला है।

ईश्वरदत्तके पहले और दूसरे राज्य वर्षके सिक्के मिले हैं। इनमेंके पहले वर्षवालोंपर उलटी तरफ "राज्ञो महाक्षत्रपस ईश्वरदत्तस वर्षे प्रथमे" और सीधी तरफ राजाके सिरके पीछे १ का अङ्क लिखा होता है। तथा दूसरे वर्षके सिक्कोंपर उलटी तरफ "राज्ञो महाक्षत्रपस ईश्वरदत्तस वर्षे द्वितीये" और सीधी तरफ २ का अङ्क लिखा रहता है।

यशोदामा (प्रथम)।

[श० स० १६०, १६१ (ई० स० २३८, २३९,=वि० स० २९५, २९६)]

यह दामसेनका पुत्र था और अपने भाई क्षत्रप वीरदामाके बाद श०

(१) आभीर शिवदत्तके पुत्र ईश्वरसेनके राज्यके नवें वर्षका नासिकका लेख (Ep Ind, Vol VIII, p 88)

(२) J R A S, 1890, p 657 (३) Rapson, Catalogue of the Andhra and Kshatrapa dynasties etc, p CXXXV

सं० १६० में ही क्षत्रप हो गया था, क्योंकि इसी वर्षके इसके भाईके भी क्षत्रप उपाधिवाले सिक्के मिले है।

यशोदामाके क्षत्रप उपाधिवाले चाँदीके सिक्कोंपर उलटी तरफ "राज्ञो महाक्षत्रपस दामसेनस पुत्रस राज्ञः क्षत्रपस यशोदाम्न" और सीधी तरफ श० सं० १६० लिखा होता है।

इसके महाक्षप उपाधिवाले सिक्के भी मिलते हैं। इससे प्रकट होता है कि ईश्वरदत्त द्वारा छीनी गई अपनी वश-परपरागत महाक्षत्रपकी उपाधिको श० स० १६१ में इसने फिरसे प्राप्त की थी। इस समयके इसके सिक्कों पर उलटी तरफ "राज्ञो महाक्षत्रपस दामसेनस पुत्रस राज्ञो महाक्षत्रपस यशोदाम्न" और सीधी तरफ श० सं० १६१ लिखा मिलता है।

विजयसेन।

[श० स० १६०-१७२ (ई० स० २३८-२५०=वि० स० २९५-३०७)]

यह दामसेनका पुत्र और वीरदामा तथा यशोदामाका भाई था। इसके भी शक-संवत् १६० के क्षत्रप उपाधिवाले चाँदीके सिक्के मिले हैं। इसी सवत्के इसके पूर्वोक्त दोनों भाईयोंके भी क्षत्रप उपाधिवाले सिक्के मिले हैं। विजयसेनके इन सिक्कों पर एक तरफ "राज्ञो महाक्षत्रपस दामसेनपुत्रस राज्ञ क्षत्रपस विजयसेनस" और दूसरी तरफ शक-सं० १६० लिखा रहता है।

शक-स० १६२ से १७२ तकके इसके महाक्षत्रप उपाधिवाले सिक्के भी मिले हैं। इन पर एक तरफ "राज्ञो महाक्षत्रपस दामसेनपुत्रस राज्ञो महाक्षत्रपस विजयसेनस" लिखा रहता है, परन्तु अभी तक यह निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि शक-स० १६१ में यह क्षत्रप ही था या महाक्षत्रप हो गया था। आशा है उक्त संवत्के इसके साफ सिक्के मिल जाने पर यह गडबड़ मिट जायगी।

विजयसेनके शक-सं० १६७ और १६८ के ढले सिक्कोंसे लेकर इस वंशकी समाप्ति तकके सिक्कोंमें उत्तरोत्तर कारीगरीका ह्रास पाया जाता है । परन्तु बीचबीचमें इस ह्रासको दूर करनेकी चेष्टाका किया जाना भी प्रकट होता है ।

दामजदश्री तृतीय ।

[श०-सं० १७२ (या १७३)-१७६ (ई० स० २५०) (या २५१)-२५४=वि० सं० ३०७ (या ३०८)-३११)]

यह दामसेनका पुत्र था और श० सं० १७२ या १७३ में अपने भाई विजयसेनका उत्तराधिकारी हुआ ।

इसके महाक्षत्रप उपाधिवाले चाँदीके सिक्के मिले हैं । इन पर उलटी तरफ " राज्ञो महाक्षत्रपस दामसेनपुत्रस राज्ञो महाक्षत्रपस दामजदश्रियः" या "...० श्रिय " —और सीधी तरफ संवत् लिखा रहता है ।

रुद्रसेन द्वितीय ।

[शक-सं० १७८ (?)—१९६ (ई० स० २५६ (?)—२७४)=वि० सं० ३१३ (?)—३३१)]

यह वीरदामाका पुत्र और अपने चचा दामजदश्री तृतीयका उत्तराधिकारी था ।

इसके सिक्कोंपर संवतोंके साफ पढ़े न जानेके कारण इसके राज्य-समयका निश्चित करना कठिन है । इसके सिक्कोंपरका सबसे पहला संवत् १७८ और १७९ के बीचका और आखिरी १९६ होना चाहिए ।

इसके महाक्षत्रप उपाधिवाले चाँदीके सिक्के मिले हैं । इन पर उलटी तरफ " राज्ञः क्षत्रपस वीरदामपुत्रस राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रसेनस " और सीधी तरफ शक-सं० लिखा रहता है ।

इसके दोपुत्र थे । विश्वसिंह और भर्तृदामा ।

विश्वसिंह ।

[शक-सं० १९९-२० × [1] (ई० स० २७७-२७ × =वि०स० ३३४—३३ ×)]

यह रुद्रसेन द्वितीयका पुत्र था । यह शक-संवत् १९९ और २०० में क्षत्रप था और शक-सं० २०१ में शायद महाक्षत्रप हो गया था। उस समय इसका भाई भर्तृदामा क्षत्रप था, जो शक-सं० २११ में महाक्षत्रप हुआ ।

इसके सिक्कोंपरके संवत् साफ नहीं पढे जाते हैं ।

इसके क्षत्रप उपाधिवाले सिक्कों पर उलटी तरफ " राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रसेनपुत्रस राज्ञः क्षत्रपस वीश्वसीहस " और महाक्षत्रप उपाधिवालों पर " राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रसेनपुत्रस राज्ञो महाक्षत्रपस वीश्वसीहस " लिखा होता है । तथा सीधी तरफ औरोंकी तरह ही संवत् आदि होते हैं।

भर्तृदामा ।

[श० स० २०१—२१७ (ई० स० २७९-२९५ =वि० सं० ३३६-३५२)]

यह रुद्रसेन द्वितीयका पुत्र था और अपने भाई विश्वसिंहका उत्तराधिकारी हुआ । श० सं० २०१ में यह क्षत्रप हुआ और कमसे कम श० सं० २०४ तक अवश्य इसी पद पर रहा था । तथा श० सं० २११ में महाक्षत्रप हो चुका था । उक्त संवतोंके बीचके साफ संवत्वाले सिक्कोंके न मिलनेके कारण इस बातका पूरा पूरा पता लगाना कठिन है कि उक्त संवतोंके बीचमें कब तक यह क्षत्रप रहा और कब महाक्षत्रप हुआ । इसने श०-सं० २१७ तक राज्य किया था

इसके क्षत्रप उपाधिवाले सिक्कों पर उलटी तरफ " राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रसेनपुत्रस राज्ञ क्षत्रपस भर्तृदाम्न." और महाक्षत्रप उपाधिवालोंपर " राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रसेनपुत्रस राज्ञो महाक्षत्रपस भर्तृदाम्नः" लिखा मिलता है ।

---

(१) यह अङ्क साफ नहीं पढा जाता है ।

इसके सिक्कोंमेंसे पहलेके सिक्के तो इसके भाई विश्वसिंहके सिक्कोंसे मिलते हुए है और श०-सं० २११ के बादके इसके पुत्र विश्वसेनके सिक्कोंसे मिलते हैं।

इसके पुत्रका नाम विश्वसेन था।

विश्वसेन।

[श०-सं० २१६-२२६ (ई० स० २९४-३०४=वि० स० ३५१-३६१)]

यह भर्तृदामाका पुत्र था। इसके श०-सं० २१६ से २२६ तकके क्षत्रप उपाधिवाले चाँदीके सिक्के मिले है। इन पर "राज्ञो महाक्षत्रपस भर्तृदामपुत्रस राज्ञो क्षत्रपस विश्वसेनस" लिखा होता है। परन्तु इन सिक्कोंपरके सवत् विशेषतर स्पष्ट नहीं मिले है।

दूसरी शाखा।

पूर्वोक्त क्षत्रप विश्वसेनसे इस शाखाकी समाप्ति होगई और इनके राज्यपर स्वामी जीवदामाके वंशजोंका अधिकार होगया। इस जीवदामाके नामके साथ 'स्वामी' शब्दके सिवा 'राजा' 'क्षत्रप' या 'महाक्षत्रप' की एक भी उपाधि नहीं मिलती, परन्तु इसकी स्वामीकी उपाधिसे और नामके पिछले भागमें 'दामा' शब्दके होनेसे अनुमान होता है कि इसके और चष्टनके वंशजोंके आपसमें कोई निकटका ही सम्बन्ध था। सम्भवतः यह उसी वंशकी छोटी शाखा हो तो आश्चर्य नहीं।

पूर्वोक्त क्षत्रप चष्टनके वंशजोंमें यह नियम था कि राजाकी उपाधि महाक्षत्रप और उसके युवराज या उत्तराधिकारीकी क्षत्रप होती थी। परन्तु इस (स्वामी जीवदामा) के वंशमें श०-सं० २७० तक यह नियम नहीं मिलता है। पहले पहल केवल इसी (२७०) संवत्के स्वामी रुद्रसेन तृतीयके सिक्कों पर उसके पिताके नामके साथ 'महाक्षत्रप' उपाधि लगी मिलती है।

महाक्षत्रप उपाधिवाले उक्त समयके सिक्कोंके न मिलनेसे यह भी अनुमान होता है कि शायद उस समय इस राज्य पर किसी विदेशी शक्तिकी चढ़ाई हुई हो और उसीका अधिकार हो गया हो। परन्तु जब तक अन्य किसी वंशके इतिहाससे इस बातकी पुष्टि न होगी तब तक यह विषय सन्दिग्ध ही रहेगा।

रुद्रसिंह द्वितीय।

[श०-सं० २२७–२३x[1] (ई०स० ३०५–३१x=वि० सं० ३६२–३६+)]

यह स्वामी जीवदामाका पुत्र था। इसके सबसे पहले श०-सं० २२७ के क्षत्रप उपाधिवाले चाँदीके सिक्के मिले हैं और इसके पूर्वके श०-सं० २२६ तकके क्षत्रप विश्वसेनके सिक्के मिलते हैं। अतः पूरी तौरसे नहीं कह सकते कि यह रुद्रसिंह द्वितीय श०-सं० २२६ में ही क्षत्रप होगया था या श०-सं० २२७ में हुआ था।

श०-सं० २३९ के इसके उत्तराधिकारी क्षत्रप यशोदामाके सिक्के मिले हैं। अतः यह स्पष्ट है कि इसका अधिकार श०-सं० २२६ या २२७ से आरम्भ होकर श०-सं० २३९ की समाप्तिके पूर्व किसी समय तक रहा था।

इसके सिक्कों पर एक तरफ "स्वामी जीवदामपुत्रस राज्ञो क्षत्रपस रुद्रसिंहसः" और दूसरी तरफ मस्तकके पीछे संवत् लिखा मिलता है।

इसके पुत्रका नाम यशोदामा था।

यशोदामा द्वितीय।

[श०-सं० २३९–२५४ (ई०स०३१७–३३२=वि० सं० ३७४–३८९)]

यह रुद्रसिंह द्वितीयका पुत्र था। इसके श० सं० २३९ से २५४ तकके चाँदीके सिक्के मिले हैं। इन पर "राज्ञ क्षत्रपस रुद्रसिंहपुत्रस राज्ञ-

(१) इसके सिक्कोंके संवतोंमेंसे केवल २३१ तकके ही संवत् स्पष्ट पढ़े गये हैं। अगले संवतोंके अङ्क साफ नहीं हैं।

क्षत्रपस यशोदाम्नः" लिखा रहता है । किसी किसीमें 'दाम्नः' में विसर्ग नहीं लगे होते हैं।

स्वामी रुद्रदामा द्वितीय।

इसका पता केवल इसके पुत्र स्वामी रुद्रसेन तृतीयके सिक्कोंसे ही मिलता है। उनमें इसके नामके आगे 'महाक्षत्रप' की उपाधि लगी हुई है। भर्तृदामाके बाद पहले पहल इसके नामके साथ महाक्षत्रपकी उपाधि लगी मिली है।

स्वामी जीवदामाके वंशजोंके साथ इसका क्या सम्बन्ध था, इस बातका पता अब तक नहीं लगा है। सिक्कोंमें इस राजाके और इसके वंशजोंके नामोंके आगे "राजा महाक्षत्रप स्वामी" की उपाधियाँ लगी होती हैं। परन्तु स्वामी सिंहसेनके कुछ सिक्कोंमें "महाराजाक्षत्रप स्वामी" की उपाधियाँ लगी हैं।

इसके एक पुत्र और एक कन्या थी। पुत्रका नाम स्वामी रुद्रसेन था।

स्वामी रुद्रसेन तृतीय।

[श० स० २७०—३०० (ई० स० ३४८—३७८=वि० सं० ४०५—४३५)]

यह रुद्रदामा द्वितीयका पुत्र था। इसके चाँदीके सिक्के मिले हैं। इन पर श० सं० २७० से २७३ तकके और श० सं० २८६ से ३०० तकके संवत् लिखे हुए हैं। परन्तु इस समयके बीचके १२ वर्षोंके सिक्के अब तक नहीं मिले हैं। इन सिक्कोंपर एक तरफ "राज्ञ महाक्षत्रपस स्वामी रुद्रदामपुत्रस राज्ञमहाक्षत्रपस स्वामी रुद्रसेनस" और दूसरी तरफ संवत् लिखा रहता है।

इन सिक्कोंके अक्षर आदि बहुत ही बुरी अवस्थामें होते हैं। परन्तु पिछले समयके कुछ सिक्कोंपर ये साफ साफ पढ़े जाते हैं। इससे अनुमान होता है कि उस समयके अधिकारियोंको भी इस बातका भय हुआ होगा कि यदि अक्षरोंकी दशा सुधारी न गई और इसी प्रकार उत्तरोत्तर बिगड़ती गई तो कुछ समय बाद इनका पढ़ना कठिन हो जायगा।

श० सं० २७३ से २८६ तकके १३ वर्षके सिक्कोंके न मिलनेसे अनुमान होता है कि उस समय इनके राज्यमें अवश्य ही कोई बड़ी गड़बड़ मची होगी, जिससे सिक्के ढलवानेका कार्य बन्द हो गया था। यही अवस्था क्षत्रप यशोदामा द्वितीयके और महाक्षत्रप स्वामी रुद्रदामा द्वितीयके राज्यके बीच भी हुई होगी।

श०-स० २८० से २९४ तकके कुछ सीसेके चौकोर सिक्के मिले हैं। ये क्षत्रपोंके सिक्कोंसे मिलते हुए ही हैं। इनमें केवल *विशेषता* इतनी ही है कि उलटी तरफ चैत्यके नीचे ही संवत् लिखा होता है।

परन्तु निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि ये सिक्के स्वामी रुद्रसेन तृतीयके ही हैं या इसके राज्य पर हमला करनेवाले किसी अन्य राजाके हैं[१]।

स्वामी सिंहसेन।

[श० स० ३०४ + ३० +[३] (ई० स० ३८२ +३८४ ? = वि० स० ४३९-४४१ ?)]

यह स्वामी रुद्रसेन तृतीयका भानजा था। इसके महाक्षत्रप उपाधिवाले चाँदीके सिक्के मिले हैं। इन पर एक तरफ "राज्ञ महाक्षत्रपस स्वामी रुद्रसेनस राज्ञ महाक्षत्रपस स्वस्रियस्य स्वामी सिंहसेनस" या "महाराज क्षत्रप स्वामी रुद्रसेन स्वस्रियस राज्ञ महाक्षत्रपस स्वामी *सिंहसेनस्य*" और दूसरी तरफ श०-स० ३०४ लिखा रहता है। परन्तु एक सिक्के पर ३०६ भी पढ़ा जा सकता है।

इसके सिक्कों परके अक्षर बहुत ही खराब हैं। इससे इसमें नामके पढ़नेमें भ्रम हो जाता है, क्योंकि इसमें लिखे 'ह' और 'न' में

(१) J B B R A. S, Vlo XX, (1809), P 209

(२) Rapson s catalogue of the Andhra and Kshatrap dynasty, P CXLV & CXLVI

(३) यह अङ्क साफ नहीं पढ़ा जाता है।

(४) Rapson s catalogue of the coins of Andhra and Kshatrap dynasty, P CXLVI

अन्तर प्रतीत नहीं होता। अतः 'सिंह' को 'सेन' और 'सेन' को 'सिंह भी पढ़ सकते हैं।

हम पहले लिख चुकेहैं कि इसके कुछ सिक्कों पर "राजा महाक्षत्रप" और कुछ पर "महाराजा क्षत्रप" लिखा होता है। परन्तु यह कहना कठिन है कि उपर्युक्त परिवर्तन किसी खास सबवसे हुआ था या योंही हो गया था। यह भी सम्भव है कि "महाराजा"की उपाधिकी नकल इसने अपने पड़ोसी दाक्षिणके त्रैकूटक राजाओंके सिक्कोंसे की हो; क्योंकि ई० स० २४९ में इन्होंने अपना त्रैकूटक संवत् प्रचलित किया था। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि उस समय त्रैकूटकोंका प्रभाव खुब बढा हुआ था। यह भी सम्भव है कि ये त्रैकूटक राजा ईश्वरदत्तके उत्तराधिकारी हों और इन्हींकी चढाई आदिके कारण रुद्रसेन तृतीयके राज्यमें १२ वर्षके लिये और उसके पहले (श० सं०२५४ और २७० के बीच) भी सिक्के ढालना बन्द हुआ हो।

सिंहसेनके कुछ सिक्कोंमें संवत्के अङ्कोंके पहले 'वर्ष' लिखा होनेका अनुमान होता है[१]।

इसके पुत्रका नाम स्वामी रुद्रसेन था।

स्वामी रुद्रसेन चतुर्थ।

[श०-सं० ३०४–३१० (ई० स० ३८२–३८८=वि० सं० ४३९–४४५) के बीच]

यह स्वामी सिंहसेनका पुत्र और उत्तराधिकारी था। इसके बहुत थोड़े चाँदीके सिक्के मिले हैं। इनपर "राज्ञ महाक्षत्रपस स्वामी सिंहसेन पुत्रस राज्ञ महाक्षत्रपस स्वामी रुद्रसेनस" लिखा होता है। इसके सिक्कों परके अक्षर ऐसे खराब हैं कि इनमें राजाके नामके अगले दो अक्षर 'रुद्र' अन्दाजसे ही पढे गये हैं। इन सिक्कोंपरके संवत् भी नहीं पढ़े जाते। इसलिए इसके राज्य-समयका पूरी तौरसे निश्चित करना कठिन है। केवल

(१) Rapson's catalogue of the coins of the Andhra and Kshtrapa dynasty, p. CXLVIII.

इसके पिता सिंहसेनके सिक्कोंपरके श०-स०३०४ और इसके बादके स्वामी रुद्रसिंह तृतीयके सिक्कोंपरके संवत्पर विचार करनेसे इसका समय श०सं० ३०४ और ३१० के बीच प्रतीत होता है।

स्वामी सत्यसिंह।

इसका पता केवल इसके पुत्र स्वामी रुद्रसिंह तृतीयके सिकोंसे ही लगता है। अतः यह कहना भी कठिन है कि इसका पूर्वोक्त शासासे क्या सम्बन्ध था। शायद यह स्वामी सिंहसेनका भाई हो। इसका समय भी श० स० ३०४ और ३१० के बीच ही किसी समय होगा।

स्वामी रुद्रसिंह तृतीय।

[श०-स० ३१×[१] (ई०स०३८८ ?=वि० स०४४५ ?)]

यह स्वामी सत्यसिंहका पुत्र और इस वंशका अन्तिम अधिकारी था। इसके चाँदीके सिक्कोंपर एक तरफ "राज्ञो महाक्षत्रपस स्वामी सत्यसिंह-पुत्रस राज्ञ महाक्षत्रपस स्वामी रुद्रसिंहस" और दूसरी तरफ श० स० ३१× लिखा होता है।

समाप्ति।

ईसाकी तीसरी शताब्दीके उत्तरार्धसे ही गुप्त राजाओंका प्रभाव बढ रहा था और इसीके कारण आस पासके राजा उनकी अधीनता स्वीकार करते जाते थे। इलाहाबादके समुद्रगुप्तके लेखसे पता चलता है कि शक लोग भी उस (समुद्रगुप्त) की सेवामें रहते थे। ई० स० ३८०में समुद्रगुप्तका पुत्र चन्द्रगुप्त गद्दी पर बैठा। इसने ई० स० ३८८ के आस पास रहे सहे शकोंके राज्यको भी छीनकर अपने राज्यमें मिला लिया और इस तरह भारतमें शक राज्यकी समाप्ति हो गई।

---

(१) यह अङ्क साफ नहीं पढा जाता है।

२ हैहय-वंश ।

हैहयवंशी, जिनका दूसरा नाम कलचुरी मिलता है, चन्द्रवंशी क्षत्रिय । उनके लेखों और ताम्रपत्रोंमें, उनकी उत्पत्ति इस प्रकार लिखी है— 'भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्मा पैदा हुआ । उससे अत्रि, और अत्रिके नेत्रसे चन्द्र उत्पन्न हुआ । चन्द्रके पुत्र बुधने सूर्यकी पुत्री (इला) से विवाह किया, जिससे पुरूरवाने जन्म लिया । पुरूरवाके वंशमें १०० से अधिक अश्वमेध यज्ञ करनेवाला, भरत हुआ, जिसका वंशज कार्तवीर्य, माहिष्मती नगरी (नर्मदा तटपर) का राजा था । यह, अपने समयमें सबसे प्रतापी राजा हुआ । इसी कार्तवीर्यसे हैहय (कलचुरी) वंश चला ।

पिछले समयमें, हैहयोंका राज्य, चेदी देश, गुजरातके कुछ भाग और दक्षिणमें भी रहा था ।

कलचुरी राजा कर्णदेवने, चन्देल राजा कीर्तिवर्मासे जेजाहुती (बुंदेलखण्ड) का राज्य और उसका प्रसिद्ध कलिंजरका किला छीन लिया था; तबसे इनका खिताब 'कलिंजराधिपति' हुआ । इनका दूसरा खिताब 'त्रिकलिंगाधिपति' भी मिलता है । जनरल कनिंगहामका अनुमान है कि धनक या अमरावती, अन्ध या वरङ्गोल और कलिग या राजमहेन्द्री, ये तीनों राज्य मिले त्रिकलिग कहाता था । उन्होंने यह भी लिखा है कि त्रिकलिंग, तिलंगानाका पर्याय शब्द है ।

यद्यपि हैहयोंका राज्य, बहुत प्राचीन समयसे चला आता था; परन्तु अब उसका पूरा पूरा पता नहीं लगता । उन्होंने अपने नामका स्वतन्त्र

(१) Ep Ind, Vol,II, P. 8. (२) A. G. 518

सवत् चलाया था; जो कलचुरी संवत्के नामसे प्रसिद्ध था । परन्तु उसके चलानेवाले राजाके नामका, कुछ पता नहीं लगता । उक्त संवत् वि० स० ३०६ आश्विन शुक्ल १ से प्रारम्भ हुआ और १४ वीं शताब्दीके अन्त तक वह चलता रहा । कलचुरियोंके सिवाय, गुजरात (लाट) के चौलुक्य, गुर्जर, सेन्द्रक और त्रैकूटक वंशके राजाओंके ताम्रपत्रोंमें भी यह सम्वत् लिखा मिलता है ।

हैहयोंका शृङ्खलाबद्ध इतिहास वि० सं० ९२० के आसपाससे मिलता है, और इसके पूर्वका प्रसंगवशात् कहीं कहीं निकल आता है । जैसे—वि० सं० ५५० के निकट दक्षिण (कर्णाट) में चौलुक्योंने अपना राज्य स्थापन किया था, इसके लिये येवूरके लेखमें लिखा है कि, चौलुक्योंने नल, मौर्य, कदम्ब, राष्ट्रकूट और कलचुरियोंसे राज्य छीना था । आहोलेके लेखमें चौलुक्य राजा मंगलीश (श० स० ५१३–५३२=वि० स० ६४८–६६६) के वृत्तान्तमें लिखा है कि उसने अपनी तलवारके बलसे युद्धमें कलचुरियोंकी लक्ष्मी छीन ली । यद्यपि इस लेखमें कलचुरि राजाका नाम नहीं है, परन्तु महाकूटके स्तम्भ परके लेखमें उसका नाम बुद्ध और नरूरके ताम्रपत्रमें उसके पिताका नाम शंकरगण लिखा है । सखेड़ा (गुजरात) के शासनपत्रमें जो, पल्लपति (भील) निरहुल्लके सेनापति शांतिलका दिया हुआ है, शङ्करगणके पिताका नाम कृष्णराज मिलता है ।

बुद्धराज और शङ्करगण चेदिके राजा थे, इनकी राजधानी जबलपुरकी तेवर (त्रिपुरी) थी, और गुजरातका पूर्वी हिस्सा भी इनके ही अधीन था । अतएव सखेड़ाके ताम्रपत्रका शङ्करगण, चेदीका राजा शङ्करगण ही था ।

(१) Ind, Ant Vol, VIII, P. 11, (२) EP. ind VI, P 264. (३) Ind Ant vol XIX P 16 (४) Ind Ant vol VII, P 161 (५) Ep Ind vol. II P 24.

चौलुक्य विनयादित्यने दूसरे कई राजवंशियोंके साथ साथ हैहयोंको भी अपने अधीन किया था। और चौलुक्य विक्रमादित्यने (वि० सं० ७५२ सं० ७९०) हैहयवशी राजाकी दो बहिनोंसे विवाह किया था, जिनमें बडीका नाम लोकमहादेवी और छोटीका त्रैलोक्यमहादेवी था जिससे कीर्तिवर्मा (दूसरे) ने जन्म लिया।

उपर्युक्त प्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि वि० सं० ५५० से ७९० के बीच, हैहयोंका राज्य, चौलुक्य राज्यके उत्तरमें, अर्थात् चेदी और गुजरात (लाट) में था; परन्तु, उस समयका शृखलाबद्ध इतिहास नहीं मिलता। केवल तीन नाम कृष्णराज, शङ्करगण और बुद्धराज मिलते है, जिनमेंसे अन्तिम राजा, चौलुक्य मगलीशका समकालीन था। इस लिये उसका वि० सं० ६४८ से ६६६ के बीच विद्यमान होना स्थिर होता है। यद्यपि हैहयोंके राज्यका वि० सं० ५५० के पूर्वका कुछ पता नहीं चलता, परन्तु, ३०६ में उनका स्वतन्त्र सम्वत् चलाना सिद्ध करता है कि, उस समय उनका राज्य अवश्य विशेप उन्नति पर था।

१–कोकल्लदेव।

हैहयोंके लेखोंमें कोकल्लदेवसे वंशावली मिलती है। बनारसके दानपत्रमें उसको शास्त्रवेत्ता, धर्मात्मा, परोपकारी, दानी, योगाभ्यासी, तथा भोज, वल्लभराज, चित्रकूटके राजा श्रीहर्ष और शङ्करगणका निर्भय करनेवाला लिखा है। और बिल्हारीके शिलालेखमें लिखा है कि, उसने सारी पृथ्वीको जीत, दो कीर्तिस्तम्भ खडे किये थे–दक्षिणमें कृष्णराज और उत्तरमें भोजदेव। इस लेखसे प्रतीत होता है कि उपरोक्त दोनों राजा, कोकल्लदेवके समकालीन थे, जिनकी, शायद उसने

(१) Ind Ant vol VI P 92 (२) EH, Ind vol III, P. 5. (३) EP Ind vol II P. 305 (४) EP Ind vol I P 320.

सहायता की हो। इन दोनोंमेंसे भोज, कन्नौजका भोजदेव (तीसरा) होना चाहिये, जिसके समयके लेख वि० सं० ९१९, ९३२, ९३३, और (हर्ष) सं० २७६=(वि० सं० ९३९) के मिल चुके हैं। वल्लभराज, दक्षिणके राष्ट्रकूट (राठोड) राजा कृष्णराज (दूसरे) का उपनाम था। बिल्हारीके लेखमें, कोकल्लदेवके समय दक्षिणमें कृष्णराजका होना साफ साफ लिखा है, इसलिये वल्लभराज, यह नाम राठोड कृष्णराज दूसरेके वास्ते होना चाहिये जिसके समयके लेख श० सं० ७९७ (वि० स० ९३२), ८२२ (वि० ९५७), ८२४ (वि० ९५९) और ८३३ (वि० ९६८) के मिले हैं।

राठोडोंके लेखोंसे पाया जाता है कि, इसका विवाह, चेदीके राजा कोकल्लकी पुत्रीसे हुआ था, जो सकुककी छोटी बहिन थी।

चित्रकूट, जोजाहुति (बुन्देलखण्ड) में प्रसिद्ध स्थान है, इसलिये श्रीहर्ष, महोबाका चन्देल राजा, हर्ष होना चाहिये जिसके पौत्र धगदेवके समयके, वि० सं० १०११ और १०५५ के लेख मिले हैं। शङ्करगण कहाँका राजा था, इसका कुछ पता नहीं चलता। कोकल्लके एक पुत्रका नाम शङ्करगण था, परन्तु उसका संबध इस स्थानपर ठीक नहीं प्रतीत होता।

उपर्युक्त प्रमाणोंके आधार पर कोकल्लका राज्यसमय वि०सं० ९२० से ९६० के बीच अनुमान किया जा सकता है।

इसके १८ पुत्र थे, जिनमेंसे बड़ा (मुग्धतुग) त्रिपुरीका राजा हुआ, और दूसरोंको अलग अलग मंडल (जागीरें) मिले[1]। कोकल्लकी स्त्रीका नाम नट्टादेवी था, जो चन्देलवंशकी थी। इसीसे धवल (मुग्धतुंग) का जन्म हुआ। नट्टादेवी, चन्देल हर्षकी बहिन या बेटी हो, तो आश्चर्य नहीं।

कोकल्लके पीछे उसका पुत्र मुग्धतुंग उसका उत्तराधिकारी हुआ।

---

(१) Ep Ind vol I, P. 46

२–मुग्धतुंग।

बिल्हारीके लेखमें लिखा है कि, कोकल्लके पीछे उसका पुत्र मुग्धतुग और उसके बाद उसका पुत्र केयूरवर्ष राज्य पर बैठा, जिसका दूसरा नाम युवराज था। परन्तु बनारसके दानपत्रसे पाया जाता है कि कोकल्लदेवका उत्तराधिकारी उसका पुत्र प्रसिद्धधवल हुआ, जिसके बालहर्ष और युवराजदेव नामक दो पुत्र हुए; जो इसके बाद क्रमशः गद्दी पर बैठे।

इन दोनों लेखोंसे पाया जाता है कि प्रसिद्धधवल, मुग्धतुंगका उपनाम था।

पूर्वोक्त बिल्हारीके लेखमें लिखा है कि मुग्धतुंगने पूर्वीय समुद्रतटके देश विजय किये, और कोसलके राजासे पाली छीन लिया। इस कोसलका अभिप्राय, दक्षिण कोसलसे होना चाहिये। और पाली, या तो किसी देशविभागका अथवा विचित्रध्वजका नाम हो, जो पालीध्वज कहलाता था, और बहुधा राजाओंके साथ रहता था। ऐसा प्राचीन लेखोंसे पाया जाता है।

इसका उत्तराधिकारी इसका पुत्र बालहर्ष हुआ।

३–बालहर्ष।

यद्यपि इसका नाम बिल्हारीके लेखमें नहीं दिया है; परन्तु बनारसके ताम्रपत्रसे इसका राज्यपर बैठना स्पष्ट प्रतीत होता है। बालहर्षका उत्तराधिकारी उसका छोटा भाई युवराजदेव हुआ।

४–केयूरवर्ष (युवराजदेव)।

इसका दूसरा नाम युवराजदेव था। बिल्हारीके लेखमें, इसका गौड़,

(१) Ep Ind vol I, P. 257 (२) Ep Ind vol II, P 307.
(३) Ep Ind vol I, P 256

कर्णाट, लाट, काश्मीर और कलिंगकी स्त्रियोंसे विलास करनेवाला, तथा अनेक देश विजय करनेवाला, लिखा है। परन्तु विजित देश या राजाका नाम नहीं दिया है। अतएव इसकी विजयवार्तापर पूरा विश्वास नहीं हो सकता।

केयूरवर्ष और चन्देलराजा यशोवर्मा, समकालीन थे। खजुराहोके लेखसे पाया जाता है कि, यशोवर्माने असंख्य सेनावाले चेदिके राजाको युद्धमें परास्त किया था। अतएव केयूरवर्षका यशोवर्मासे हारना संभव है।

इसकी रानीका नाम नोहला था। उसने बिल्हारीमें नोहलेश्वर नामक शिवका मंदिर बनवाया, और धटपाटक, पोण्डी (बिल्हारीसे ४ मील), नागवल, खैलपाटक (खैलवार, बिल्हारीसे ६ मील) वीड़ा, सज्जाहलि और गोष्ठपाली गाँव उसके अर्पण किये। तथा पवनाशिवके प्रशिष्य और शब्दशिवके शिष्य, ईश्वराशिव नामक तपस्वीको निपानिय और अंबिपाटक, दो गाँव दिये।

यह शैवमतका साधु था; शायद इसको नोहलेश्वरका मठाधिपति किया हो। नोहला चौलुक्य अवनीतवर्माकी पुत्री, सधन्वकी पोती और सिंहवर्माकी परपोती थी। उसकी पुत्री कंदक देवीका विवाह दक्षिणके राष्ट्रकूट (राठोड़) राजा अमोघवर्ष तीसरे (बद्दिग) से हुआ था, जिसने वि० सं० ९९० और ९९७ के बीच कुछ समय तक राज्य किया था; और जिससे खोट्टिगका जन्म हुआ।

केयूरवर्षके नोहलासे लक्ष्मण नामक पुत्र हुआ, जो इसका उत्तराधिकारी था।

५–लक्ष्मण।

इसने वैद्यनाथके मठ पर हृदयशिवको और नोहलेश्वरके मठ पर उसके शिष्य अघोरशिवको नियत किया। इन साधुओंकी शिष्यपरंपरा बिल्हा-

रीके लेखमें इस तरह दी है—कदम्बगुहा स्थानमें, रुद्रशंभु नामक तपस्वी रहता था। उसका शिष्य मत्तमयूरनाथ, अवन्तीके राजाके नगरमें जा रहा। उसके पीछे क्रमश: धर्मशंभु, सदाशिव माधुमतेय, चूडाशिव, हृदयशिव और अघोरशिव हुए।

बिल्हारीके लेखमें लिखा है कि, वह अपनी और अपने सामंतोकी सेना सहित, पश्चिमकी विजययात्रामें, शत्रुओंको जीतता हुआ समुद्र तटपर पहुँचा। वहाँ पर उसने समुद्रमें स्नानकर सुवर्णके कमलोंसे सोमेश्वर (सोमनाथ सौराष्ट्रके दक्षिणी समुद्र तटपर) का पूजन किया, और कोसलके राजाको जीत, ओड्रके राजासे ली हुई, रत्नजटित सुवर्णकी बनी कालिय (नाग) की मूर्ति, हाथी, घोडे, अच्छी पोशाक, माला और चन्दन आदि सोमेश्वर (सोमनाथ) के अर्पण किये।

इसकी रानीका नाम राहडा था। तथा इसकी पुत्री बोथा देवीका विवाह, दक्षिणके चालुक्य (पश्चिमी) राजा विक्रमादित्य चौथेसे हुआ था, जिसके पुत्र तैलपने, राठोड राजा कक्कल (कर्क दूसरे) से राज्य छीन, वि० स० १०३० से १०५४ तक राज्य किया था, और मालवाके राजा मुंज (वाक्पतिराज) (भोजके पिता सिंधुराजके बडे भाई) को मारा था। लक्ष्मणनें बिल्हारीमें लक्ष्मणसागर नामक बडा तालाब बनवाया। अब भी वहाँके एक खडहरको लोग राजा लक्ष्मणके महल बतलाते हैं[३]।

इसके दो पुत्र शंकरगण और युवराजदेव हुए, जो क्रमश गद्दी पर बैठे।

६–शंकरगण।

यह अपने पिता लक्ष्मणका ज्येष्ठ पुत्र और उत्तराधिकारी था। इसका ऐतिहासिक वृत्तान्त अब तक नहीं मिला। इसके पीछे इसका छोटा भाई युवराजदेव (दूसरा) गद्दी पर बैठा।

(१)) Ep Ind Vol. I P 2o2) (२) Ep Ind, Vol I, P -60
(३) C A R Vol IX P 115

७-युवराजदेव (दूसरा)।

कर्णबेल (जबलपुरके निकट) से मिले हुए लेखमें लिखा है कि इसने अन्य राजाओंको जीत, उनसे छीनी हुई लक्ष्मी सोमेश्वर (सोमनाथ) के अर्पण कर दी थी।

उदयपुर (ग्वालियर राज्यमें) के लेखमें लिखा है कि, परमार राजा वाक्पतिराज (मुञ्ज) ने, युवराजको जीत, उसके सेनापतिको मारा, और त्रिपुरी पर अपनी तलवार उठाई। इससे प्रतीत होता है कि, वाक्पतिराज (मुञ्ज) ने युवराजदेवसे त्रिपुरी छीन ली हो, अथवा उसे लूट लिया हो। परन्तु यह तो निश्चित है कि त्रिपुरी पर बहुत समय पीछे तक कलचुरियोंका राज्य रहा था। इस लिये, यदि वह नगरी परमारोंके हाथमें गई भी, तो भी अधिक समय तक उनके पास न रहने पाई होगी।

वाक्पतिराज (मुञ्ज) के लेख वि० सं० १०३१ और १०३६ के मिले हैं, और वि० सं० १०५१ और १०५४ के बीच किसी वर्ष उसका मारा जाना निश्चित है, इस लिये उपर्युक्त घटना वि० १०५४ के पूर्व हुई होगी।

८-कोक्कल (दूसरा)।

यह युवराजदेव (दूसरा) का पुत्र और उत्तराधिकारी था। इसका विशेष कुछ भी वृत्तान्त नहीं मिलता है। इसका पुत्र गांगेयदेव बड़ा प्रतापी हुआ।

९-गांगेय देव।

यह कोक्कल (दूसरे) का पुत्र और उत्तराधिकारी था। इसके

(१) Ind Ant Vol. XVIII P 216 (२) Ep Ind Vol I, P 235)

सोने चाँदी और ताँबेके सिक्के मिलते है, जिनकी एक तरफ, बैठी हुई चतुर्भुजी लक्ष्मीकी मूर्ति बनी है और दूसरी तरफ, 'श्रीमद्गांगेयदेवः' लिखा है।

इस राजाके पीछे, कन्नौजके राठोड़ोंने, महोबाके चंदेलने, शाहबुद्दीन-गोरीने और कुमारपाल अजयदेव आदि राजाओंने जो सिक्के चलाए, वे बहुधा इसी शैलीके हैं।

गांगेयदेवने विक्रमादित्य नाम धारण किया था। कलचुरियोंके लेखोंमें इसकी वीरताकी जो बहुत कुछ प्रशंसा की है वह, हमारे ख्याल में यथार्थ ही होगी, क्योंकि, महोबासे मिले हुए, चंदेलके लेखमें इसको, समस्त जगतका जीतनेवाला लिखा है, तथा उसी लेखमें चंदेल राजा विजयपालको, गांगेयदेवका गर्व मिटानेवाला लिखा है।

इससे प्रकट होता है कि विजयपाल और गांगेयदेवके बीच युद्ध हुआ था। इसने प्रयागके प्रसिद्ध वटके नीचे, रहना पसन्द किया था, वहीं पर इसका देहान्त हुआ। एक सौ रानियाँ इसके पीछे सती हुई[१]।

अलबेरूनी, ई० स० १०३० (वि० सं० १०८७) में गांगेयको, डाहल (चेदी) का राजा लिखता है। उसके समयका एक लेख कलचुरी सं०७८९ (वि० सं० १०९४) का मिला है। और उसके पुत्र कर्णदेवका एक ताम्रपत्र कलचुरी सं० ७९३ (वि० सं० १०९९) का मिला है, जिसमें लिखा है कि कर्णदेवने, वेणी (वेनगगा) नदीमें स्नान कर, फाल्गुनकृष्ण २ के दिन अपने पिता श्रीमद्गांगेयदेवके संवत्सर-श्राद्धपर, पण्डित विश्वरूपको सूसी गाँव दिया। अतएव गांगेयदेवका देहान्त वि० सं० १०९४ और १०९९ के बीच किसी वर्ष फाल्गुनकृष्ण २ का होना चाहिये और १०९९ फाल्गुनकृष्ण २ के दिन, उसका देहान्त हुए, कमसे कम एक वर्ष हो चुका था।

(१) Ep Ind Vol II P 3 (२) Ep Ind Vol II P 1

शायद् गांगेयदेवके समय हैहयोंका राज्य, अधिक बढ गया हो, और प्रयाग भी उनके राज्यमें आगया हो । प्रबन्धचिंतामणिमें गांगेयदेवके पुत्र कर्णको काशीका राजा लिखा है ।

१०—कर्णदेव ।

यह गांगेयदेवका उत्तराधिकारी हुआ । वीर होनेके कारण इसने अनेक लडाइयाँ लडीं । इसीने अपने नाम पर कर्णावती नगरी बसाई । जनरल कनिङ्गहमके मतानुसार इस नगरीका भग्नावशेष मध्यप्रदेशमें कारीतलाईके पास है ।

काशीका कर्णमेरु नामक मन्दिर भी इसीने बनवाया था ।

भेडाघाटके लेखके बारहवें श्लोकमें उसकी वीरताका इस प्रकार वर्णन है.—

> पाण्ड्यश्चण्डिमताम्मुमोच मुरलस्तत्त्याजगर्व्व(म)ह[2],
> (कु) ङ्ग सद्गतिमाजगाम चकपे[3] बङ्गः कलिङ्गै सह ।
> कीर कीरवदासपञ्जरगृहे हूण [illegible] प्रपर्षं जहौ,
> यस्मिन्नाननि शौर्यविभ्रमभर विभ्र यपूर्वप्रभे ॥

अर्थात्—कर्णदेवके प्रताप और विक्रमके सामने पाण्ड्य[5] देशके राजाने उग्रता छोड़ दी, मुरलोंने गर्व छोड दिया, कुङ्गोंने सीधी चाल ग्रहण की, बङ्ग और कलिङ्ग देशवाले काँप गये, कीरवाले पिञ्जडेके तोतेकी तरह चुपचाप बैठ रहे और हूणोंने हर्ष मनाना छोड दिया ।

कर्णवेलके लेखमें लिखा है कि, चोड़, कुग, हूण, गौड, गुर्ज्जर, और कीरके राजा उसकी सेवामें रहा करते थे ।

(१) Ep Ind Vol II, p II, (२) Real गर्वोग्रहं । (३) Read चकम्पे । (४) Read हूण ः प्रहर्षं ।(५) Ind, Ant, Vol, XVIII, P. 217.

यद्यपि उल्लिखित वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण अवश्य है; तथापि यह तो निर्विवाद ही है कि कर्ण बड़ा वीर था और उसने अनेक युद्धोंमें विजय प्राप्त की थी।

प्रबन्धचिन्तामणिमें उसका वृत्तान्त इस तरह लिखा है:—

शुभ लग्नमें डाहल देशके राजाकी देमती नामकी रानीसे कर्णका जन्म हुआ। वह बड़ा वीर और नीतिनिपुण था। १३६ राजा उसकी सेवामें रहते थे। तथा विद्यापति आदि महाकवियोंसे उसकी सभा विभूषित थी। एक दिन दूत द्वारा उसने भोजसे कहलाया—"आपकी नगरीमें १०४ महल आपके बनवाये हुए हैं, तथा इतने ही आपके गीत प्रबन्ध आदि हैं। और इतने ही आपके खिताब भी। इसलिये या तो युद्धमें, शास्त्रार्थमें, अथवा दानमें, आप मुझको जीत कर एक सौ पाँचवाँ खिताब धारण कीजिये, नहीं तो आपको जीतकर मैं १३७ राजाओंका मालिक होऊँ।" बलवान् काशिराज कर्णका यह सन्देश सुन, भोजका मुख म्लान हो गया। अन्तमें भोजके बहुत कहने सुननेसे उन दोनोंके बीच यह बात ठहरी कि, दोनों राजा अपने घरमें एक ही समयमें एक ही तरहके महल बनवाना प्रारम्भ करें। तथा जिसका महल पहले बन जाय वह दूसरे पर अधिकार कर ले। कर्णने वाराणसी (बनारस=काशी) में और भोजने उज्जैनमें महल बनवाना प्रारम्भ किया। कर्णका महल पहले तैयार हुआ। परन्तु भोजने पहलेकी की हुई प्रतिज्ञा भंग कर दी। इसपर अपने सामन्तोंसहित कर्णने भोजपर चढ़ाई की। तथा भोजका आधा राज्य देनेकी शर्त पर गुजरातके राजाको भी साथ कर लिया।

उन दोनोंने मिल कर मालवेकी राजधानीको घेर लिया। उसी अवसर पर ज्वरसे भोजका देहान्त हो गया। यह खबर सुनते ही कर्णने किलेको तोड़ कर भोजका सारा खजाना लूट लिया। यह देख भीमने अपने सांधिविग्रहिक मंत्री (Minister of Peace and wrr) डामरको

आज्ञा दी कि, या तो भीमका आधा राज्य या कर्णका सिर ले आओ। यह सुन कर दुहपरके समय डामर बत्तीस पैदल सिपाहियों सहित कर्णके खेमेमें पहुँचा और सोते हुए उसको घेर लिया। तब कर्णने एक तरफ सुवर्णमण्डपिका, नीलकण्ठ, चिन्तामणि, गणपति आदि देवता और दूसरी तरफ भोजके राज्यकी समग्र समृद्धि रख दी। फिर डामरसे कहा—"इसमेंसे चाहे जौनसा एक भाग ले लो"। यह सुन सोलह पहरके बाद भीमकी आज्ञासे डामरने देवमूर्तियोंवाला भाग ले लिया।

पूर्वोक्त वृत्तान्तसे भोजपर कर्णका हमला करना, उसी समय ज्वरसे भोजकी मृत्युका होना, तथा उसकी राजधानीका कर्णद्वारा लूटा जाना प्रकट होता है।

नागपुरसे मिले हुए परमार राजा लक्ष्मदेवके लेखसे भी उपरोक्त बातकी सत्यता मालूम होती है। उसमें लिखा है कि भोजके मरने पर उसके राज्य पर विपत्ति छा गई थी। उस विपत्तिको भोजके कुटुम्बी उदयादित्यने दूर किया, तथा कर्णाटवालोंसे मिले हुए राजा कर्णसे अपना राज्य पुन छीना।

उदयपुर (ग्वालियर) के लेखसे भी यही बात प्रकट होती है।

हेमचन्द्रसूरिने अपने बनाए द्व्याश्रय काव्यके ९ व सर्गमें लिखा है कि —"सिंधके राजाको जीत करके भीमदेवने चेदि-राज कर्ण पर चढ़ाई की। प्रथम भीमदेवने अपने दामोदर नामक दूतको कर्णकी सभामें भेजा। उसने वहाँ पहुँच करके कर्णकी वीरताकी प्रशंसा की। और निवेदन किया कि राजा भीम यह जानना चाहता है कि आप हमारे मित्र हैं या शत्रु? यह सुन कर्णने उत्तर दिया—सत्पुरुषोंकी मैत्री तो स्वाभाविक होती ही है। इसपर भी भीमके यहाँ आनेकी बात सुनकर

(१) EP Ind vol. II, P, 185 (२) EP Ind vol I, P, 235

मै बहुत ही प्रसन्न हुआ हूँ । तुम मेरी तरफसे ये हाथी, घोड़े और भोगका सुवर्ण-मण्डपिका ले जाकर भीमके भेट करना और साथ ही यह भी कहना कि वे मुझे अपना मित्र समझें । ”

परन्तु हेमचन्द्रका लिखा उपर्युक्त वृत्तान्त सत्य मालूम नहीं होता । क्योंकि चेदिपरकी भीमकी चढ़ाईके सिवाय इसका और कहीं भी जिकर नहीं है । और प्रबन्धचिन्तामणिकी पूर्वोक्त कथासे साफ़ जाहिर होता है कि, जिस समय कर्णने मालवे पर चढाई की उस समय भीमको सहायतार्थ बुलाया था । और वहाँ पर हिस्सा करते समय उन दोनोंके बीच झगडा पैदा हुआ था, परन्तु सुवर्णमण्डपिका और गणपति आदि देवमूर्तियाँ देकर कर्णने सुलह कर ली । इसके सिवाय हेमचन्द्रने जो कुछ भी भीमकी चेदिपरकी चढाईका वर्णन लिखा है वह कल्पित ही है । हेमचन्द्रने गुजरातके सोलंकी राजाओंका महत्त्व प्रकट करनेको ऐसी ऐसी अनेक कथाएँ लिख दी है, जिनका अन्य प्रमाणोंसे कल्पित होना सिद्ध हो चुका है ।

काश्मीरके बिल्हण कविने अपने रचे विक्रमाङ्कदेवचरित काव्यमें डाहलके राजा कर्णका कलिञ्जरके राजाके लिये कलिरूप होना लिखा है[1] ।

प्रबोधचन्द्रोदय नाटकसे पाया जाता है कि, चेदिके राजा कर्णने, कलिञ्जरके राजा कीर्तिवर्माका राज्य छीन लिया था । परन्तु कीर्तिवर्माके मित्र सेनापति गोपालने कर्णके सैन्यको परास्त कर पीछे उसे कलिञ्जरका राजा बना दिया । बिल्हणकविके लेखसे पाया जाता है कि पश्चिमी चालुक्य राजा सोमेश्वर प्रथमने कर्णको हराया ।

उल्लिखित प्रमाणोंसे कर्णका अनेक पडोसी राजाओंपर विजय प्राप्त करना सिद्ध होता है । उसकी रानी आवल्लदेवी हूणजातिकी थी । उससे यश कर्णदेवका जन्म हुआ ।

---

(१) विक्रमांकदेवचरित, सर्ग १८, श्लो० ९३ ।

चेदि संवत् ७९३ (वि० सं० १०९९) का एक दानपत्र कर्णका मिला है। और चे० सं० ८७४ (वि० सं० ११२९) का उसके पुत्र यशःकर्णदेवका।

इन दोनोंके बीच ७० वर्षका अन्तर होनेसे सम्भव है कि कर्णने बहुत समयतक राज्य किया होगा। उसके मरनेके बाद उसके राज्यमें झगडा पैदा हुआ। उस समय कन्नोज पर चन्द्रदेवने अधिकार कर लिया। तबसे प्रतिदिन राठौड, कलचुरियोंका राज्य दबाने लगे।

चन्द्रदेव वि० सं० ११५४ में विद्यमान था। अतः कर्णका देहान्त उक्त संवत्के पूर्व हुआ होगा।

११—यशःकर्णदेव।

इसके ताम्रपत्रमें लिखा है कि, गोदावरी नदीके समीप उसने आन्ध्रदेशके राजाको हराया। तथा बहुतसे आभूषण भीमेश्वर महादेवके अर्पण किये। इस नामके महादेवका मन्दिर गोदावरी जिलेके दक्षाराम स्थानमें है[१]।

भेडाघाटके लेखमें यशःकर्णका चम्पारण्यको नष्ट करना लिखा है[२]। शायद इस घटनासे और पूर्वोक्त गोदावरीपरके युद्धसे एक ही तात्पर्य हो।

वि० सं० ११६१ के परमार राजा लक्ष्मदेवने त्रिपुरी पर चढ़ाई करके उसको नष्ट कर दिया।

यद्यपि इस लेखमें त्रिपुरीके राजाका नाम नहीं दिया है; तथापि वह चढ़ाई यशःकर्णदेवके ही समय हुई हो तो आश्चर्य नहीं; क्योंकि वि० सं० ११५४ के पूर्व ही कर्णदेवका देहान्त हो चुका था और यशःकर्णदेव वि० सं० ११७९ के पीछे तक विद्यमान था।

(१) Ep. Ind. vol. II, P. 305. (२) Ep. Ind vol II, P. 3, (३) Ep. Ind. vol. II, P. 5. (४) Ep Ind. vol. II. P. 11. (५) Ep. Ind. vol. II, P. 186.

यश.कर्णके समय चेदिराज्यका कुछ हिस्सा कन्नौजके राठोड़ोंने दबा लिया था। वि० सं० ११७७ के राठोड गोविन्दचन्द्रके दानपत्रमें लिखा है कि यशःकर्णने जो गाँव रुद्रशिवको दिया था वही गाँव उसने गोविन्दचन्द्रकी अनुमतिसे एक पुरुषको दे दियां।

चे०सं० ८७४ (वि० सं० ११७९) का एक ताम्रपत्र यशःकर्णदेवका मिला है[२]। उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र गयकर्णदेव हुआ।

१२-गयकर्णदेव।

यह अपने पिताके पीछे गद्दीपर बैठा। इसका विवाह मेवाडके गुहिल राजा विजयसिंहकी कन्या आल्हणदेवीसे हुआ था। यह विजयसिंह वैरिसिंहका पुत्र और हंसपालका पौत्र था। आल्हणदेवीकी माताका नाम श्यामलादेवी था। वह मालवेके परमार राजा उदयादित्यकी पुत्री थी[३]। आल्हणदेवीसे दो पुत्र हुए-नरसिंहदेव और उदयसिंहदेव। ये दोनों अपने पिता गयकर्णदेवके पीछे क्रमशः गद्दीपर बैठे।

चे० सं० ९०७ (वि० सं० १२१२) में नरसिंहदेवके राज्य समय उसकी माता आल्हणदेवीने एक शिवमन्दिर बनवाया। उसमें बाग, मठ और व्याख्यानशाला भी थी। वह मन्दिर उसने लाटवंशके शैव साधु रुद्रशिवको दे दिया। तथा उसके निर्वाहार्थ दो गाँव भी दिये।

चे० सं० ९०२ (वि० सं० १२०८) का एक शिलालेख गयकर्णदेवका त्रिपुरीसे मिला है[४]। यह त्रिपुरी या तेवर, जबलपुरसे ९ मील पश्चिम है।

उसके उत्तराधिकारी नरसिंहका प्रथम लेख चे० सं० ९०७ (वि०

---

(१) J B. A. S Vol. 31. P 124, O. A. S. R 9109. (२) Ep. Ind. vol. II, P 3. (३) Ep. Ind. vol. II. P 9. J. A 18-215
(४) Ind Ant Vol: XVIII P, 210

सं० १२१२) का मिला है[1] । अतः गयकर्णदेवका देहान्त वि० सं० १२०८ और १२१२ के बीच हुआ होगा ।

१३--नरसिंहदेव ।

चे० सं० ९०२ (वि० सं० १२०८) के पूर्व ही यह अपने पिता द्वारा युवराज बनाया गया था ।

पृथ्वीराजविजय महाकाव्यमें लिखा है कि " प्रधानों द्वारा गद्दीपर बिठलाए जानेके पूर्व अजमेरके चौहान राजा पृथ्वीराजका पिता सोमेश्वर विदेशमें रहता था । सोमेश्वरको उसके नाना जयसिंह (गुजरातके सिद्धराज जयसिंह) ने शिक्षा दी थी । वह एक बार चेदिकी राजधानी त्रिपुरीमें गया, जहाँपर इसका विवाह वहाँके राजाकी कन्या कर्पूरदेवीके साथ हुआ । उससे सोमेश्वरके दो पुत्र उत्पन्न हुए । पृथ्वीराज और हरिराज । "यद्यपि उक्त महाकाव्यमें चेदिके राजाका नाम नहीं है, तथापि सोमेश्वरके राज्याभिषेक सं० १२२६ और देहान्त सं० १२३६ को देखकर अनुमान होता है कि शायद पूर्वोक्त कर्पूरदेवी नरसिंहदेवकी पुत्री होगी । जनश्रुतिसे ऐसी प्रसिद्धि है कि, दिल्लीके तँवर राजा अनङ्गपालकी पुत्रीसे सोमेश्वरका विवाह हुआ था । उसी कन्यासे प्रसिद्ध पृथ्वीराजका जन्म हुआ । तथा वह अपने नानाके यहाँ दिल्ली गोद गया । परन्तु यह कथा सर्वथा निर्मूल है । क्योंकि दिल्लीका राज्य तो सोमेश्वरसे भी पूर्व अजमेरके अधीन हो चुका था । तब एक सामन्तके यहाँ राजाका गोद जाना सम्भव नहीं हो सकता ।

ग्वालियरके तँवर राजा वीरमके दरबारमें नयचन्द्रसूरि नामक कवि रहता था।उसने वि० सं० १५०० के करीब हम्मीर महाकाव्य बनाया। इस काव्यमें भी पृथ्वीराजके दिल्ली गोद जानेका कोई उल्लेख नहीं है ।

अनुमान होता है कि शायद पृथ्वीराजरासोके रचयिताने इस कथाकी कल्पना कर ली होगी ।

---

(१) Ep Ind Vol. II, P. 10

नरसिंहदेवके समयके तीन शिलालेख मिले हैं । उनमेंसे प्रथम दो, चे० सं० ९०७[1] और ९०९[2] (वि०सं० १२१२ और १२१५) के हैं । तथा तीसरा वि० सं० १२१६ का[3] ।

१४–जयसिंहदेव ।

यह अपने बडे भाई नरसिंहदेवका उत्तराधिकारी हुआ; उसकी रानीका नाम गोसलादेवी था । उससे विजयसिंहदेवका जन्म हुआ । जयसिंहदेवके समयके तीन लेख मिले हैं । पहला चे० सं० ९२६ (वि० सं० १२३२) का[4] और दूसरा चे० सं० ९२८ (वि० सं० १२३४) का[5] है । तथा तीसरेमें संवत् नहीं है[6] ।

१५–विजयसिंहदेव ।

यह जयसिंहका पुत्र था, तथा उसके पीछे गद्दी पर बैठा । उसका एक ताम्रपत्र चे० सं० ९३२ (वि० सं० १२३७) का मिला है[7] । उससे वि० सं० १२३४ और वि० सं० १२३७ के बीच विजयसिंहके राज्याभिषेकका होना सिद्ध होता है । उसके समयका दूसरा ताम्रपत्र वि० सं० १२५३ का है[8] ।

१६–अजयसिंहदेव ।

यह विजयसिंहदेव का पुत्र था । विजयसिंहदेवके समयके चे० सं० ९३२ (वि० सं० १२३७) के लेखमें इसका नाम मिला है । इस राजाके बादसे इस वंशका कुछ भी हाल नहीं मिलता ।

रीवाँमें ककेरदीके राजाओंके चार ताम्रपत्र मिले हैं । उनके संवतादि इस प्रकार हैं—

---

(१) Ep. Ind. Vol. II, P. 10. (२) Ind. Ant. Vol. XVIII, P. 212. (३) Ind. Ant. Vol XVIII, P. 214. (४) Ind. Ant. Vol. XVII, P. 226. (५) Ep. Ind. Vol. II, P. 18. (६) Ind. Ant. Vol. XVIII, P. 216. (७) J. B. A. S. Vol. VIII, P. 481. (८) Ind. Ant. Vol. XVII, P. 238.

पहला चे० स० ९२६ का पूर्वोक्त जयसिंहदेवके सामन्त महाराणा कीर्तिवर्माका, दूसरा वि० स० १२५३ विजय (सिंह) देवके सामन्त महाराणक सलखणवर्मदेवका, तीसरा वि० स० १२९७ का त्रैलोक्यवर्मदेवके सामन्त महाराणक कुमारपालदेवको और चौथा वि० स० १२९८ का त्रैलोक्यवर्मदेवके सामन्त महाराणक हरिराजदेवका।

ऊपर उल्लिखित ताम्रपत्रोंमें जयसिंहदेव विजय (सिंह) देव और त्रैलोक्यवर्मदेव इन तीनोंका खिताब इस प्रकार लिखा है —

" परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर परममाहेश्वर श्रीमद्वामदेवपादानुध्यात परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर त्रिकलिङ्गाधिपति निजभुजोपार्जिताश्वपति गजपति नरपति राजत्रयाधिपति ।"

ऊपर वर्णन किये हुए तीन राजाओंमेंसे जयसिंहदेव और विजय(सिंह) देवको जनरल कनिङ्गहम तथा डाक्टर कीलहार्न, कलचुरिवंशके मानते हैं, और तीसरे राजा त्रैलोक्यवर्मदेवका चंदेल होना अनुमान करते हैं, परन्तु उसके नामके साथ जो खिताब लिखे गए हैं, वे चन्देलोंके नहीं, किन्तु हैहयोंहीके हैं। अतः जब तक उसका चन्देल होना दूसरे प्रमाणोंसे सिद्ध न हो तब तक उक्त यूरोपियन विद्वानोंकी बात पर विश्वास करना उचित नहीं है।

वि० स० १२५३ तक विजयसिंहदेव विद्यमान था। सम्भवतः इसके बाद भी वह जीवित रहा हो। उसके पीछे उसके पुत्र अजयसिंह तकका शृङ्खलाबद्ध इतिहास मिलता आता है। शायद उसके पीछे वि० स० १२९८ में त्रैलोक्यवर्मा राजा हो। उसी समयके आसपास रीवाँके वघेलोंने त्रिपुरीके हैहयोंके राज्यको नष्ट कर दिया।

इन हैहयवंशियोंकी मुद्राओंमें चतुर्भुज लक्ष्मीकी मूर्ति मिलती है, जिसके दोनों तरफ हाथी होते हैं। ये राजा शैव थे। इनके झंडेमें बैलका निशान बनाया जाता था।

---

(१) Ind ant, Vol, XVII P 231 (२) Ind Ant Vol XVII, P 235.

डाहलके हैहयों (कलचुरियों) का वंशवृक्ष ।

कृष्णराज
- शङ्करगण
  - बुद्धराज
    - ....
      - १ कोकल्लदेव (प्रथम)
        - शङ्करगण (और अन्य १३ पुत्र, नाम नहीं दिए)
          - २ मुग्धतुङ्ग
            - ३ बालहर्ष
            - ४ केयूरवर्ष (युवराजदेव प्रथम)
              - ५ लक्ष्मणराज
                - ६ शङ्करगण
                - ७ युवराजदेव (द्वितीय)
                  - ८ कोकल्लदेव (द्वितीय)
                    - ९ गाङ्गेयदेव चे० सं० ७८९ (वि० सं० १०९४)
                      - १० कर्णदेव चे० सं० ७९३ (वि० सं० १०९९)
                        - ११ यशःकर्णदेव चे० सं० ८७४ (वि० सं० ११७९)
                          - १२ गयकर्णदेव चे० सं० ९०२ (वि० सं० १२०८)
                            - १३ नरसिंहदेव चे० सं० ९०७, ९०९ (वि० सं० १२१२, १२१५ तथा वि० सं० १२१६
                            - १४ जयसिंहदेव चे० सं० ९२६, ९२८ (वि० सं० १२३२, १२३४
                              - १५ विजयसिंहदेव चे० सं० ९३२ (वि० सं० १२३७ तथा वि० सं० १२५३
                                - १६ अजयसिंहदेव
                                - त्रैलोक्यमल्लदेव वि० सं० १२९८

दक्षिण कोशलके हैहय।

पहले, कोकल्लदेवके वृत्तान्तमें लिखा गया है कि, कोकल्लके १८ पुत्र थे। उनमेंसे सबसे बड़ा पुत्र मुग्धतुङ्ग अपने पिता कोकल्लदेवका उत्तराधिकारी हुआ और दूसरे पुत्रोंको अलग अलग जागीरें मिलीं। उनमेंसे एकके वंशज कलिङ्गराजने दक्षिण-कोशल (महाकोशल) में अपना राज्य स्थापन किया। कलिङ्गराजके वंशज स्वतन्त्र राजा हुए।

१–कलिङ्गराज।

यह कोकल्लदेवका वंशज था। रत्नपुरके एक लेखसे ज्ञात होता है कि, दक्षिण-कोशल पर अधिकार करके तुम्माण नगरको इसने अपनी राजधानी बनाया। (दूसरे लेखोंसे इलाकेका नाम भी तुम्माण होना पाया जाता है) इसके पुत्रका नाम कमलराज था।

२–कमलराज।

यह कलिङ्गराजका पुत्र और उत्तराधिकारी था।

३–रत्नराज (रत्नदेव प्रथम)।

यह कमलराजका पुत्र था और उसके पीछे गद्दी पर बैठा। तुम्माणमें इसने रत्नेशका मन्दिर बनवाया था, तथा अपने नामसे रत्नपुर नामका नगर भी बसाया था, वही रत्नपुर कुछ समय बाद उसके वंशजोंकी राजधानी बना। रत्नराजका विवाह कोमोमण्डलके राजा वज्जूककी पुत्री नोनल्लासे हुआ था। इसी नोनल्लासे पृथ्वीदेव (पृथ्वीश) ने जन्म ग्रहण किया।

४–पृथ्वीदेव (प्रथम)।

यह रत्नराजका पुत्र और उत्तराधिकारी था। इसने रत्नपुरमें एक तालाब और तुम्माणमें पृथ्वीश्वरका मन्दिर बनवाया था। पृथ्वीदेवने

अनेक यज्ञ किये । इसकी रानीका नाम राजल्ला था; जिससे जाजल्लदेव नामका पुत्र हुआ ।

५—जाजल्लदेव (प्रथम) ।

यह पृथ्वीदेवका पुत्र था, तथा उसके पीछे उसका उत्तराधिकारी हुआ । इसने अनेक राजाओंको अपने अधीन किया । चेदीके राजासे मैत्री की, कान्यकुब्ज (कन्नौज) और जेजाकभुक्ति (महोबा) के राजा इसकी वीरताको देख करके स्वयं ही इसके मित्र बन गए । इसने सोमेश्वरको जीता । आंध्रखिमिडी, वैरागर, लंजिका, भाणार, तलहारी, दण्डकपुर, नंदावली और कुक्कुटके मांडलिक राजा इसको खिराज देते थे । इसने अपने नामसे जाजल्लपुर नगर बसाया । उसी नगरमें मठ, बाग और जलाशयसहित एक शिवमन्दिर बनवा कर दो गाँव उस मन्दिरके अर्पण किये । इसके गुरुका नाम रुद्रशिव था, जो दिङ्नाग आदि आचार्योंके सिद्धान्तोंका ज्ञाता था । जाजल्लदेवके सान्धिविग्रहिकका नाम विग्रहराज था । इस राजाके समय शायद चेदीका राजा यशःकर्ण, कन्नौजका राठोड गोविन्दचन्द्र और महोबेका राजा चंदेल कीर्तिवर्मा होगा। रत्नपुरके हैहयवंशी राजाओंमें जाजल्लदेव बडा प्रतापी हुआ; आश्चर्य नहीं कि इस शाखामें प्रथम इसीने स्वतन्त्रता प्राप्त की हो । इसकी रानीका नाम सोमलदेवी था । इस राजाके ताँबेके सिक्के मिले हैं । उनमें एक तरफ 'श्रीमज्जाजल्लदेवः' लिखा है और दूसरी तरफ हनुमानकी मूर्त्ति बनी है । चे० सं० ८६६ (वि० सं० ११७१=ई० स० ११११) का रत्नपुरमें एक लेख जाजल्लदेवके समयका मिला है । इसके पुत्रका नाम रत्नदेव था ।

(१) Ind. Ant Vol. XXII, P 82 (२) Ep. Ind. Vol. I. P. 32

६–रत्नदेव (द्वितीय)।

यह जाजल्लदेवका पुत्र था और उसके बाद राज्य पर बैठा। इसने कलिङ्गदेशके राजा चोड गङ्गको जीता। इस राजाके ताँबेके सिक्के मिले हैं। उनकी एक तरफ 'श्रीमद्रत्नदेवः' लिखा है और दूसरी तरफ हनुमानकी मूर्त्ति बनी है। परन्तु इस शाखामें रत्नदेव नामके दो राजा हुए हैं। इसलिए ये सिक्के रत्नदेव प्रथमके हैं या रत्नदेव द्वितीयके, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। इसके पुत्रका नाम पृथ्वीदेव था।

७–पृथ्वीदेव (द्वितीय)।

यह रत्नदेवका पुत्र और उत्तराधिकारी था। इसके सोने और ताँबेके सिक्के मिले हैं। इन सिक्कों पर एक तरफ 'श्रीमत्पृथ्वीदेव' खुदा है और दूसरी तरफ हनुमानकी मूर्त्ति बनी है। यह मूर्त्ति दो प्रकारकी पाई जाती है, किसी पर द्विभुज और किसी पर चतुर्भुज।

इस शाखामें तीन पृथ्वीदेव हुए हैं। इसलिये सिक्के किस पृथ्वीदेवके समयके है यह निश्चय नहीं हो सकता। पृथ्वीदेवके समयके दो शिलालेख मिले हैं। प्रथम चे० सं० ८९६ (वि० सं० १२०२=ई० स० ११४५) का और दूसरा चे० सं० ९१० (वि० स० १२१६=ई० स० ११५९) का है[१]। उसके पुत्रका नाम जाजल्लदेव था।

८–जाजल्लदेव (द्वितीय)।

यह अपने पिता पृथ्वीदेव दूसरेका उत्तराधिकारी हुआ। चे० सं० ९१९ (वि० स० १२२४–ई० स० ११६७) का एक शिलालेख जाजल्लदेवका मिला है। इसके पुत्रका नाम रत्नदेव था।

९–रत्नदेव (तृतीय)।

यह जाजल्लदेवका पुत्र था और उसके पीछे गद्दी पर बैठा। यह चे०

---

(१) Ep Ind Vol I. P 40. (२) C A. S R, 17, 76 and 27 p, XX

सं० ९३३ (वि० सं० १२३८=ई० सं० ११८१) में विद्यमान था। इसके पुत्रका नाम पृथ्वीदेव था।

१०–पृथ्वीदेव (तृतीय)।

यह अपने पिता रत्नदेवका उत्तराधिकारी हुआ। यह वि० सं० १२४७ (ई० स० ११९०) में विद्यमान था।

पृथ्वीदेव तीसरेके पीछे वि० सं० १२४७ से इन हैहयवंशियोंका कुछ भी पता नहीं चलता है।

दक्षिण कोशलके हैहयोंका वंशवृक्ष।

कोकल्लदेवके वंशमें—

१–कलिङ्गराज
२–कमलराज
३–रत्नराज (रत्नदेव प्रथम)
४–पृथ्वीदेव (प्रथम)
५–जाजल्लदेव (प्रथम) चे० सं० ८६६ (वि० सं० ११७१)
६–रत्नदेव (द्वितीय)
७–पृथ्वीदेव(द्वितीय)चे० सं० ८९६, ९१० (वि०सं० १२०२,१२१६)।
८–जाजल्लदेव (द्वितीय) चे० सं० ९१९ (वि० सं० १२२४)
९–रत्नदेव (तृतीय) चे० सं० ९३३ (वि० सं० १२३८)
१०–पृथ्वीदेव (तृतीय) वि० सं० १२४७

(१) C. A. R. Vol XVII P. 43. (२) Ep. Ind. Vol. I. P. 49.

कल्याणके हैहयवंशी।

दक्षिणके प्रतापी पश्चिमी चौलुक्य राजा तैलप तीसरेसे राज्य छीनकर कुछ समय तक वहाँपर कलचुरियोंने स्वतन्त्र राज्य किया। उस समय इन्होंने अपना खिताब 'कलिञ्जरपुरवराधीश्वर' रक्खा था। इनके लेखोंसे प्रकट होता है कि ये डाहल (चेदी) से उधर गए थे। इस लिए ये भी दक्षिण कोशलके कलचुरियोंकी तरह चेदीके कलचुरियोंके ही वंशज होंगे।

तैलपसे राज्य छीननेके बाद इनकी राजधानी कल्याण नगरमें हुई। यह नगर निजामके राज्यमें कल्याणी नामसे प्रसिद्ध है। इनका झण्डा 'सुवर्णवृषध्वज' नामसे प्रसिद्ध था।

इनका ठीक ठीक वृत्तान्त जोगम नामके राजासे मिलता है। इससे पूर्वके वृत्तान्तमें बड़ी गड़बड़ है; क्योंकि हरिहर (माइसोर) से मिले हुए विज्जलके समयके लेखसे ज्ञात होता है कि, डाहलके कलचुरि राजा कृष्णके वंशज कन्नम (कृष्ण) के दो पुत्र थे—विज्जल और सिंदराज। इनमेंसे बड़ा पुत्र अपने पिताका उत्तराधिकारी हुआ। सिंदराजके चार पुत्र थे—अमुंगि, शंखवर्मा, कन्नर और जोगम। इनमेंसे अमुंगि और जोगम क्रमशः राजा हुए।

जोगमका पुत्र पेर्माडि (परमर्दि) हुआ। इस पेर्माडिके पुत्रका नाम विज्जल था। विज्जलके ज्येष्ठ पुत्रका नाम सोविदेव (सोमदेव) था। इसके श० सं० १०९५ (वि० सं० १२३०) के लेखमें लिखा है:—

चन्द्रवंशी संतम (संतसम) का पुत्र सगररस हुआ। उसका पुत्र कन्नम हुआ। कन्नमके, नारण और विज्जल दो पुत्र हुए। विज्जलका पुत्र कर्ण और उसका जोगम हुआ। परन्तु श० सं० १०९६ (गत) और ११०५ (गत) (वि० सं० १२३१ और १२४०) के ताम्रपत्रों-

(१) माइसोर इन्स्क्रिपृशन्स पृ० ६४।

में जोगमको कृष्णका पुत्र लिखा है। तथा उसके पूर्वके नाम नहीं लिखे हैं। इसी तरह श० सं० ११०० (वि० सं० १२३५) के ताम्रपत्रमें कन्नमसे विज्जल और राजलका, तथा राजलसे जोगमका उत्पन्न होना लिखा है। इस प्रकार करीब करीब एक ही समयके लेख और ताम्रपत्रोंमें दिये हुए जोगमके पूर्वजोंके नाम परस्पर नहीं मिलते।

१–जोगम।

इसके पूर्वके नामोंमें गडबड़ होनेसे इसके पिताका क्या नाम था यह ठीक ठीक नहीं कह सकते। इसके पुत्रका नाम पेर्माडि (परमर्दि) था।

२–पेर्माडि (परमर्दि)।

यह जोगमका पुत्र और उत्तराधिकारी था। श० संवत १०५१ (वर्तमान) (वि० सं० ११८५=ई० सं० ११२८) में यह विद्यमान था। यह पश्चिम सोलंकी राजा सोमेश्वर तीसरेका सामन्त था। तर्दवाड़ी जिला (बीजापुरके निकट) उसके अधीन था। इसके पुत्रका नाम विज्जलदेव था।

३–विज्जलदेव।

यह पूर्वोक्त सोलंकी राजा सोमेश्वर तीसरेके उत्तराधिकारी जगदेकमल्ल दूसरेका सामन्त था। तथा जगदेकमल्लकी मृत्युके बाद उसके छोटे भाई और उत्तराधिकारी तैल (तैलप) तीसरेका सामन्त हुआ। तैल (तैलप) तीसरेने उसको अपना सेनापति बनाया। इससे विज्जलका अधिकार बढ़ता गया। अन्तमें उसने तैलपके दूसरे सामन्तोंको अपनी तरफ मिलाकर उसके कल्याणके राज्य पर ही अधिकार कर लिया। श० सं० १०७९ (वि० सं० १२१४) के पहलेके लेखोंमें विज्जलको महामण्डलेश्वर लिखा है। यद्यपि श० सं० १०७९ से उसने अपना राज्य–

(१) Bom. A. S. J. Vol XVII. P. 269. Ind. Ant. Vol. IV. P. 274.

वर्ष (सन् जुलूस) लिखना प्रारम्भ किया, और त्रिभुवनमल्ल, भुजबल-चक्रवर्ती और कलचुर्यचक्रवर्ती विरुद (खिताब) धारण किये, तथापि कुछ समयतक महामण्डलेश्वर ही कहाता रहा। किन्तु श० स० १०८४ (वि०स० १२१९) के लेखमें उसके साथ समस्त भुवनाश्रय, महाराजाधिराज, परमेश्वर परमभट्टारक आदि स्वतन्त्र राजाओंके खिताब लगे हैं। इससे अनुमान होता है कि वि० स० १२१९ के करीब वह पूर्ण रूपसे स्वातन्त्र्यलाभ कर चुका था। विज्जल द्वारा हराए जानेके बाद कल्याणको छोडकर तैल अण्णीगिरि (धारवाड जिले) में जा रहा। परन्तु वहाँपर भी बिज्जलने उसका पीछा किया, जिससे उसको वनवासीकी तरफ़ जाना पडा। विज्जलने कल्याणके राज्यसिंहासन पर अधिकार कर लिया, तथा पश्चिमी चौलुक्य राज्यके सामन्तोंने भी उसको अपना अधिपति मान लिया। विज्जलके राज्यमें जैनधर्मका अधिक प्रचार था। इस मतको नष्ट कर इसके स्थानमें शैवमत चलानेकी इच्छासे वसव नामी ब्राह्मणने ' वीरशैव ' (लिंगायत) नामका नया पंथ चलाया। इस मतके अनुयायी वीरशैव (लिंगायत) और इसके उपदेशक जंगम कहलाने लगे। इस मतके प्रचारार्थ अनेक स्थानोंमें बसवने उपदेशक भेजे। इससे उसका नाम उन देशोंमें प्रसिद्ध हो गया। इस मतके अनुयायी एक चाँदीकी डिबिया गलेमें लटकाए रहते हैं। इसमें शिवलिंग रहता है।

लिंगायतोंके ' वसव-पुराण ' और जैनोंके ' विज्जलराय-चरित्र ' नामक ग्रन्थोंमें अनेक करामातसूचक अन्य बातोंके साथ वसव और विज्जलदेवका वृत्तान्त लिखा है। ये पुस्तकें धर्मके आग्रहसे लिखी गई हैं। इसलिए इन दोनों पुस्तकोंका वृत्तान्त परस्पर नहीं मिलता। ' वसव पुराण ' में लिखा है —" विज्जलदेवके प्रधान बलदेवकी पुत्री गंगादेवीसे बसवका विवाह हुआ था। बलदेवके देहान्तके बाद बसवको उसकी

प्रसिद्धि और सद्गुणोंके कारण विज्जलने अपना प्रधान, सेनापति और कोषाध्यक्ष नियत किया, तथा अपनी पुत्री नीललोचनाका विवाह उसके साथ कर दिया। उससमय अपने मतके प्रचारार्थ उपदेशोंके लिये वसवने राज्यका बहुतसा द्रव्य खर्च करना प्रारम्भ किया। यह खबर वसवके शत्रुके दूसरे प्रधानने विज्जलको दी; जिससे वसवसे विज्जल अप्रसन्न हो गया। तथा इनके आपसका मनोमालिन्य प्रतिदिन बढ़ता ही गया। यहाँ तक नौबत पहुँची कि एक दिन विज्जलदेवने, हल्लेइज और मधुवेय्य नामके दो धर्मनिष्ठ जंगमोंकी आँखें निकलवा डालीं। यह हाल देख वसव कल्याणसे भाग गया। परन्तु उसके भेजे हुए जगदेव नामक पुरुषने अपने दो मित्रों सहित राजमन्दिरमें घुसकर सभाके बीचमें बैठे हुए विज्जलको मार डाला। यह खबर सुनकर वसव कुण्डलीसंगमेश्वर नामक स्थानमें गया। वहीं पर वह शिवमें लय हो गया। वसवकी अविवाहिता बहिन नागलांबिकासे चन्नवसवका जन्म हुआ। इसने लिंगायत मतकी उन्नति की। (लिंगायत लोग इसको शिवका अवतार मानते हैं।) वसवके देहान्तके बाद वह उत्तरी कनाडा देशके उल्वी स्थानमें जा रहा।"

'चन्नवसव-पुराण' में लिखा है:—

"वर्तमान शक सं० ७०७ (वि० सं० ८४१) में वसव, शिवमें लय हो गया। (यह संवत् सर्वथा कपोलकल्पित है।) उसके बाद उसके स्थान पर विज्जलने चन्नवसवको नियत किया। एक समय हल्लेइज और मधुवेय्य नामक जङ्गमोंको रस्सीसे बँधवाकर विज्जलने पृथ्वीपर घसीटवाए; जिससे उनके प्राण निकल गये। यह हाल देख जगद्देव और बोम्मण नामके दो मशालचियोंने राजाको मार डाला। उससमय चन्नवसव भी कितने ही सवारों और पैदलोंके साथ कल्याणसे भागकर उल्वी नामक स्थानमें चला आया। विज्जलके दामादने उसका पीछा किया, परन्तु वह हार गया। उसके बाद विज्जलके पुत्रने चढ़ाई की। किन्तु

वह कैद कर लिया गया। तदनन्तर नागलांबिकाकी सलाहसे मरी हुई सेनाको चन्नबसवने पीछे जीवित कर दिया, तथा नये राजाको बिज्जलकी तरह जङ्गमोंको न सताने और धर्ममार्ग पर चलनेका उपदेश देकर कल्याणको भेज दिया।"

'बिज्जलराय-चरित' में लिखा है:—

"बसवकी बहिन बड़ी ही रूपवती थी। उसको बिज्जलने अपनी पासवान (अविवाहिता स्त्री) बनाई। इसी कारण वसव बिज्जलके राज्यमें उच्च पदको पहुँचा था।" इसी पुस्तकमें वसव और बिज्जलके देहान्तके विषयमें लिखा है कि "राजा बिज्जल और बसवके बीच द्वेषाग्नि भडकनेके बाद, राजाने कोल्हापुर (सिल्हारा) के महामण्डलेश्वर पर चढाई की। वहाँसे लौटते समय मार्गमें एक दिन राजा अपने डेरेमें बैठा था, उस समय एक जङ्गम जैन साधुका वेष धारणकर उपस्थित हुआ, एक फल उसने राजाको नजर किया। उस साधुसे वह फल लेकर राजाने सूँघा, जिससे उस पर विषका प्रभाव पड़ गया और उसीसे उसका देहान्त हो गया। परन्तु मरते समय राजाने अपने पुत्र इम्मडिबिज्जल (दूसरा बिज्जल) से कह दिया कि, यह कार्य वसवका है, अतः तू उसको मार डालना। इस पर इम्मडिबिज्जलने वसवको पकडने और जङ्गमोंको मार डालनेकी आज्ञा दी। यह खबर पाते ही कुएँमें गिर कर वसवने आत्महत्या कर ली, तथा उसकी स्त्री नीलावाने विष भक्षण कर लिया। इस तरह नवीन राजाका क्रोध शान्त होने पर चन्नबसवने अपने मामा बसवका द्रव्य राजाके नजर कर दिया। इससे प्रसन्न होकर उसने चन्नबसवको अपना प्रधान बना लिया।"

यद्यपि पूर्वोक्त पुस्तकोंके वृत्तान्तोंमें सत्यासत्यका निर्णय करना कठिन है तथापि सम्भवतः बसव और बिज्जलके बीचका द्वेष ही उन दोनोंके नाशका कारण हुआ होगा। बिज्जलदेवके पाँच पुत्र थे—सोमेश्वर (सोविदेव),

संकम, आहवमल्ल, सिंघण और वज्रदेव। इसके एक कन्या भी थी। उसका नाम सिरिया देवी था। इसका विवाह सिंहवंशी महामण्डलेश्वर चावंड दूसरेके साथ हुआ था। वह येलबर्ग प्रदेशका स्वामी था। सिरियादेवी और वज्रदेवीकी माताका नाम एचलदेवी था। विज्जलदेवके समयके कई लेख मिले हैं। उनमेंका अन्तिम लेख वर्त्तमान श० सं० १०९१ (वि० सं० १२२५) आषाढ़ बदी अमावास्या (दक्षिणी) का है। उसका पुत्र सोमेश्वर उसी वर्षसे अपना राज्यवर्ष (सन-जुलूस) लिखता है। अतएव विज्जलदेवका देहान्त और सोमेश्वरका राज्याभिषेक वि० सं० १२२५ में होना चाहिए। यह सोमेश्वर अपने पिताके समयमें ही युवराज हो चुका था।

४–सोमेश्वर (सोविदेव)।

यह अपने पिताका उत्तराधिकारी हुआ। इसका दूसरा नाम सोविदेव था। इसके सिवाय, ये थे—भुजबलमल्ल, रायमुरारी, समस्तभुवनाश्रयं, श्रीपृथ्वीवल्लभ, महाराजाधिराज परमेश्वर और कलचुर्य-चक्रवर्ती।

इसकी रानी सावलदेवी संगीतविद्यामें बड़ी निपुण थी। एक दिन उसने अनेक देशोंके प्रतिष्ठित पुरुषोंसे भरी हुई राजसभाको अपने उत्तम गानसे प्रसन्न कर दिया। इस पर प्रसन्न होकर सोमेश्वरने उसे भूमिदान करनेकी आज्ञा दी। यह बात उसके ताम्रपत्रसे प्रकट होती है। इस देशमें मुसलमानोंका आधिपत्य होनेके बादसे ही कुलीन और राज्य-घरानोंकी स्त्रियोंमेंसे संगीतविद्या लुप्त होगई है। इतना ही नहीं, यह विद्या अब उनके लिये भूषणके बदले दूषण समझी जाने लगी है। परन्तु प्राचीन समयमें स्त्रियोंको संगीतकी शिक्षा दी जाती थी। तथा यह शिक्षा स्त्रियोंके लिये भूषण भी समझी जाती थी। इसका प्रमाण रामायण, कादंबरी, मालविकाग्निमित्र और महाभारत आदि संस्कृत साहित्यके अनेक प्राचीन ग्रन्थोंसे मिलता है। तथा कहीं कहीं प्राचीन शिलालेखोंमें

भी इसका उल्लेख पाया जाता है। जैसे–होयशल (यादव) राजा बल्लाल प्रथमकी तीनों रानियाँ गाने और नाचनेमें बड़ी कुशल थीं। इनके नाम पद्मलदेवी, चावलदेवी और बोप्पदेवी थे। बल्लालका पुत्र विष्णुवर्धन और उसकी रानी शान्तलदेवी, दोनों, गाने, बजाने और नाचनेमें बड़े निपुण थे[1]।

सोमेश्वरके समयका सबसे पिछला लेख (वर्तमान) श० स० १०९९ (वि० स० १२३३) का मिला है। यह लेख उसके राज्यके दूसरे वर्षमें लिखा गया था। उसी वर्षमें उसका देहान्त होना सम्भव है।

५–संकम (निश्शंकमल्ल)

यह सोमेश्वरका छोटा भाई था, तथा उसके पीछे उसका उत्तराधिकारी हुआ। इसको निश्शंकमल्ल भी कहते थे। सङ्कमके नामके साथ भी वे ही खिताब लिखे मिलते हैं, जो खिताब सोमेश्वरके नामके साथ हैं।

(वर्तमान) श० स० ११०३ (वि० स० १२३७) के लेखमें सकमके राज्यका पाँचवाँ वर्ष लिखा है।

६–आहवमल्ल।

यह सङ्कमका छोटा भाई था और उसके बाद गद्दी पर बैठा। इसके नामके साथ भी वे ही पूर्वोक्त सोमेश्वरवाले खिताब लगे हैं। (वर्तमान) श० स० ११०३ से ११०६ (वि० स० १२३७ से १२४०) तकके आहवमल्लके समयके लेख मिले हैं।

७–सिंघण।

यह आहवमल्लका छोटा भाई और उत्तराधिकारी था। श० स० ११०५ (वि० स० १२४०) का सिंघणके समयका एक ताम्रपत्र मिला है।

---

(१) Shravan Belgola Inscript ons No 56

उसमें इसको केवल महाराजाधिराज लिखा है। वि० सं० १२४० (ई० स० ११८३) के आसपास सोलंकी राजा तैल (तैलप) तीसरेके पुत्र सोमेश्वरने अपने सेनापति बोम्म (ब्रह्म) की सहायतासे कलचुरियोंसे अपने पूर्वजोंका राज्य पीछे छीन लिया। कल्याणमें फिर सोलङ्कियोंका राज्य स्थापन हुआ। वहाँपरसे सिंघणके पीछेके किसी कलचुरी राजाका लेख अब तक नहीं मिला है।

कल्याणके हैहयोंका वंशवृक्ष।

१—जोगम
२—पेर्माडि (परमर्दि)
३—विज्जल

४—सोमेश्वर, ५—संकम, ६—आहवमल्ल, ७—सिंघण, ८ वज्रदेव।

---
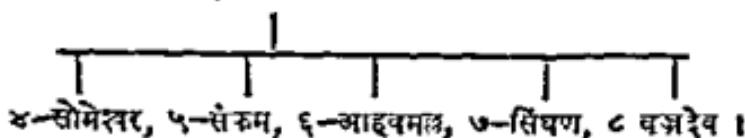
३ परमार-वंश।

आबूके परमार।

परमार अपनी उत्पत्ति आबू पहाड़ पर मानते हैं। पहले समयमें आबू और उसके आसपास दूर दूर तकके देश उनके अधीन थे। वर्तमान सिरोही, पालनपुर, मारवाड और दाँता राज्योंका बहुत अंश उनके राज्यमें था। उनकी राजधानीका नाम चन्द्रावती था। यह एक समृद्धिशालिनी नगरी थी।

विक्रम-संवत्की ग्यारहवीं शताब्दिके पूर्वार्धमें नाडोलमें चौहानोंका और अणहिलवाडेमें चौलुक्योंका राज्य स्थापित हुआ। उस समयसे परमारोंका राज्य उक्त वंशोंके राजाओंने दबाना प्रारम्भ किया। विक्रम-संवत् १३६८ के निकट चौहान राव लुम्भाने उनके सारे राज्यको छीन कर आबूके परमार-राज्यकी समाप्ति कर दी।

आबूके परमारोंके लेखों और ताम्रपत्रोंमें उनके मूल-पुरुषका नाम धौमराज या धूमराज लिखा मिलता है। पाटनारायणके मन्दिरवाले विक्रम-संवत् १३४४ के शिलालेखमें लिखा है.—

अनीतधेन्वे परनिर्जयेन मुनि स्वगोत्र परमारजातिम्।
तस्मै ददावुद्धतभूरिभाग्य त धौमराज च चकार नाम्ना॥ ४॥

तथा—विक्रम-संवत् १२८७ में खोदी गई वस्तुपाल-तेजपालके मन्दिर-की प्रशस्तिमें लिखा है —

श्रीधूमराज प्रथमं बभूव भूवासवस्तत्र नरेन्द्रवंशे।

परन्तु इस राजाके समयका कुछ भी पता नहीं चलता।

विक्रम-संवत् १२१८ (ईसवी सन् ११६१) के किराडूके लेखमें इनकी वंशावली सिन्धुराजसे प्रारम्भ की गई है। परन्तु दूसरे लेखोंमें

सिन्धुराज नाम नहीं मिलता । उनमें उत्पलराजसे ही परमारोंकी वंश-परम्परा लिखी गई है ।

१–सिन्धुराज ।

पूर्वोक्त किराडूके लेखानुसार यह राजा मारवाड़में वडा प्रतापी हुआ । लेखके चौथे श्लोकमें लिखा हैः—

सिंधुराजो महाराजः समभून्मरुमण्डले ॥ ४ ॥

यह राजा मालवेके सिन्धुराज नामक राजासे भिन्न था । यह कथन इस बातसे और भी पुष्ट होता है कि विक्रम-संवत् १०८८ के निकट आबूके सिन्धुराजका सातवाँ वंशज धन्धुक सोलङ्की भीम द्वारा चन्द्रावतीसे निकाल दिया गया था और वहाँसे मालवेके सिन्धुराजके पुत्र भोजकी शरणमें चला गया था । सम्भव है कि जालोरका सिन्धुराजेश्वरका मन्दिर इन्होंने (आबूके सिन्धुराजने) बनवाया हो । मन्दिरपर विक्रम-संवत् ११७४ (ईसवी सन् ११९७) में बीसलदेवकी रानी मेलरदेवीने सुवर्णकलश चढ़वाया था । इससे यह भी प्रकट होता है कि उस समय जालोर पर भी परमारोंका अधिकार था ।

२–उत्पलराज ।

यद्यपि विक्रम-संवत् १०९९ (ईसवी सन् १०४२) के वसन्तगढ़के लेखमें[1] इसी राजासे वंशावली प्रारम्भ की गई है तथापि किराडूके लेखसे मालूम होता है कि यह सिन्धुराजका पुत्र था । मूता नैणसीने भी अपनी ख्यातमें धुमराजके बाद उत्पलराजसे ही वंशावली प्रारम्भ की है । उसने लिखा हैः—

"ऊपलराई किराड़ू छोड़ ओसियाँ वसियो, सचियाय प्रसन्न हुई, माल बतायो, ओसियाँमें देहरा करायो ।"

(१) Ep. Ind., Vol. II, p. II.

अर्थात्—उत्पलराज किराडू छोड़ कर ओसियाँ नामक गाँवमें जा वसा। सचियाय नामक देवी उस पर प्रसन्न हुई, उसे धन बतलाया। इसके बदले उसने ओसियाँमें एक मन्दिर बनवा दिया।

३-आरण्यराज।

यह अपने पिता उत्पलराजका उत्तराधिकारी था।

४-कृष्णराज प्रथम।

यह आरण्यराजका पुत्र और उत्तराधिकारी था।

सिरोही-राज्यके वसन्तगढ़ नामक किलेके खँडहरमें एक बावडी है। उसमें विक्रम-संवत् १०९९ का, पूर्णपालके समयका, एक लेख है। लेखमें लिखा है:—

> अस्यान्वये ह्युत्पलराजनामा आरण्यराजोऽपि ततो बभूव।
> तस्मादभूदद्भुतकृष्णराजो विख्यातकीर्ति किल वासुदेव॥

अर्थात्—इस (धूमराज) के वंशमें उत्पलराज हुआ। उसका पुत्र आरण्यराज और आरण्यराजका पुत्र अद्भुत गुणोंवाला कृष्णराज हुआ। प्रोफेसर कीलहार्नने इस राजाका नाम अद्भुत कृष्णराज लिखा है, पर यह उनका भ्रम है। इसका नाम कृष्णराज ही था। अद्भुत शब्द तो केवल इसका विशेषण है। इसके प्रमाणमें विक्रम-संवत् १३७८[1] की आबूके 'विमलवसही' नामक मन्दिरकी प्रशस्तिका यह श्लोक हम नीचे देते हैं —

> तदन्वयेकान्हडदेववीरः पुराविरासीत्प्रबलप्रताप॥

अर्थात्—उसके वंशमें वीर कान्हड़देव हुआ। कान्हडदेव कृष्णदेव-का ही अपभ्रंश है, अद्भुत कृष्णदेवका नहीं। इससे यह मालूम हुआ कि उसे कान्हड़देव भी कहते थे।

(१) Ep. Ind., Vol. IX, p. 148.

५–धरणीवराह।

यह कृष्णराजका पुत्र था। उसके पीछे यही गद्दी पर बैठा। प्रोफ़ेसर कीलहार्नने इसका नाम छोड़ दिया है और अद्भुत-कृष्णराजके पुत्रका नाम महिपाल लिख दिया है। पर उनको इस जगह कुछ सन्देह हुआ था। क्योंकि वहीं पर उन्होंने कोष्ठकमें इस तरह लिखा है:—

"(Or, if a name should have been lost at the commencement of line 4, his son's son.)"

अर्थात्—शायद यहाँ पर कृष्णराजके पुत्रके नामके अक्षर खण्डित हो गये हैं।

इसको गुजरातके सोलङ्की मूलराजने हरा कर भगा दिया था। उस समय राष्ट्रकूट धवलने इसकी मदद की थी। इस बातका पता विक्रम-संवत् १०५३ (ईसवी सन् ९९६) के राष्ट्रकूट धवलके लेखसे लगता है:—

"यं मूलादुदमूलयद्गुरुबलः श्रीमूलराजो नृपो
दर्पान्धो धरणीवराहनृपतिं यद्वद्द्विपः पादपम्।
आयातं भुवि कांदिशीकमभिको यस्तं शरण्यो दधौ
दंष्ट्रायामिव रूढमूढमहिमा कोलो महीमण्डलम् ॥ १२ ॥

सम्भवतः इसी समयसे आबूके परमार गुजरातवालोंके सामन्त बने। मूलराजने विक्रम-संवत् १०१७ से १०५२ (ईसवी सन् ९६१ से ९९६) तक राज्य किया था। अतएव यह घटना इस समयके बीचकी होगी।

शिलालेखोंमें धरणीवराहका नाम साफ़ साफ़ नहीं मिलता। पर किराड़ूके लेखके आठवें श्लोकके पूर्वार्ध और वसन्तगढ़के पाँचवें श्लोकके उत्तरार्धसे उसके अस्तित्वका ठीक अनुमान किया जा सकता है। उक्त पदोंको हम क्रमशः नीचे उद्धृत करते हैं:—

प्रथम— सिन्धुराजधराधारधरणीधरधामवान्
... ... ॥ ८ ॥

द्वितीय— ... .
... ...श्रीमान्यथोर्वी धृतवान्वराह ॥ ५ ॥

धरणीवराह नामका एक चापवंशी राजा वर्धमानमें भी हुआ है। पर उसका समय शक-संवत् ८३६ (विक्रम-संवत् ९७१=ईसवी सन् ९१४) है। हथूँडीके राष्ट्रकूट धवलके लेखका धरणीवराह यही परमार धरणीवराह था। गुजरातके मूलराज द्वारा आबूसे भगाये जानेपर वह गोडवाड़के राष्ट्रकूट राजा धवलकी शरण गया था। यह घटना भी यही सिद्ध करती है।

राजपूतानेमें धरणीवराहके नामसे एक छप्पय भी प्रसिद्ध है—

मंडोवरसामंत हुवो अजमेर सिद्धसुव।
गढ़ पूगल गजमल्ल हुवो लौद्रवे भाणभुव।
अल्ह पल्ह अरबद् भोज राजा जालन्धर॥
जोगराज धरधाट हुवो हांसू पारक्कर।
नवकोट किराडू सजुगत थिर पंवार हर थप्पिया।
धरणीवराह घर भाइयां कोट बांट जूजू किया॥

छप्पयमें लिखा है कि धरणीवराहने पृथ्वी अपने नौ भाइयोंमें बाँट दी थी। पर यह छप्पय पीछेकी कल्पना प्रतीत होता है। इसमें सिद्ध नामक भाईको अजमेर देना लिखा है। अजमेर अजयदेवके समय बसा था। अजयदेवका समय ११७६ के आसपास है। उसके पुत्र अर्णोराजका एक लेख, विक्रम-संवत् ११९६ का लिखा हुआ, जयपुर शेखावाटी प्रान्तके जीवण-माताके मान्दिरमें लगा हुआ है। अत धरणीवराहके समयमें अजमेरका होना असम्भव है।

६–महिपाल।

यह धरणीवराहका पुत्र था। उसके पीछे राज्याधिकार इसे ही मिला। इसका दूसरा नाम देवराज था। विक्रम संवत् १०५९ (ईसवी सन् १००२) का इसका एक लेख मिला है।

७–धन्धुक ।

महिपालका पुत्र और उत्तराधिकारी था। यह बड़ा पराक्रमी राजा था। इसकी रानीका नाम अमृतदेवी था। अमृतदेवीसे पूर्णपाल नामका पुत्र और लाहिनी नामक कन्या हुई। कन्याका विवाह द्विजातियोंके वंशज चचके पुत्र विग्रहराजसे हुआ। विग्रहराजके दादाका नाम दुर्लभराज और परदादाका सङ्गमराज था। लाहिनी विधवा हो जाने पर अपने भाई पूर्णपालके यहाँ वसिष्ठपुर (वसन्तगढ़) चली आई। वि० सं० १०९९ में उसने वहाँके सूर्यमन्दिर और सरस्वती-बावड़ीका जीर्णोद्धार कराया। इसीसे बावड़ीका नाम लाणबावड़ी हुआ।

गुजरातके चौलुक्यराजा भीमदेवके साथ विरोध हो जानेपर धन्धुक आबूसे भागकर धाराके राजा भोज प्रथमकी शरणमें गया। भोज उस समय चित्तौरके किलेमें था। आबूपर पोरवाल जातिके विमलशाह नामक महाजनको भीमने अपना दण्डनायक नियत किया, उसने धन्धुकको चित्तौरसे बुलवा भेजा और भीमदेवसे उसका मेल करवा दिया। वि० सं० १०८८ में इसी विमलशाहने देलवाड़ेमें आदिनाथका प्रसिद्ध मन्दिर बनवाया। मन्दिर बहुत ही सुन्दर है; वह भारतके प्राचीन शिल्पका अच्छा नमूना है। उसके बनवानेमें करोड़ों रुपये लगे होंगे। वि० सं० ११९७ के भीनमालके शिलालेखमें धन्धुकके पुत्रका नाम कृष्णराज लिखा है। अतः अनुमान है कि इसके दो पुत्र थे—पूर्णपाल और कृष्णराज।

८–पूर्णपाल ।

यह धन्धुकका ज्येष्ठ पुत्र और उत्तराधिकारी था। इसके तीन शिलालेख मिले हैं। पहला विक्रम-संवत् १०९९ (ईसवी सन् १०४२) का वसन्तगढ़में, दूसरा इसी संवत्का सिरोही-राज्यके एक स्थानमें और

तीसरा विक्रम-संवत् ११०२ (ईसवी सन् १०४५) का गोडवाड पर-
गनेके माहँद गाँवमें।

९-कृष्णराज दूसरा।

यह पूर्णपालका छोटा भाई था। उसके पीछे उसके राज्यका यही उत्तरा-
धिकारी हुआ। इसके दो शिलालेख भीनमालमें मिले हैं। पहला विक्रम-संवत्
१११७ (ईसवी सन् १०६१) माघसुदी ६ का और दूसरा विक्रम-संवत्
११२३ (ईसवी सन् १०६६) ज्येष्ठ वदी १२ का। इनमें यह महा-
राजाधिराज लिखा गया है। विक्रम-संवत् १३१९ (ईसवी सन् १२६२)
के चाहमान चाचिगदेवके सूँधामातावाले लेखमें[1] यह भूमिपति कहा गया
है। इससे मालूम होता है कि पूर्णपालके बाद उसका छोटा भाई कृष्णराज
वसन्तगढ, भीनमाल और किराडूका स्वामी हुआ। इसे शायद भीमने
कैद कर लिया था। चाचिगदेवके पूर्वोक्त लेखका अठारहवाँ श्लोक
यह है —

> जज्ञे भूभृत्तदनु तनयस्तस्य बालप्रसादो
> भीमक्ष्माभृच्चरणयुगलीमर्दनव्याजतो य ।
> कुर्वन्पीडामतिबलतया मोचयामास कारा—
> गाराद्भूमीपतिमपि तथा कृष्णदेवाभिधानम् ॥

अर्थात्—बालप्रसादने भीमदेवके चरण पकडनेके बहाने उसके पैर
इतने जोरसे दबाये कि उसे बडी तकलीफ होने लगी। उसने अपने पैर
तब छुडा पाये जब बदलेमें राजा कृष्णराजको कैदसे छोडना स्वीकार किया।

किराडूके शिलालेखमें पूर्णपालका नाम नहीं है। उसकी जगह उसके
छोटे भाई कृष्णराजहीका नाम है। अत अनुमान होता है कि कृष्ण-
राजसे किराडूकी दूसरी शाखा चली होगी।

---

(1) EP Ind vol, IX, P, 70,

१०-ध्रुवभट ।

यह किसका पुत्र था, इस बातका अबतक निश्चय नहीं हुआ। वस्तुपाल-तेजपालके मन्दिरकी विक्रम-संवत् १२८७ की प्रशस्तिके चौंतीसवें श्लोकके पूर्वार्द्धमें लिखा है:—

धन्धुकध्रुवभटादयस्ततस्तेरिपुद्वयघटाजितोऽभवन्।

अर्थात्—धूमराजके वंशमें धन्धुक और ध्रुवभट आदि वीर उत्पन्न हुए। यही बात एक दूसरे खण्ड-शिलालेखसे भी प्रकट होती है। यह खण्ड-लेख आबूके अचलेश्वरके मन्दिरमें अष्टोत्तरशतलिङ्गके नीचे लगा हुआ है। इसमें वस्तुपाल-तेजपालके वंशका वृत्तान्त होनेसे अनुमान होता है कि यह उन्हींका खुदवाया हुआ है। इसके तेरहवें श्लोकमें लिखा है:—

अपरेऽपि न सन्दिग्धा धन्धुध्रुवभटादय ।

यहाँपर इनकी पीढ़ियोंका निश्चित रूपसे पता नहीं लगता।

११-रामदेव ।

यह ध्रुवभटका वंशज था। यह बात वस्तुपाल-तेजपालकी प्रशस्तिके चौंतीसवें श्लोकके उत्तरार्धसे प्रकट होती है.—

यत्कुलेऽजनि पुमान्मनोरमो रामदेव इति कामदेवजित् ॥ ३४ ॥

अर्थात् ध्रुवभटके वशमें अत्यन्त सुन्दर रामदेव नामक राजा हुआ। यही बात अचलेश्वरके लेखसे भी प्रकट होती है.—

श्रीरामदेवनामा कामादपि सुन्दर सोऽभूत्।

१२-विक्रमसिंह ।

यद्यपि इस राजाका नाम वस्तुपाल-तेजपाल और अचलेश्वरकी प्रशस्तियोंमें नहीं है तथापि द्याश्रयकाव्यमें लिखा है कि जिस समय चौलुक्य राजा कुमारपालने चौहान अर्णोराज (आना) पर चढ़ाई की उस समय,— अर्थात् विक्रम-संवत् १२०७ (ईसवी सन् ११५०) में, आबू पर

कुमारपालका सामन्त परमार विक्रमसिंह राज्य करता था। यह भी अपने मालिक कुमारपालकी सेनाके साथ था। जिनमण्डन अपने कुमारपालप्रबन्धमें लिखता है कि विक्रमसिंह लड़ाईके समय अर्णोराजसे मिल गया था। इसलिए उसको कुमारपालने कैद कर लिया और आबूका राज्य उसके भतीजे यशोधवलको दे दिया। अतः आबू पर विक्रमसिंहका राज्य करना सिद्ध है। उसका नाम पूर्वोक्त दोनों लेखोंसे भी प्राचीन द्व्याश्रयकाव्यमें मौजूद है।

१३–यशोधवल।

यह विक्रमसिंहका भतीजा था। उसके कैद किये जानेके बाद यह गद्दी पर बैठा। कुमारपालके शत्रु मालवेके राजा बल्लालको इसने मारा। यह बात पूर्वोक्त वस्तुपाल-तेजपालके लेखसे और अचलेश्वरके लेखसे भी प्रकट होती है[1]। इसकी रानीका नाम सौभाग्यदेवी था। यह चौलुक्य-वंशकी थी। इसके दो पुत्र थे—धारावर्ष और प्रह्लादनदेव।

विक्रम-संवत् १२०२ (ईसवी सन् ११४६) का, इसके राज्य-समयका, एक शिलालेख अजारी गाँवसे मिला है। उसमें लिखा है—

प्रमारवंशोद्भवमहामण्डलेश्वरश्रीयशोधवलराज्ये

इससे उस समयमें इसका राज्य होना सिद्ध है।

---

(१) तस्मान्महीं विदितान्यकलत्रपात्र-
स्पर्शो यशोधवल इत्यवलम्ब्यते स्म।
यो गुर्जरक्षितिपतिप्रतिपक्षमाजौ
बल्लालमालभत मालवमेदिनीन्द्रम्॥ ३५॥
(–अचलेश्वरके मन्दिरका लेख)
यश्चौलुक्यकुमारपालनृपतिप्रत्यर्थितामागतं
मत्वा सत्वरमेव मालवपतिं बल्लालमालब्धवान्॥ ३५॥
(–वस्तुपालके जैन-मन्दिरकी, विक्रम-संवत् १२८७ की, प्रशस्ति)

विक्रम-संवत् १२२० का धारावर्षका एक शिलालेख कायद्रा गाँव (सिरोही इलाके) के बाहर, काशी-विश्वेश्वरके मन्दिरमें, मिला है । अतः यशोधवलका देहान्त उक्त संवत्के पूर्व ही हुआ होगा ।

१४–धारावर्ष ।

यह यशोधवलका ज्येष्ठ पुत्र था । यही उसका उत्तराधिकारी हुआ । यह राजा बड़ा ही वीर था । इसकी वीरताके स्मारक अबतक भी आबूके आसपासके गाँवोंमें मौजूद हैं । यहाँ यह धार-परमार नामसे प्रसिद्ध है । पूर्वोक्त वस्तुपाल-तेजपालकी प्रशस्तिके छत्तीसवें श्लोकमें इसकी वीरताका इस तरह वर्णन किया गया है:—

शत्रुश्रेणीगलविदलनोन्निद्रनिस्त्रिंशधारो
धारावर्षः समजनि सुतस्तस्य विश्वप्रशस्यः ।
क्रोधाक्रान्तप्रधनवसुधा निश्चले यत्र जाता
श्चोतन्नेत्रोत्पलजलकणः कोंकणाधीशपत्न्यः ॥ ३६ ॥

अर्थात्—यशोधवलके बड़ा ही वीर और प्रतापी धारावर्ष नामक पुत्र हुआ । उसके भयसे कोंकण देशके राजाकी रानियोंके आँसू गिरे ।

कोंकणके शिलारवंशी राजा मल्लिकार्जुन पर कुमारपालने फौज भेजी थी । परन्तु पहली बार उसको हार कर लौटना पड़ा । परन्तु दूसरी बार-की चढ़ाईमें मल्लिकार्जुन मारा गया । सम्भव है, इस चढ़ाईमें धारावर्ष भी गुजरातकी सेनाके साथ रहा हो ।

अपने स्वामी गुजरातके राजाओंके सहायतार्थ धारावर्ष मुसलमानोंसे भी लड़ा था । यद्यपि इसका वर्णन संस्कृतलेखोंमें नहीं है, तथापि फारसी तवारीख़ोंसे इसका पता लगता है । ताजुल-मआसिरमें लिखा है:—

हिजरी सन् ५९३ (विक्रम-संवत् १२५४=ई० सन् ११९७) के सफ़र महीनेमें नहरवाले (अनहिलवाड़े) के राजा पर खुसरो (कुतुबुद्दीन ऐबक) ने चढ़ाई की । जिस समय वह पाली और नाडोलके पास आया उस समय वहाँ ले

किले उसे बिलकुल ही खाली मिले। आबूके नीचेकी एक घाटीमें रायकर्ण और दाराबर्स (धारावर्ष) बड़ी सेना लेकर लड़नेको तैयार थे। उनका मोरचा मज-बूत होनेसे उनपर हमला करनेकी हिम्मत मुसलमानोंकी न पड़ी। पहले इसी स्थान पर सुलतान शहाबुद्दीन गोरी घायल हो चुका था। अतः इनको भय हुआ कि कहीं सेनापति (कुतबुद्दीन) की भी वही दशा न हो। मुसलमानोंको इस प्रकार आगा-पीछा करते देख हिन्दू योद्धाओंने अनुमान किया कि वे डर गये हैं। अतः घाटी छोड़कर वे मैदानमें निकल आये। इस पर दोनों तरफसे युद्धकी तैयारी हुई। तारीख १३ रविउलअव्वलके प्रातःकालसे मध्याह्न तक भीषण लड़ाई हुई। लड़ाईमें हिन्दुओंने पीठ दिखलाई। उनके ५०,००० आदमी मारे गये और २०,००० कैद हुए।

तारीख़ फ़रिश्तामें पालीके स्थान पर वाली लिखा है। ऊपर हम आबूके नीचेकी घाटीमें सुलतान शहाबुद्दीन गोरीका घायल होना लिख चुके हैं। यह युद्ध हिजरी सन् ५७४ (ईसवी सन् ११७८–विक्रम-संवत् १२३५) में हुआ था। तबक़ाते नासिरीमें लिखा है कि जिस समय सुलतान मुलतानके मार्गसे नहरवाले (अनहिलवाड़) पर चढ़ा उस समय वहाँका राजा भीमदेव बालक था। पर उसके पास बड़ीभारी सेना और बहुतसे हाथी थे। इसलिए उससे हारकर सुलतानको लौटना पड़ा। यह घटना हिजरी सन् ५७४ में हुई थी।

इस युद्धमें भी धारावर्षका विद्यमान होना निश्चय है। यह युद्ध भी आबूके नीचे ही हुआ था। उस समय भी धारावर्ष आबूका राजा और गुजरातका सामन्त था।

धारावर्षके समयके पाँच लेख मिले हैं। पहला विक्रम-संवत् १२२० (ईसवी सन ११६३) का लेख कायद्रा (सिरोही राज्य) के काशी-विश्वेश्वरके मन्दिरमें। दूसरा विक्रमसंवत् १२३७ का ताम्रपत्र हाथल गाँवमें। इस ताम्रपत्रमें धारावर्षके मन्त्रीका नाम कोविदास लिखा है। यह ताम्रपत्र इंडियन ऐंटिक्वेरीकी ईसवी [illegible] १४ की अगस्त [illegible]

आबूके परमारोंकी वंशावली।

१६	कृष्णराज तीसरा	नं० १५ का पुत्र	दो लेख, १२१०	
१७	प्रतापसिंह	× × ×	वि० सं० १२४८	जैत्रकर्ण (जैत्रसिंह-गोहिल)

आबूके परमारोंका वंशवृक्ष।

धूमराजके वंशमें

१ सिन्धुराज
|
२ उत्पलराज
|
३ आरण्यराज
|
४ कृष्णराज (पहला)
|
५ धरणीवराह
|
६ महीपाल (देवराज)
|
७ धन्धुक
|
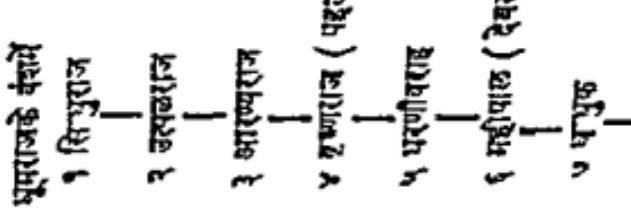
संख्यामें छप चुका है । तीसरा लेख विक्रम-संवत् १२४६ का मधुसूदनके मन्दिरमें मिला है । चौथा विक्रम-संवत् १२६५ का कनखल तीर्थमें मिला है । और पाँचवाँ १२७६ (ईसवी सन् १२१९) का है । यह मकावले गाँवके पासवाले एक तालाव पर मिला है । इस राजाका एक लेख रोहिड़ा गाँवमें और भी है । पर उसमें संवत् टूटा हुआ है ।

इसके दो रानियाँ थीं—गीगादेवी और शृङ्गारदेवी । ये मण्डलेश्वर चौहान कल्हणकी लड़कियाँ थीं । इसकी राजधानी चन्द्रावती थी । इसके अधीन १८०० गाँव थे । शृङ्गारदेवीने पार्श्वनाथके मन्दिरके लिए कुछ भूमिदान किया था । इस राजाने एक बाणसे बराबर बराबर खड़े हुए तीन भैंसोंको मारा था । यह बात विक्रम-संवत् १२४४ के पाटनारायणके लेखसे प्रकट होती है । उसमें लिखा है:—

एकबाणनिहितत्रिलुलायं यं निरीक्ष्य कुरुयोधसदृक्षम् ।

उक्त श्लोकके प्रमाणस्वरूप आबूके अचलेश्वरके मन्दिरके बाहर मन्दाकिनी नामक कुण्ड पर धनुषधारी धारावर्षकी पूरे कदकी पाषाणमूर्त्ति आज तक विद्यमान है । उसके सामने पूरे कदके पत्थरके तीन भैंसे बराबर बराबर खड़े हैं । उनके पेटमें एक छिद्र बना हुआ है ।

धारावर्षके छोटे भाईका नाम प्रल्हादन था । वह बड़ा विद्वान् था । उसका बनाया हुआ पार्थपराक्रम-व्यायोग नामक नाटक मिला है । कीर्तिकौमुदीमें और पूर्वोक्त वस्तुपाल-तेजपालकी प्रशस्तिमें गुर्जरेश्वरके पुरोहित सोमेश्वरने उसकी विद्वत्ताकी प्रशंसा की है । उसने अपने नामसे प्रल्हादनपुर नामक नगर बसाया, जो आज कल पालनपुर नामसे प्रसिद्ध है । यह राजा विद्वान् होनेके साथ ही पराक्रमी भी था । वस्तुपाल-तेजपालकी प्रशस्तिसे ज्ञात होता है कि यह सामन्तसिंहसे लड़ा था ।

(१) सामन्तसिंहसमितिक्षितिविक्षितौजाः श्रीगूर्जरक्षितिपरक्षणदक्षिणासिः ।
प्रह्लादनस्तदनुजो दनुजोत्तमारिचारित्रमत्रपुनरुज्ज्वलयाञ्चकार ॥ ३८ ॥

इसकी तलवार गुजरातके राजाकी रक्षा किया करती थी । सामन्तसिंह मेवाड़का राजा होना चाहिए । रक्षा करनेसे तात्पर्य शहाबुद्दीन गोरीके साथकी लड़ाईसे होगा, जिसमें सुल्तानको हारना पड़ा था ।

पृथ्वीराज-रासोमें लिखा है:—

आबूके परमार राजा सल्खकी पुत्री इच्छनीसे गुजरातके राजा भीमदेवने विवाह करना चहा । परन्तु यह बात सल्खने और उसके पुत्र जैतरावने मञ्जूर न की । इच्छनीका सम्बन्ध चौहान राजा पृथ्वीराजसे हुआ । इस पर भीम बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने आबू पर चढ़ाई करके उसे अपने अधिकारमें कर लिया । इस युद्धमें सलख मारा गया । इसके बाद पृथ्वीराजने भीमको परास्त करके आबूका राज्य जैतरावको दिलवा दिया और अपना विवाह इच्छनीसे कर लिया ।

यह सारी कथा बनवटी प्रतीत होती है, क्योंकि विक्रम-संवत् १२३६ से १२४९ तक पृथ्वीने राज्य किया था । विक्रम-संवत् १२७४ के पीछे तक आबू पर धारावर्षका राज्य रहा । उसके पीछे उसका पुत्र सोमसिंह गद्दीपर बैठा । अतएव पृथ्वीराजके समय आबूपर सलख और जैतरावका होना सर्वथा असम्भव है । इसी प्रकार आबूपर भीमदेवकी चढ़ाईका हाल भी कपोलकल्पित जान पडता है, क्योंकि धारावर्ष और उसका छोटा भाई प्रह्लादनदेव दोनों ही गुजरातवालोंके सामन्त थे । वे गुजरातवालोंके लिए मुसल्मानोंसे लडे थे ।

वि० सं० १२६५ के कनखलके मन्दिरके लेखसे भी धारावर्षका भीमदेवका सामन्त होना प्रकट होता है ।

१५–सोमसिंह ।

यह धारावर्षका पुत्र और उत्तराधिकारी था, शस्त्र और शास्त्रविद्या दोनोंका ज्ञाता था । इसने शस्त्रविद्या अपने पितासे और शास्त्रविद्या अपने चचा प्रह्लादनदेवसे सीखी थी । इसीके समय वि०सं० १२८७ (ई०

स० १२२०) में आबू पर तेजपालके मन्दिरकी प्रतिष्ठा हुई। यह मन्दिर हिन्दुस्तानकी उत्तमोत्तम कारीगरीका नमूना समझा जाता है। इस मन्दिरके लिए इस राजाने डबाणी गाँव दिया था। विक्रम संवत् १२८७ के सोमसिंहके समयके दो लेख इसी मन्दिरमें लगे हैं। विक्रम-संवत् १२९० का एक शिला-लेख गोड़वाड़ परगनेके नाण गॉव (जोधपुर-राज्य) में मिला है। उससे प्रकट होता है कि सोमसिंहने अपने जीतेजी अपने पुत्र कृष्णराजको युवराज बना दिया था। उसके खर्चके लिये नाणा गॉव (जहाँ यह लेख मिला है) दिया गया था।

१६–कृष्णराज तीसरा।

यह सोमसिंहका पुत्र था और उसीके पीछे उसका उत्तराधिकारी हुआ। इसको कान्हड़ भी कहते थे। पाटनारायणके लेखमें इसका नाम कृष्णदेव और वस्तुपाल तेजपालके मन्दिरके दूसरे लेखमें कान्हडदेव-लिखा है। अपने युवराजपनमें प्राप्त नाणा गॉवमे लकुलेर्दे महादेव-की पूजाके निमित्त इसने कुछ वृत्ति लगा दी थी। अतः अनुमान होता है कि यह शैव था। इसके पुत्रका नाम प्रतापसिंह था।

१७–प्रतापसिंह।

यह कृष्णराज [illegible] पुत्र था। उसके बाद यह गद्दी पर बैठा। जैत्र-कर्णको जीत कर [illegible]मरे वशके राजाओंके हाथमें गई हुई अपने पूर्वजोंकी राजधानी चन्द्राव[illegible] को इसने फिर प्राप्त किया। यह बात पाटनारायणके लेखसे प्रकट होती [illegible]। यथाः—

> कामं प्रमथ्य [illegible]नरे जगदेकवीरस्तं जैत्रकर्णमिह कर्णमिवेन्द्रसूनु।
> चन्द्रावतीं प[illegible]कुलादधिदूममामुर्वी वराह इव य सहसोद्दधार॥ १८॥

यह जैत्रकर्ण शायद मेवाडका जैत्रसिंह हो, जिसका समय विक्रम-

(१) लकुलीश [illegible] देव (लकुलदेव) की मूर्ति पद्मासनसे बैठी हुई जैनमूर्तिके समान होती है। उसके एक हाथमें लकड़ी और दूसरेमें बिजोरेका फल होत है। उसमें कर्ध्वरेता [illegible] का चिह्न भी रहता है।

संवत् १२७० से १३०३ तक है। समीप होनेके कारण ये मेवाड़वाले भी आबू पर अधिकार करनेकी चेष्टा करते रहे हों तो आश्चर्य नहीं। इसी लिए धारावर्षके भाई प्रह्लादनको भी इसपर चढ़ाई करनी पड़ी थी। सिरोही राज्यके कालागरा नामक एक प्राचीन गाँवसे विक्रम-संवत् १३०० (ईसवी सन १२४३) का एक शिलालेख मिला है। उसमें चन्द्रावतीके महाराजाधिराज आल्हणसिंहका नाम है। पर, उसके वंशका कुछ भी पता नहीं चलता। सम्भव है, वह परमार कृष्णराज तीसरेका ज्येष्ठ पुत्र हो और उसके पीछे प्रतापसिंहने राज्य प्राप्त किया हो। इस दशामें यह हो सकता है कि उसके वंशजोंने ज्येष्ठ भ्राता आल्हणसिंहका नाम छोड़कर कृष्णराजको सीधा ही पितासे मिला दिया हो। अथवा यह आल्हणसिंह और ही किसी वंशका होगा और कृष्णदेव तीसरेसे चन्द्रावती छीन कर राजा बन गया होगा।

विक्रम-संवत् १३२० का एक और शिलालेख आजारी गाँवमें मिला है। उसमें महाराजाधिराज अर्जुनदेवका नाम है। अतः या तो यह बघेल राजा होगा या उक्त आल्हणसिंहका उत्तराधिकारी होगा। इन्हींसे राज्यकी पुनः प्राप्ति करके प्रतापसिंहने चन्द्रावतीको शत्रुवंशसे छीना होगा। यह बात पूर्वोल्लिखित श्लोकके उत्तरार्धसे प्रकट होती है। पर जब तक दूसरे लेखोंसे इनका पूरा पूरा वृत्तान्त न मिले तब तक इस विषयमें निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता।

प्रतापसिंहके मन्त्रीका नाम देल्हण था। वह ब्राह्मणजातिका था। उसने विक्रम-संवत् १३४४ (ईसवी सन १२८७) में प्रतापसिंहके समय सिरोही-राज्यमें गिरवरके पाटनारायणके मन्दिरका जीर्णोद्धार कराया।

आबूके परमारोंके लेखोंसे प्रतापसिंह तक ही वंशावली मिलती है। इसी राजाके समयमें जालोरके चोहानोंने परमारोंके राज्यका बहुतसा पश्चिमी अंश दबा लिया था। इसीसे अथवा इसके उत्तराधिकारीसे,

विक्रम-संवत् १३६८ (ईसवी सन् १३११) के आसपास, चन्द्रावती-को छीन कर राव लुम्भाने इनके राज्यकी समाप्ति कर दी।

विक्रम-संवत् १३५६ (ईसवी सन् १२९९) का एक लेख वर्मागा गाँवके सूर्य्य-मन्दिरमें मिला है। उसमें "महाराजकुल-श्रीविक्रमसिंह-कल्याणविजयराज्ये" ये शब्द खुदे हैं। इस विक्रमसिंहके वंशका इसमें कुछ भी वर्णन नहीं है। यह पदवी विक्रम-संवत्‌की चौदहवीं शताब्दिके गुहिलोतों और चौहानोंके लेखोंमें मिलती है। सम्भवतः निकट रहनेके कारण परमारोंने भी यदि इसे धारण किया हो तो यह विक्रमसिंह प्रताप-सिंहका उत्तराधिकारी हो सकता है। पर बिना अन्य प्रमाणोंके निश्चय रूपसे कुछ नहीं कहा जा सकता। भाटोंकी ख्यातमें लिखा है कि आबूका अन्तिम परमार राजा हूण नामका था। उसको मार कर चौहानोंने आबूका राज्य छीन लिया। यही बात जन-श्रुतिसे भी पाई जाती है। इसी राजाके विषयमें एक कथा और भी प्रचलित है। वह इस प्रकार है:-

राजा (हूण) की रानीका नाम पिङ्गला था। एक रोज राजाने अपनी रानीके पातिव्रत्यकी परीक्षा लेनेका निश्चय किया। शिकारका बहाना करके वह कहीं दूर जा रहा। कुछ दिन बाद एक सॉंढ़नी-सवारके साथ उसने अपनी पगड़ी रानीके पास भिजवाकर कहला दिया कि राजा शत्रुओंके हाथसे मारा गया। यह सुन कर पिङ्गलाने पतिकी उस पगड़ी-को गोदमें रख कर रोते रोते प्राण छोड़ दिये। अर्थात् पतिके पीछे सती हो गई। जब यह समाचार राजाको मिला तब वह उसके शोकसे पागल हो गया और रानीकी चिताके इर्द गिर्द 'हाय पिङ्गला! हाय पिङ्गला!' चिल्लाता हुआ चक्कर लगाने लगा। अन्तमें गोरखनाथके उपदेशसे उसे वैराग्य हुआ। अतएव सब राजपाट छोड़कर गुरुके साथ ही वह भी वन-में चला गया। इसी अवसर पर चौहानोंने आबूका राज्य दबा लिया।

इस जनश्रुति पर विश्वास नहीं किया जा सकता। मुंता नेणसीने लिखा है कि परमारोंको छलसे मार कर चौहानोंने आबूका राज्य लिया।

किराड़ूके परमार।

विक्रम-संवत् १२१८ के किराड़ूके लेखसे प्रकट होता है कि कृष्णराज द्वितीयसे परमारोंकी एक दूसरी शाखा चली। उक्त लेखमें इस शाखाके राजाओंके नाम इस प्रकार मिलते हैं:—

१–सोछराज।

यह कृष्णराजका पुत्र था और बड़ा दाता था।

२–उदयराज।

यह सोछराजका पुत्र था। यही उसका उत्तराधिकारी हुआ। यह बड़ा वीर था। इसने चोल (Coromandal Coast), गौड (उत्तरी बङ्गाल), कर्णाट (कर्नाटक और माइसोर राज्यके आसपासका देश) और मालवेका उत्तर-पश्चिमी प्रदेश विजय किया। यह सोलङ्की सिद्धराज जयसिंहका सामन्त था।

३–सोमेश्वर।

यह उदयराजका पुत्र था। उसका उत्तराधिकारी भी यही हुआ। यह भी बड़ा वीर था। इसने जयसिंहकी कृपासे सिन्धुराजपुरके राज्यको फिरसे प्राप्त किया। कुमारपालकी कृपासे उसे इसने दृढ बना लिया। इसने किराडूमें बहुत समय तक राज्य किया। विक्रम-संवत् १२१८ के आश्विन मासकी शुक्ल प्रतिपदा, गुरुवारको, डेढ़ पहर दिन चढ़े इसने राजा जज्जकसे सत्रह सौ घोड़े दण्डके लिये। उससे दो किले भी तणुकोट (तणोट—जैसलमेरमें) और नवसर (नौसर—जोधपुरमें) इसने छीन लिये। अन्तमें, जज्जकको चौलुक्य कुमारपालके अधीन करके वे स्थान उसे लौटा दिये। ये बातें इसके समयके पूर्वोक्त लेखसे प्रकट होती हैं।

वि० सं० ११६३ (ईसवी सन् ११०५) मार्गशीर्ष वदि ११ का एक लेख सिरोही-राज्यके भागाल्ही गाँवमें मिला है। यह सोछरा (सोछराज) के पुत्र दुर्लभराजके समयका है। पर, इसमें इस राजाकी जातिका उल्लेख नहीं। अत: यह राजा कौन था, इस विषय पर हम कुछ नहीं कह सकते।

(१) यह लेख बहुत टूटा हुआ है। अतः सम्भव है कि इसकी ५ पंक्तियोंके पाठमें कुछ गड़बड़ हो जाय।

दाँतेके परमार।

इस समय आबूके परमारोंके वंशमें (आबू पर्वतके नीचे, अम्बा भवानीके पास) दाँताके राजा हैं। परन्तु ये अपना इतिहास बडे ही विचित्र ढँगसे बताते हैं। ये अपनेको आबूके परमारोंके वंशज मानते हैं। पर साथ ही यह भी कहते है कि हम मालवेके परमार राजा उदयादित्यके पुत्र जगदेवके वंशज है। प्रबन्धचिंतामणिके गुजराती अनुवादमें लिखे हुए मालवेके परमारोंके इतिहासको इन्होंने अपना इतिहास मान रक्खा है। पर साथ ही वे यह नहीं मानते कि मुञ्जके छोटे भाई सिंधुराजके पुत्र भोजके पीछे क्रमशः ये राजे हुए:—उदयकरण (उदयादित्य), देवकरण, खेमकरण, सन्ताण, समरराज और शालिवाहन। इनको उन्होंने छोड़ दिया है। इसी शालिवाहनने अपने नामसे श० सं० चलाया था। इस प्रकारकी अनेक निर्मूल कल्पित बातें इन्होंने अपने इतिहासमें भर ली हैं। ऐसा मालूम होता है कि जब इन्हें अपना प्राचीन इतिहास ठीक ठीक न मिला तब इधर उधरसे जो कुछ अण्ड बण्ड मिला उसे ही इन्होंने अपना इतिहास मान लिया। कान्हडदेवके पहलेका जितना इतिहास हिन्दू-राजस्थान नामक गुजरातीपुस्तकमें दिया गया है उतना प्रायः सभी कल्पित है। जो थोड़ासा इतिहास प्रबन्धचिन्तामणिसे भी दिया गया है उससे दाँतावालोंका कुछ भी सम्बन्ध नहीं। परन्तु इनके लिखे कान्हड़देवके पीछेके इतिहासमें कुछ कुछ सत्यता मालूम होती है। समयके हिसाबसे भी वह ठीक मिलता है। यह कान्हड़देव आबूके राजा धारावर्षका पौत्र और सोमसिंहका पुत्र था। इसका दूसरा नाम कृष्णराज था। यह विक्रम संवत् १३०० के बाद तक विद्यमान था। दाँतावाले अपनेको कान्हड़देवके पुत्र कल्याणदेवका वंशज मानते हैं। अतः यह कल्याणदेव कान्हड़देवका छोटा पुत्र और आबूके राजा प्रतापसिंहका छोटा भाई होना चाहिए।

जालोरके परमार।

विक्रम-संवत् ११७४ (ईसवी सन् १११७) आषाढ़ सुदि ५ का एक लेख मिला है। यह लेख जालोरके किलेके तोपखानेके पासकी दीवारमें लगा है। इसमें परमारोंकी पीढ़ियाँ इस प्रकार लिखी गई हैं:—

१–वाक्पतिराज।

पूर्वोक्त लेखमें लिखा है कि परमार-वंशमें वाक्पतिराज नामक राजा हुआ। यद्यपि मालवेमें भी राजा वाक्पतिराज (मुञ्ज) हुआ है तथापि उसके कोई पुत्र न था। इसी लिए अपने भाईके लड़के भोजको उसने गोद लिया था। पर लेखमें वाक्पतिराजके पुत्रका नाम चन्दन लिखा है। इससे प्रतीत होता है कि यह वाक्पतिराज मालवेके वाक्पतिराजसे भिन्न था।

२–चन्दन।

यह वाक्पतिराजका पुत्र था और उसके पीछे गद्दी पर बैठा।

३–देवराज।

यह चन्दनका पुत्र और उत्तराधिकारी था।

४–अपराजित।

इसने अपने पिता देवराजके बाद राज्य पाया।

५–विज्जल।

यह अपने पिता अपराजितका उत्तराधिकारी हुआ।

६–धारावर्ष।

यह विज्जलका पुत्र था तथा उसके बाद राज्यका अधिकारी हुआ।

७–वीसल।

धारावर्षका पुत्र वीसल ही अपने पिताका उत्तराधिकारी हुआ। इनकी रानी मेलरदेवीने सिन्धुराजेश्वरके मन्दिर पर सुवर्ण-कलश चढ़ाया,

जिसका उल्लेख हम सिन्धुराजके वर्णनमें कर चुके हैं। पूर्वोक्त विक्रम-सवत् ११७४ का लेख इसीके समयका है।

फुटकर।

जालोरके सिवा भी मारवाड़में परमारोंके लेख पाये जाते है। रोल नामक गॉवके कुवें पर भी इनके चार शिलालेख मिले है। वहॉं इनका सबसे पुराना लेख विक्रम-सवत् ११५२ (ईसवी सन १०९५) का है। यह पॅवार इसीरावका है। इसके पिताका नाम पाल्हण था। यह इसीराव बीकमपुरमें मारा गया था। दूसरा लेख विक्रम-सवत् ११६३ का, इसीरावके पुत्रका, हे। उसमें राजाका नाम टूट गया है। तीसरा विक्रम-सवत् ११६६ (ईसवी सन ११०९) का, इसीरावके पुत्र वाच्यपालका, है। चौथा विक्रम-सवत् १२४५ का पॅदारसहजा (?) का है। इनसे अनुमान होता है कि यहॉं पर भी कुछ समय परमारोंका राज्य अवश्य रहा।

मालवेके परमार ।

यद्यपि, इस समय, इस शाखाके परमार अपनेको विक्रम-संवत् चलानेवाले विक्रमादित्यके वंशज बतलाते हैं, परन्तु पुराने शिलालेखों, ताम्रपत्रों और ऐतिहासिक पुस्तकोंमें इस विषयका कुछ भी वर्णन नहीं मिलता। यदि मुञ्ज, भोज आदि राजाओंके समयमें भी ऐसा ही खयाल किया जाता होता, तो वे अपनी प्रशस्तियोंमें विक्रमके वंशज होनेका गौरव प्रगट किये विना कभी न रहते। परन्तु उस समयकी प्रशस्तियों आदिमें इस विषयका वर्णन न होनेसे केवल आज कलकी कल्पित दन्तकथाओंपर विश्वास नहीं किया जा सकता।

परमारोंके लेखों[1] तथा पद्मगुप्त (परिमल) रचित नवसाहसाङ्कचरित नामक काव्यमें लिखा है कि इनके मूल पुरुषकी उत्पत्ति,

---

(१) अस्त्युर्व्वीध्र प्रतीच्यां हिमगिरितनय सिद्द(दां)पन्यसिद्धे:
स्थानञ्च ज्ञानभाजामभिमतफलदोऽखर्वित सोऽर्व्वुदाख्य ।
विश्वामित्रो वशिष्ठाद्दहरतव [ल]तो यत्र गां तत्प्रभावा—
ज्जज्ञे वीरोग्निकुण्डाद्रिपुबलनिधनं यश्चकारैक एव [५]
मारयित्वा परान्धेनुमानिन्ये स ततो मुनि ।
उवाच परमारा [ख्यपा] र्थिवेन्द्रो भविष्यसि [६]
तदन्वयेऽखिलयज्ञसंघतृप्तामरोदाहृतकीर्तिरासीत् ।
उपेन्द्रराजो द्विजवर्गरत्नं सौ (शौ) र्य्यार्जितोत्तुङ्गनृपत्व[मा]न [७]
(–उदेपुर–ग्वालियर–प्रशस्ति, एपिग्राफिया इंडिका, जिल्द १, भाग ५)

(२) वंशः प्रववृते तस्मादादिराजान्मनोरिव ।
नीत: सुवृत्तैर्गुरुतां नृपैर्मुक्ताफलैरिव ॥ ७५ ॥
तस्मिन् पृथुप्रतापोऽपि निर्वापितमहीतल ।
उपेन्द्र इति संपन्ने राजा मूर्यन्दुसन्निभ. ॥ ७६ ॥
(–नवसाहसाङ्कचरित, सर्ग ११)

आबू पर्वतपर, वसिष्ठके अग्निकुंडसे हुई थी। इसलिए मालवेके परमारोंका भी, आबूके परमारोंकी शाखामें ही होना निश्चित है। मालवेमें परमारों- की प्रथम राजधानी धारा नगरी थी, जिसको वे अपनी कुल-राजधानी मानते थे। उज्जेनको उन्होंने पीछेसे अपनी राजधानी बनाया।

इस वंशके राजाओंका कोई प्राचीन हस्तलिखित इतिहास नहीं मिलता। परन्तु प्राचीन शिला-लेख, ताम्रपत्र, नवसाहसाङ्कचरित, तिलक- मञ्जरी आदि ग्रन्थोंसे इनका जो कुछ वृत्तान्त मालूम हुआ है उसका संक्षिप्त वर्णन इस ग्रन्थमें किया जायगा।

१–उपेन्द्र।

इस शाखाके पहले राजाका नाम कृष्णराज मिलता है। उसीका दूसरा नाम उपेन्द्र था। यह भी लिखा मिलता है कि इसने अनेक यज्ञ किये तथा अपने ही पराक्रमसे बहुत बडे राजा होनेका सम्मान पाया। इससे अनुमान होता है कि मालवाके परमारोंमें प्रथम कृष्णराज ही स्वतन्त्र और प्रतापी राजा हुआ। नवसाहसाङ्कचरितमें लिखा है कि उसका यश, जो सीताके आनन्दका कारण था, हनूमानकी तरह समुद्रको लाँघ गया। इसका शायद यही मतलब होगा कि सीता नाम- की प्रसिद्ध विदुषीने इस प्रतापी राजाका कुछ यशोवर्णन किया है।

---

(१) शङ्कितेन्द्रेण दधता पूतामवभृथैस्तनुम्।
अकारि यज्वना येन हेमयूपाङ्किता मही॥ ७८॥

(–नवसाहसाङ्कचरित, सर्ग ११)

(२) भाटोंकी पुस्तकोंमें इसकी रानीका नाम लक्ष्मीदेवी और बड़े पुत्रका नाम अजितराज लिखा मिलता है। परन्तु प्रमाणाभावसे इस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। किसी किसी ख्यातमें इसके पुत्रका नाम शिवराज भी लिखा मिलता है।

(३) सदागतिप्रवृत्तेन सीतोच्छ्वसितहेतुना।
हनूमतेव यशसा यस्याऽलङ्घ्यत सागरः॥ ७७॥

(–न॰ सा॰ च॰, सर्ग ११]

प्रबन्धचिन्तामणि और भोजप्रबन्धमें इस विदुषीका होना राजा भोजके समयमें लिखा है। परन्तु, सम्भव है कि वह कृष्णराजके समयमें ही हुई हो, क्योंकि भोजप्रबन्ध आदिमें कालिदास, बाण, मयूर, माघ आदि भोजसे बहुत पहलेके कवियोंका वर्णन इस तरह किया गया है जैसे वे भोजके ही समयमें विद्यमान रहे हों। अत एव सीताका भी उसी समय होना लिख दिया गया हो तो क्या आश्चर्य है।

कृष्णराजके समयका कोई शिला-लेख अबतक नहि मिला, जिससे उसका असली समय मालूम हो सकता। परन्तु उसके अनन्तर छठे राजा मुञ्जका देहान्त विक्रम-संवत् १०५०और १०५४ (ईसवी सन् ९९३ और ९९७)के बीचमें होना प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता पण्डित गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझाने निश्चित किया है[1]। अतएव यदि हम हर एक राजाका राज्य-समय २० वर्ष मानें तो कृष्णराजका समय वि०सं० ९१०और९३० (८५३ और ८७३ ई०) के बीच जापडेगा। परन्तु कप्तान सी० ई० लूअर्ड, एम० ए० और पण्डित काशीनाथ कृष्ण लेलेने डाक्टर बूलरके मतानुसार हर एक राजाका राजत्वकाल २५ वर्ष मानकर कृष्णराजका समय, ८००—८२५ ई० निश्चित किया है[3]।

२-वैरिसिंह

यह राजा अपने पिता कृष्णराजके पीछे गद्दी पर बैठा[4]।

(१)मोलङ्कियोंका प्राचीन इतिहास, भाग १, पृ० ७७। (२)जैन-हरिवंशपुराण में, जिसकी समाप्ति शक-संवत् ७०५ (वि० सं० ८४० = ई० स० ७८३)में हुई, लिखा है कि उस समय अवन्तीका राजा वत्सराज था। इससे उक्त संवत्के बाद परमारोंका अधिकार मालवे पर हुआ होगा।

(३) परमार आव् धार एंड मालवा, पृट ४६।

(४) तस्सूनुरासीदरिराजकुम्भिकण्ठीरवो वीर्यवतां वरिष्ठः।
श्रीवैरिसिंहश्चतुरर्णवान्तधाम्ना जयस्तम्भमदन्प्रशस्तिः [८]
(एपि० इण्डि०, जि० १, भा० ५)

३-सीयक।

यह वैरिसिंहका पुत्र और उत्तराधिकारी था[1]। इन दोनों राजाओंका अब तक कोई विशेष हाल नहीं मालूम हुआ।

४-वाक्पतिराज।

यह सीयकका पुत्र था और उसके पीछे गद्दी पर बैठा। इसके विषयमें उदेपुर (ग्वालियर) की प्रशस्तिमें लिखा है कि यह अवन्तीकी तरुणियोंके नेत्ररूपी कमलोंके लिए सूर्य-समान था। इसकी सेनाके घोडे गङ्गा और समुद्रका जल पीते थे[2]। इसका आशय हम यही समझते हैं कि उसके समयमें अवन्ती राजधानी हो चुकी थी और उसकी विजय-यात्रा गङ्गा और समुद्र तक हुई थी[3]।

५-वैरिसिंह (दूसरा)।

यह अपने पिताका उत्तराधिकारी हुआ[4]। इसके छोटे भाई डंबरसि-

(१) तस्माद्बभूव वसुधाधिपमौलिमालारत्नप्रभारुचिररञ्जितपादपीठः।
श्रीसीयकः करकृपाणजलोर्म्मिमग्नस(श)त्रुव्रजो विजयिनां धुरि भूमिपालः [९]
(एपि० इण्डि०, जि० १, भा० ५)

(२) तस्मादवन्तितरुणीनयनारविन्दभास्वानभूत्करकृपाणमरीचिदीप्तः।
श्रीवाक्पतिः शतमखानुकृतिस्तुरङ्गा गङ्गा-समुद्र-सलिलानि पिबन्ति यस्य [१०]
(एपि० इण्डि०, जि० १, भा० ५)

(३) भाटोंकी ख्यातोंमें लिखा है कि इसने २७ दिनकी लडाईके बाद कामरूप (आसाम) पर विजय प्राप्त की थी। यह वाक्य भी पूर्वोक्त उदयपुरकी प्रशस्तिके लेखको पुष्ट करता है। इन्हीं पुस्तकोंमें इसकी स्त्रीका नाम कमलादेवी मिला है। ३९ वर्ष राज्य करनेके बाद रानीसहित कुरुक्षेत्रमें जाकर इसका वानप्रस्थ होना भी इसीमें वर्णित है। (परमार आव् धार एंड मालवा, पृ० २-३)

(४) भाटोंकी ख्यातोंमें लिखा है कि वीरसिंह तीर्थयात्राके लिए गया पहुँचा। वहाँ उसने गौड़के राजाको, बगावत करनेवाली उसकी बौद्ध प्रजाके-

हको वागडका इलाका जागीरमें मिला । उसमें बाँसवाड़ा, सौंथ आदि नगर थे । इस डंबरसिंहके वंशका हाल आगे लिखा जायगा ।

वैरिसिंहका दूसरा नाम वज्रटस्वामी था । उदयपुर (ग्वालियर) की प्रशस्तिमें लिखा है कि उसने अपनी तलवारकी धारसे शत्रुओंको मार कर धारा नामक नगरी पर दखल कर लिया और उसका नाम सार्थक कर दिया।

६–सीयक (दूसरा) ।

यह वैरिसिंहका पुत्र और उत्तराधिकारी था । इसका दूसरा नाम श्रीहर्ष था । नवसाहसाङ्कचरितकी हस्तलिखित प्रतियोंमें इसके नाम श्री-हर्ष या सीयक, तिलकमञ्जरीमें हर्ष और सीयक दोनों, और प्रबन्धचिन्ता-मणिकी भिन्न भिन्न हस्तलिखित प्रतियोंमें श्रीहर्ष, सिंहभट और सिंहदन्त-भट पाठ मिलते हैं । तथा पूर्वोक्त उदयपुरकी प्रशस्तिमें इसका नाम श्री हर्षदेव[1] और अर्थूणाके लेखमें श्रीश्रीहर्षदेव लिखा है[2] ।

विरुद्ध, सहायता दी । इसके बदलेमें उसने अपनी ललिता अपनी नामक कन्या इसे ब्याह दी । इसका राज्य २७ वर्ष निश्चित किया जाता है और यह भी कहा जाता है कि यह उज्जैनमें, ७२ वर्षकी अवस्थामें, मृत्युको प्राप्त हुआ । (पर॰ धार॰ माल॰, पृ॰ ?)

(१) जातस्तस्माद्वैरिसिंहोन्यनाम्ना लोको ब्रूते [वज्रट] स्वामिनं यम् । शत्रोर्वर्गं धारयासेर्निहत्य श्रीमद्धारा सूचिता येन राज्ञा [११]
(–एपि॰ इण्डि॰, जि॰ १, भा॰ ५)

(२) तस्मादभूदरिनरेश्वर(स)र सघा त्व(ना) गज्जद्गजेन्द्ररवसुन्दरतूर्यनादः । श्रीहर्षदेव इति खोट्टिगदेवलक्ष्मी जग्राह यो युधि नगादसमप्रतापः [१२]
(–एपि॰ इण्डि॰, जि॰ १, भाग ५)

(३) श्रीश्रीहर्षनृपस्य नाम्नाने कृत्वा तपश्चर्यं । १०

ऊपर कहे हुए श्रीश्रीहर्ष आदि नामोंके मिलनेसे पाया जाता है कि इस राजाका नाम श्रीहर्ष था, न कि श्रीहर्षसिंह; जैसा कि डाक्टर बूलरका अनुमान था और जिस परसे उन्होंने यह कल्पना की थी कि इस नामके दो टुकड़े होकर प्रत्येक टुकड़ा अलग अलग नाम बन गया होगा। श्रीहर्षका तो श्रीहर्ष ही रहा होगा और सिंहका अपभ्रंश सीयक बन गया होगा। परन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं मालूम होता। इसकी रानीका नाम वड़जा था[1]। इस राजाने रुद्रपाटी देशके राजा तथा हूणोंको जीता।

उदयपुरकी प्रशस्तिके बारहवें श्लोकमें लिखा है कि इसने युद्धमें खोट्टिगदेव[2] राजाकी लक्ष्मी छीन ली[3]। धनपाल कवि अपने पायलच्छी नामक कोशके अन्तमें, श्लोक २७८ में लिखता है कि विक्रम-संवत् १०२९ में जब मालवावालोंके द्वारा मान्यखेट लूटा गया तब धारा-नगरी-निवासी धनपाल कविने अपनी बहिन सुन्दराके लिए यह पुस्तक बनाई। धनपालका यह लिखना श्रीहर्षके उक्त विजयका दूसरा प्रमाण होनेके सिवा उस घटनाका ठीक ठीक समय भी बतलाता है। इसी लड़ाईमें श्रीहर्षका चचेरा भाई, वागड़का राजा कंकदेव, नर्मदाके तट पर, कर्णाटकवालों (राठोड़ों) से लड़ता हुआ मारा गया।

---

(१) लक्ष्मीरधोक्षजस्येव शशिमौलेरिवाम्बिका।
वडजेत्यभवद्देवी कलत्रं यस्य भूरिव ॥ ८६ ॥
(—न० सा० च०, स० ११)

परन्तु इसीका नाम भाटोंकी ख्यातोंमें वाग्देवी और भोजप्रबन्धमें रत्नावली लिखा है।

(२) खोट्टिगदेव दक्षिणका राष्ट्रकूट (राठोड़) राजा था। उसकी राजधानी मान्यखेट (मलखेड़-निजाम राज्यमें) थी।

(३) भाटोंकी पुस्तकोंमें यह भी लिखा है कि इसने युद्धमें ४५ हाथी, २१ रथ, ३०० घोड़े, २०० बैल और नौ लाख दीनार (एक तरहका सिक्का) प्राप्त किये।

खोट्टिगदेवके समयका एक शिलालेख शकसं० ८९३ (वि० सं० १०२८=ईसवी सन् ९७१) आश्विन कृष्णा अमावास्याका मिला है। और, उसके अनुयायी कर्कराजका एक ताम्रपत्र, शक संवत् ८९४ (वि० सं० १०२९ ई० सन् ९७२) आश्विन शुक्ल पूर्णिमाका मिला है। इससे खोट्टिगका देहान्त वि० सं० १०२९ के आश्विन शुक्ल १५ के पहले होना निश्चित है।

७–वाक्पति, दूसरा (मुञ्ज)।

यह सीयक, दूसरे (हर्ष) का ज्येष्ठ पुत्र था। विद्वान् होनेके कारण पण्डितोंमें यह वाक्पतिराजके नामसे प्रसिद्ध था। पुस्तकोंमें इसके वाक्पतिराज और मुञ्ज दोनों नाम मिलते हैं। इसीके वंशज अर्जुनवर्मा ने अमरुशतक पर रसिकसञ्जीवनी नामकी टीका लिखी है। इस शतकके बाईसवें श्लोककी टीका करते समय अर्जुनवर्म्माने मुञ्जका एक श्लोक उद्धृत किया है। वहाँपर उसने लिखा है —“ यथा अस्मत्पूर्वजस्य वाक्पतिराजापरनाम्नो मुञ्जदेवस्य। दासे कृतागसि इत्यादि। ” अर्थात्— जैसे हमारे पूर्वज वाक्पतिराज उपनामवाले मुञ्जदेवका कहा श्लोक, ‘दासे कृतागसि’ इत्यादि है। इसी तरह तिलक-मञ्जरीमें भी उसके मुञ्ज और वाक्पतिराज दोनों नाम मिलते हैं। दशरूपावलोकके कर्ता धनिकने “ प्रणयकुपितां दृष्ट्वा देवीं ” इस श्लोकको एक स्थलपर तो मुञ्जका बनाया हुआ लिखा है और दूसरे स्थलपर वाक्पतिराजका। पिङ्गल-सूत्र वृत्तिके कर्त्ता हलायुधने मुञ्जकी प्रशंसाके तीन श्लोकोंमेंसे दोमें मुञ्ज और तीसरेमें वाक्पतिराज नाम लिखा है। इससे स्पष्ट है कि ये दोनों नाम एक ही पुरुषके थे।

उदयपुर (ग्वालियर) के लेखमें इस राजाका नाम केवल वाक्पतिराज ही मिलता है, जैसा कि उक्त लेखके तरहवें श्लोकमें लिखा है —

(१) Ep Ind Vol.I, p 235

पुनस्तस्य विभूषिताखिलधराभागो गुणैकास्पदं
शौर्याक्रान्तसमस्तशत्रुविभवाधिन्याय्यवित्तोदयः ।
वक्तृत्वोच्चकवित्वतर्ककलनप्रज्ञातशास्त्रागमः
श्रीमद्वाक्पतिराजदेव इति यः सद्भिः सदा कीर्त्यते ॥ १३ ॥

अर्थात्—हर्षका पुत्र बडा तेजस्वी हुआ, जो विद्वान् और कवि होनेसे वाक्पतिराज नामसे प्रसिद्ध हुआ।

परन्तु नागपुरके लेखमें इसी राजाका नाम मुञ्ज लिखा हुआ है। निम्नलिखित श्लोक देखिए:—

तस्माद्वैरिवरूथिनीवहुविधप्रारब्धयुद्धाध्वर—
प्रध्वंसैकपिनाकपाणिरजनि श्रीमुञ्जराजो नृपः।
प्रायः प्राकृतवान्पिपालयिषया यस्य प्रतापानलो-
लोकालोकमहामहीध्रवलयव्याजान्महीमण्डलम् ॥ २३ ॥

इसके ताम्रपत्र इत्यादिमें इसके उत्पलराज, अमोघवर्ष, पृथ्वीवल्लभ आदि और भी उपनाम मिलते हैं।

उदयपुरके पूर्वोक्त लेखसे पाया जाता है कि मुञ्जने कर्णाट[१], लाट[२], केरल[३], और चोल देशोंको अपने अधीन किया; युवराजको जीत कर उसके सेनापतियोंको मारा; और त्रिपुरी पर तलवार उठाई। ये बातें उक्त लेखके चौदहवें और पन्द्रहवें श्लोकोंसे प्रकट होती हैं। देखिए:—

कर्णाटलाटकेरलचोलशिरोरत्नरागिपदकमलः ।
यश्च प्रणयिगणार्थितदाता कल्पद्रुमप्रख्यः ॥ १४ ॥

अर्थात्—जिसने कर्णाट, लाट, केरल और चोल देशोंको जीता और जो कल्पवृक्षके समान दाता हुआ।

युवराजं विजित्याजौ हत्वा तद्वाहिनीपतीन् ।
खड्ग ऊर्ध्वीकृतो येन त्रिपुर्यां विजिगीषुणा ॥ १६ ॥

(१) Ep. Ind, Vol II, P. 184.

(२) माइसोरके पासका देश। (३) नर्मदाके पश्चिममें बड़ोदाके पासका देश। (४) मलवार—पश्चिमीय घाटसे कन्याकुमारी तकका देश।

अर्थात्—जिसने युवराजको जीत कर उसके सेनापतियोंको मारा और त्रिपुरी पर तलवार उठाई।

मुञ्जके समयमें युवराज, दूसरा, चेदीका राजा था। उसकी राजधानी त्रिपुरी (तेवर, जिला जबलपुर) थी। चेदीका राज्य पडोसमें होनेसे, सम्भव है, मुञ्जने हमला करके उसकी राजधानीको लूटा हो। परन्तु चेदीका समग्र राज्य मुञ्जके अधीन कभी नहीं हुआ।

उस समय कर्णाट देश चौलुक्य राजा तैलपके अधीन था, जिसको मुञ्जने कई वार जीता। प्रबन्धचिन्तामणि ग्रन्थके कर्त्ताने भी यह बात लिखी है।

इसी तरह लाट देश पर भी मुञ्जने चढाई की हो तो सम्भव है। बीजापुरके विक्रम-संवत् १०५३ (९९७ ईसवी) के हस्तिकुण्डी (हथुण्डी) के राष्ट्रकूट राजा धवलके लेखसे[1] पाया जाता है कि मुञ्जने मेवाड पर भी चढाई की थी। उसी समय, शायद, मेवाडसे आगे बढ कर वह गुजरातकी तरफ गया हो।

उस समय गुजरातका उत्तरी भाग चौलुक्य मूलराजने अपने अधीन कर लिया था, और लाटदेश चालुक्य राजा बारपके अधीन था। ये दोनों आपसमें लडे भी थे। परन्तु करल और चोल ये दोनों देश, मालवेसे बहुत दूर हैं। इसलिए वहाँवालोंसे मुञ्जकी लडाई वास्तवमें हुई, या केवल प्रशंसाके लिए ही कविने यह बात लिख दी—इसका पूर्ण निश्चय नहीं हो सकता।

प्रबन्धचिन्तामणिके कर्त्ता मेरुतुङ्गने मुञ्जका चरित विस्तारसे लिखा है। उसका संक्षिप्त आशय नीचे दिया जाता है। वह लिखता है —

मालवाके परमार राजा श्रीहर्षको एक दिन घूमते हुए सर नामक घासके वनमें उसी समयका जन्मा हुआ एक बहुत ही सुन्दर बालक मिला।

---

(१) Jour, As Soc., Beng Vol LXII, Part. I P 311

उसे उसने अपनी रानीको सौंप दिया और उसका नाम मुञ्ज रक्खा। इसके बाद उसके सिन्धुल (सिंधुराज) नामक पुत्र हुआ।

राजाने मुञ्जको योग्य देख कर उसे अपने राज्यका मालिक बना दिया और उसके जन्मका सारा हाल सुना कर उससे कहा कि तेरी भक्तिसे प्रसन्न होकर ही मैंने तुझको राज्य दिया है। इसलिए अपने छोटे भाई सिन्धुलके साथ प्रीतिका वर्ताव रखना। परन्तु मुञ्जने राज्यासन पर बैठ कर अपनी आज्ञाके विरुद्ध चलनेके कारण सिन्धुलको राज्यसे निकाल दिया। तब सिन्धुल गुजरातके कासह्रदस्थानमें जा रहा। जब कुछ समय बाद वह मालवेको लौटा तब मुञ्जने उसकी आँखें निकलवा कर उसे काठके पींजडेमें कैद कर दिया। उन्हीं दिनों सिन्धुलके भोज नामक पुत्र पैदा हुआ। उसकी जन्मपत्रिका देख कर ज्योतिषियोंने कहा कि यह ५५ वर्ष, ७ महीने, ३ दिन राज्य करेगा।

यह सुन कर मुञ्जने सोचा कि यह जीता रहेगा तो मेरा पुत्र राज्य न कर सकेगा। तब उसने भोजको मार डालनेकी आज्ञा दे दी। जब वधिक उसको वधस्थान पर ले गये तब उसने कहा कि यह श्लोक मुञ्जको दे देनाः—

> मान्धाता स महीपतिः कृतयुगालङ्कारभूतो गतः
> सेतुर्येन महोदधौ विरचितः क्वासौ दशास्यान्तकः।
> अन्ये चापि युधिष्ठिरप्रभृतयो याता दिवं भूपते।
> नैकेनापि समङ्गता वसुमती, मन्ये त्वया यास्यति॥

अर्थात्—हे राजा! सत्ययुगका वह सर्वश्रेष्ठ मान्धाता भी चला गया; समुद्र पर पुल बाँधनेवाले त्रेतायुगके वे रावणहन्ता भी कहाँके कहाँ गये, और द्वापरके युधिष्ठिर आदि और भी अनेक नृपति स्वर्गगामी हो गये। परन्तु पृथ्वी किसीके साथ नहीं गई। तथापि, मुझे ऐसा मालूम होता है कि अब कलियुगमें वह आपके साथ जरूर चली जायगी।

इस श्लोकको पढते ही मुञ्जको बहुत पश्चात्ताप हुआ और भोजको पीछे बुला कर उसने उसे अपना युवराज बनाया।

कुछ समय बाद तैलङ्ग देशके राजा तैलपने[1] मुञ्जके राज्य पर चढाई की। मुञ्जने उसका सामना किया। उसके प्रधान मन्त्री रुद्रादित्यने, जो उस समय बीमार था, राजाको गोदावरी पार करके आगे न बढ़नेकी कसम दिलाई। परन्तु मुञ्जने पहले १६ दफे तैलप पर विजय प्राप्त किया था, इस कारण घमण्डमें आकर मुञ्ज गोदावरीसे आगे बढ़ गया। वहाँ पर तैलपने छलसे विजय प्राप्त करके मुञ्जको कैद कर लिया और अपनी बहिन मृणालवतीको उसकी सेवामें नियत कर दिया।

कुछ दिनों बाद मुञ्ज और मृणालवती आपसमें प्रेमके बन्धनमें बँध गये। मुञ्जके मन्त्रियोंने वहाँ पहुँच कर उसके रहनेके स्थान तक सुरङ्गका मार्ग बना दिया। उसके बन जाने पर, एक दिन मुञ्जने मृणालवतीसे कहा कि मै इस सुरङ्गके मार्गसे निकलना चाहता हूँ। यदि तू भी मेरे साथ चले तो तुझको अपनी पटरानी बना कर मुझ पर किये गये तेरे इस उपकारका बदला दूँ। परन्तु मृणालवतीने सोचा कि कहीं ऐसा न हो कि मेरी मध्यमावस्थाके कारण यह अपने नगरमें ले जाकर मेरा निरादर करने लगे। अतएव उसने मुञ्जसे कहा कि मैं अपने आभूषणोंका डिब्बा ले आऊँ, तबतक आप ठहरिए। ऐसा कहकर वह सीधी अपने भाईके पास पहुँची और उसने सब वृत्तान्त कह सुनाया। यह सुनकर तैलपने मुञ्जको रस्सीसे बँधवाकर उससे शहरमें घर घर भीख मँगवाई। फिर उसको वधस्थानमें भेजा और कहा कि अब अपने इष्टदेवकी याद कर लो। यह सुनकर मुञ्जने इतना ही उत्तर दिया कि—

लक्ष्मीर्यास्यति गोविन्दे वीरश्रीर्वीरवेश्मनि ।
गते मुञ्जे यशःपुञ्जे निरालम्बा सरस्वती ॥

---

(१) इसकी माता युवराज दूसरेकी बहन थी।

अर्थात्—लक्ष्मी तो विष्णुके पास चली जायगी और वीरता बहादुरोंके पास। परन्तु मुञ्जके मरने पर बेचारी सरस्वती निराधार हो जायगी। उसे कहीं जानेका ठिकाना न रहेगा।

इसके बाद मुञ्जका सिर काट लिया गया। उस सिरको सूली पर, राजमहलके चौकमें, खडा करके तैलपने अपना क्रोध शान्त किया। जब यह समाचार मालवे पहुँचा तब मन्त्रियोंने उसके भतीजे भोजको राजसिंहासन पर बिठा दिया।

प्रबन्धचिन्तामणिकारके लिखे हुए इस वृत्तान्तमें मुञ्जकी उत्पत्तिका, सिन्धुलकी आँखें निकलवाने और लकडीके पींजड़ेमें बन्द करनेका, तथा भोजके मारनेका जो हाल लिखा है वह बिलकुल बनावटी सा मालूम होता है।

नवसाहसाङ्कचरितका कर्त्ता पद्मगुप्त (परिमल), जो मुञ्जके दरबारका मुख्य कवि था और जो सिन्धुराजके समयमें भी जीवित था, अपने काव्यके ग्यारहवें सर्गमें लिखता है:—

> पुर कालक्रमात्तेन प्रस्थितेनाम्बिकापते ।
> मौर्वीव्रणकिणाङ्कस्य पृथ्वी दोष्णि निवेशिता ॥ ९८ ॥

अर्थात्—वाक्पतिराज (मुञ्ज) जब शिवपुरको चला तब राज्यका भार अपने भाई सिन्धुराज पर छोड गया।

इससे साफ पाया जाता है कि दोनों भाइयोंमें वैमनस्य न था, और न सिन्धुराज अन्धा ही था।

इसी तरह धनपाल पण्डित भी, जो श्रीहर्षसे लेकर भोज तक चारों राजाओंके समयमें विद्यमान था, अपनी बनाई तिलकमञ्जरीमें लिखता

(१) किसी किसी हस्तलिखित पुस्तकमें सूलीके स्थानमें लटकाकर फाँसी दी जानेका उल्लेख है।

है कि अपने भतीजे भोज पर मुञ्जकी बहुत प्रीति थी । इसीसे उसने उसको अपना युवराज बनाया था ।

तैलप और उसके सामन्तोंके लेखोंसे भी[1] पाया जाता है कि तैलपने ही मुञ्जको मारा था, जैसा कि प्रबन्धचिन्तामणिकारने लिखा है । परन्तु मेरुतुङ्गने वह वृत्तान्त बडे ही उपहसनीय ढँगसे लिखा है । शायद गुजरात और मालवाके राजाओंमें वंशपरम्परासे शत्रुता रही हो । इसीसे शायद प्रबन्धचिन्तामणिके लेखकने मुञ्जकी मृत्यु आदिका वृत्तान्त उस तरह लिखा हो ।

मालवेके लेखोंमें, नवसाहसाङ्कचरितमें और काश्मीर-निवासी बिल्हण कविके विक्रमाङ्कदेवचरितमें मुञ्जकी मृत्युका कुछ भी हाल नहीं है। सम्भव है, उस दुर्घटनाका कलङ्क छिपानेहीके इरादेसे वह वृत्तान्त न लिखा गया हो ।

संस्कृत-ग्रन्थों और शिला-लेखोंमें प्रायः अच्छी ही बातें प्रकट की जाती हैं । पराजय इत्यादिका उल्लेख छोड दिया जाता है । परन्तु पिछली बातोंका पता विपक्षी और विजयी राजाओंके लेखोंसे लग जाता है ।

मुञ्ज स्वयं विद्वान् था । वह विद्वानोंका बहुत बड़ा आश्रयदाता था । उसके दरबारमें धनपाल, पद्मगुप्त, धनञ्जय, धनिक, हलायुध आदि अनेक विद्वान् थे ।

मुञ्जकी बनाई एक भी पुस्तक अभी तक नहीं मिली । परन्तु हर्षदेवके पुत्र—वाक्पतिराज, मुञ्ज और उत्पल—के नामसे उद्धृत किये गये अनेक श्लोक सुभाषितावलि नामक ग्रन्थ और अलङ्कारशास्त्रकी पुस्तकोंमें मिलते हैं[2] ।

---

(१) J R A.S, Vol IV, p. 12,–J. A., Vol. XXI, p. 168, E G. I, Vol. II., p 218.

(२) Ep Ind, Vol I, P. 227.

यशस्तिलक नामक पुस्तकके अनुसार मुञ्जने बन्दीगृहमें गौडवहो नाम काव्यकी रचना की। परन्तु वास्तवमें यह काव्य कन्नौजके राजा यशोवर्माके सभासद वाक्पतिराजका बनाया हुआ है, जो ईसाकी सातवीं सदीके उत्तरार्धमें विद्यमान था।

पद्मगुप्त लिखता है कि वाक्पतिराज सरस्वतीरूपी कल्पलताकी जड और कवियोंका पक्का मित्र था। विक्रमादित्य और सातवाहनके बाद सरस्वतीने उसीमें विश्राम लिया था।

धनपाल उसको सब विद्याओंका ज्ञाता लिखता है[1]—जैसे 'यः सर्वविद्याब्धिना श्रीमुञ्जेन' इत्यादि।

और भी अनेक विद्वानोंने मुञ्जकी विद्वत्ताकी प्रशंसा की है। 'राघव पाण्डवीय' महाकाव्यका कर्ता, कविराज, अपने काव्यके पहले सर्गके अठारहवें श्लोकमें अपने आश्रयदाता कामदेव राजाकी लक्ष्मी और विद्याकी तुलना, प्रशंसाके लिए, मुञ्जकी लक्ष्मी और विद्यासे करता है[2]।

मुञ्जके राज्यका प्रारम्भ विक्रम-संवत् १०३१ के लगभग हुआ था। क्योंकि उसके जो दो ताम्रपत्र मिले हैं उनमें पहला वि० सं० १०३१, भाद्रपद सुदि १४ (९७४ ईसवी) का है। यह उज्जैनमें लिखा गया था। दूसरा वि० सं० १०३६, कार्तिकसुदि पूर्णिमा (६ नवंबर, ९७९ ईसवी) का है, जो चन्द्रग्रहण-पर्व पर गुणपुरामें लिखा और भगवतपुरामें दिया गया था। इन ताम्रपत्रोंसे मुञ्जका शैव होना सिद्ध होता है।

सुभाषितरत्नसन्दोह नामक ग्रन्थके कर्त्ता जैनपण्डित अमितगतिने जिस समय उक्त ग्रन्थ बनाया उस समय मुञ्ज विद्यमान था। यह उस

(१) तिलकमञ्जरी, पृ० ६।

(२) श्रीविद्याशोभिनो यस्य श्रीमुञ्जादियती भिदा।
धारापतिरसावासीदय तावद्धरापति ॥ १८ ॥ सर्ग १

(३) Ind. Ant., Vol VI p 51 (४) Ind Ant., Vol. XIV, P. 106, Ind Inser No. 9.

ग्रन्थसे पाया जाता है। वह वि० सं० १०५०, पौष-सुदि ५ (९९४ ईसवी) को समाप्त हुआ था।

विक्रम-संवत् १०५७ (१००० ईसवी) के एक लेखसे यादव-राजा भिल्लम दूसरेके द्वारा मुञ्जका परास्त होना प्रकट होता है।

तैलपका देहान्त वि० सं० १०५४ (९९७ ईसवी) में हुआ था। इससे मुञ्जका देहान्त वि० सं० १०५१ (९९४ ईसवी) और वि० सं० १०५४ (९९७ ईसवी) के बीच किसी समय हुआ होगा।

प्रबन्धचिन्तामणिका कर्त्ता लिखता है कि गुजरातका राजा दुर्लभराज वि० सं० १०७७ जेठ सुदि १२ को, अपने भतीजे भीमको राजगद्दी पर बिठा कर, तीर्थसेवाकी इच्छासे, बनारसके लिए चला। मालवेमें पहुँचने पर वहाँके राजा मुञ्जने उसे कहला भेजा कि या तो तुमको छत्र, चामर आदि राजाचिह्न छोड़ कर भिक्षुकके वेशमें जाना होगा या मुझसे लड़ना पड़ेगा। दुर्लभराजने यह सुन कर धर्मकार्यमें विघ्न होता देख भिक्षुकके वेशमें प्रस्थान किया और सारा हाल भीमको लिख भेजा।

द्व्याश्रयकाव्यका टीकाकार लिखता है कि चामुण्डराज बड़ा विषयी था। इससे उसकी बहिन वाचिणी (चाचिणी) देवीने उसको राज्यसे दूर करके उसके पुत्र वल्लभराजको गद्दीपर बिठा दिया। इसीसे विरक्त होकर चामुण्डराज काशी जा रहा था। ऐसे समय मार्गमें उसको मालवाके लोगोंने लूट लिया। इससे वह बहुत क्रुद्ध हुआ और पीछे लौट कर उसने वल्लभराजको मालवेके राजाको दण्ड देनेकी आज्ञा दी।

इन दोनों घटनाओंका अभिप्राय एक ही घटनासे है, परन्तु न तो चामुण्डराजहीके समयमें मुञ्जकी स्थिति होती है और न दुर्लभराजहीके समयमें। क्योंकि मुञ्जका देहान्त वि० सं० १०५१ और १०५४ के बीच हुआ था। पर चामुण्डराजने वि० सं० १०५२ से १०६६ तक और

(१) Ep. Ind., Vol. II., p. 217.

दुर्लभराजने वि० स० १०६६ से १०७८ तक राज्य किया था। अत-एव गुजरातका राजा चामुण्डराजका अपमान करनेवाला माळवेका राजा मुञ्ज नहीं, किन्तु उसका उत्तराधिकारी होना चाहिए।

मुञ्जका प्रधान मन्त्री रुद्रादित्य था। यह उसके लेखँसे पाया जाता है।

जान पडता है कि मुञ्जको मकान तालाब आदि बनवानेका भी शौक था। धारके पासका मुञ्जसागर और मॉडूके जहाज-महलके पासका मुञ्ज तालाब आदि इसीके बनाये हुए खयाल किये जाते है।

अब हम मुञ्जकी सभाके प्रसिद्ध प्रसिद्ध ग्रन्थकर्त्ताओंका उल्लेख करते है। इससे उनकी आपसकी समकालीनताका भी निश्चय हो जायगा।

धनपाल।

यह कवि काश्यपगोत्रीय ब्राह्मण देवर्षिका पौत्र और सर्वदेवका पुत्र था। सर्वदेव विशाला (उज्जेन) में रहता था। वह अच्छा विद्वान् था और जैनोंसे उसका विशेष समागम रहा। धनपालका छोटा भाई जैन हो गया था। परन्तु धनपालको जैनोंसे घृणा थी। इसीस वह उज्जेन छोडकर धारानगरीमें जा रहा। वहाँ उसने वि० स० १०२९ में अमरकोषके ढॅगपर ‘ पाइयलच्छी-नाममाला ’(प्राकृत-लक्ष्मी) नामका प्राकृत कोष अपनी छोटी बहन सुन्दरी (अवन्तिसुन्दरी) के लिए बनाया। उसकी बहन भी विदुषी थी, उसकी बनाई प्राकृत-कविता अलङ्कार-शास्त्रके ग्रन्थों और कोषोंकी टीकाओंमें मिलती है। धनपालने राजा भोजकी आज्ञासे तिलकमञ्जरी नामका गद्यकाव्य रचा। मुञ्जने उसको सरस्वतीकी उपाधि दी थी। इन दो पुस्तकोंके सिवा एक सस्कृत-कोष भी उसने बनाया था। परन्तु वह अब तक नहीं मिला।

---

(१) Ind Ant, Vol. XIV, p 160

प्रबन्धचिन्तामणिकार मेरुतुङ्ग लिखता है कि वह अपने भाई शोभनके उपदेशसे कट्टर जैन हो गया था। उसने जीव-हिंसा रोकनेके लिए भोजको उपदेश दिया था तथा जैन हो जाने पर तिलकमञ्जरीकी रचना की थी। परन्तु तिलकमञ्जरीमें वह अपनेको ब्राह्मण लिखता है। इससे अनुमान होता है कि उक्त पुस्तक लिखी जाने तक वह जैन न हुआ था।

तिलकमञ्जरीकी रचना १०७० के लगभग हुई होगी। उस समय पाइय-लच्छी-नाममाला लिखे उसे ४० वर्ष हो चुके होंगे। यदि पाइय-लच्छी-नाममाला बनानेके समय उसकी उम्र ३० वर्षके लगभग मानी जाय तो तिलकमञ्जरीकी रचनाके समय वह कोई ७० वर्षकी रही होगी। उसके बाद यदि वह जैन हुआ हो तो आश्चर्य्य नहीं।

डाक्टर बूलर और टानी साहब मोजके समय तक धनपालका जीवित रहना नहीं मानते। परन्तु यदि वे उक्त कविकी बनाई तिलकमञ्जरी देखते तो ऐसा कभी न कहते। ऋषभपञ्चाशिका भी इसी कविकी बनाई हुई है।

पद्मगुप्त।

इसका दूसरा नाम परिमल था। मुञ्जके दरबारमें इसे कविराजकी उपाधि थी। तजोरकी एक हस्तलिखित नवसाहसाङ्कचरितकी पुस्तकमें परिमलका नाम कालिदास भी लिखा है। इसने मुञ्जके मरने पर कविता करना छोड़ दिया था। पर फिर सिन्धुराजके कहनेसे नवसाहसाङ्कचरित नामका काव्य बनाया। यह भाव कविने अपनी रचित पुस्तकके प्रथम सर्गके आठवें श्लोकमें व्यक्त किया है—

> दिवं यियासुर्मम वाचिमुद्रामदत्त यां वाक्पतिराजदेव।
> तस्यानुजन्मा कविबांधवस्य भिनत्ति तां सम्प्रति सिन्धुराज॥ ८॥

अर्थात्—वाक्पतिराजने स्वर्ग जाते समय मेरे मुख पर खामोशीकी मुहर लगा दी थी। उसको उसका छोटा भाई सिन्धुराज अब तोड़ रहा है।

इसके बनाये हुए बहुतसे श्लोक काश्मीरके कवि क्षेमेन्द्रने अपनी ' औचित्यविचारचर्चा ' नामकी पुस्तकमें उद्धृत किये हैं। पर वे श्लोक नव-साहसाङ्कचरितमें नहीं हैं। इन श्लोकोंमें मालवेके राजाका प्रताप-वर्णन है। इनमेंसे एक श्लोकमें मालवेके राजाके मारे जानेका वृत्तान्त होनेसे यह पाया जाता है कि वे श्लोक राजा मुञ्जसे ही सम्बन्ध रखते हैं। इससे अनुमान होता है कि उसने मुञ्जकी प्रशंसामें भी किसी काव्यकी रचना की होगी।

इस कविके अनेक श्लोक सुभाषितावलि, शार्ङ्गधरपद्धति, सुवृत्ततिलक आदि ग्रन्थोंमें उद्धृत हैं।

इसकी कविता बहुत ही सरल और मनोहर है। यह कवि नवसाह-साङ्कचरितके प्रत्येक सर्गकी समाप्ति पर अपने पिताका नाम मृगाङ्कगुप्त लिखता है[1]।

धनञ्जय।

इसके पिताका नाम विष्णु था। यह भी मुञ्जकी सभाका कवि था। इसने ' दशरूपक ' नामका ग्रन्थ बनाया।

धनिक।

यह धनञ्जयका भाई था। इसने अपने भाईके रचे हुए दशरूपक पर ' दशरूपावलोक ' नामकी टीका लिखी और ' काव्यनिर्णय ' नामका अलङ्कारग्रन्थ बनाया।

इसका पुत्र वसन्ताचार्य भी विद्वान् था। उसको राजा मुञ्जने तडार नामका गाँव, वि० सं० १०३१ में, दिया था[2]। इस ताम्रपत्रका हम पहले ही जिक्र कर चुके हैं। इससे पाया जाता है कि ये लोग (धनिक और धनञ्जय) अहिच्छत्रसे आकर उज्जेनमें रहे थे।

---

(१) इति श्रीमृगाङ्कसूनोः परिमलापरनाम्नः पद्मगुप्तस्य कृतौ नवसाहसाङ्कचरिते महाकाव्ये..............सर्गः।
(२) Ind. Ant., Vol. VI, p. 51.

हलायुध ।

इसने मुञ्जके समयमें पिङ्गल-छन्द-सूत्र पर 'मृतसञ्जीवनी' टीका लिखी।

इस नामके और दो कवि हुए हैं । डाक्टर भाण्डारकरके मतानुसार कविरहस्य और अभिधान रत्नमालाका कर्ता हलायुध दक्षिणके राष्ट्रकूटोंकी सभामें, वि० स० ८६७ (८१० ईसवी) में विद्यमान था ।

इसी नामका दूसरा कवि बङ्गालके आखिरी हिन्दू-राजा लक्ष्मणसेन की सभामें, वि० स० १२५६ (११९९ ईसवी) में, विद्यमान था। मान्धाताके अमरेश्वर-मन्दिरकी शिवस्तुति शायद इसीकी बनाई हुई है । यह स्तुति वहाँ दीवार पर खुदी हुई है ।

तीसरा हलायुध डाक्टर बूलरके मतानुसार मुञ्जके समयका यही हलायुध है । कथाओंसे ऐसा भी पाया जाता है कि इसने मृतसञ्जीवनी टीकाके सिवा 'राजव्यवहारतत्त्व' नामकी एक कानूनी पुस्तक भी बनाई थी। जिस समय यह मुञ्जका न्यायाधिकारी था उसी समय इसने उसकी रचना की थी।

कोई कोई कहते हैं कि हलायुध नामके १२ कवि हो गये हैं ।

अमितगति ।

यह माथुरसंघका दिगम्बर जैन साधु था । इसने, वि० स० १०५० (९९३ ईसवी) में, राजा मुञ्जके राज्य-कालमें सुभाषितरत्नसन्दोह नामक ग्रन्थ बनाया, और, वि० स० १०७० (१०१३ ईसवी) में धर्मपरीक्षा नामक ग्रन्थकी रचना की। इसके गुरुका नाम माधवसेन था ।

८–सिन्धुराज (सिन्धुल) ।

मुञ्जने अपने जीते जी भोजको युवराज बना लिया था । उसके थोडे ही दिन बाद वह मारा गया । उस समय, भोजके बालक होनेके कारण, उसके पिता सिन्धुराजने राजकार्य्य अपने हाथमें ले लिया । इसीसे

शिलालेखों, ताम्रपत्रों और नवसाहसाङ्कचरितमें यह भी राजा ही लिखा गया है। परन्तु तिलकमञ्जरीका कर्ता, जो मुञ्ज और भोज दोनोंके समयमें विद्यमान था, मुञ्जके बाद भोजको ही राजा मानता है और सिन्धुराजको केवल भोजके पिताके नामसे लिखता है। प्रबन्ध चिन्तामणिकारका भी यही मत है।

इस राजाका नाम शिलालेखों, ताम्रपत्रों, नवसाहसाङ्कचरित और तिलकमञ्जरीमें सिन्धुराज ही मिलता है। परन्तु प्रबन्धचिन्तामणिकार सधिल और भोजप्रबन्धका कर्ता बल्लाल पण्डित सिन्धुल लिखता है। शायद ये इसके लौकिक (प्राकृत) नाम हो। नवसाहसाङ्कचरितमें इसके कुमारनारायण और नवसाहसाङ्क ये दो नाम और भी मिलते है। यह बडा ही वीर पुरुष था। इसके समयमें परमारोंका राज्य विशेष उन्नति पर था। इसने हूण, कोशल, वागड, लाट और मुरलवालोंको जीता था। इस प्रकारके अनेक नवीन साहस करनेके कारण ही वह नवसाहसाङ्क कहलाया। उदयपुरकी प्रशस्तिमें लिखा है —

तस्यानुजो निर्जितहूणराज श्रीसिन्धुराजो विजयार्जितश्री।

अर्थात्—उस मुञ्जका छोटा भाई सिन्धुराज हूणोंको जीतने वाला हुआ।

हूण-क्षत्रियोंका जिक्र[1] कई जगह राजपूतानेकी ३६ जातियोंमें किया गया है।

पद्मगुप्त (परिमल) ने नवसाहसाङ्कचरितमें, जिसे उसने वि० स० १०६० के लगभग बनाया था, सिन्धुराजका जीवनचरित इस तरह लिखा है:—

पहले सर्गमें—कविने शिवस्तुतिके बाद मुञ्ज और सिन्धुराजको,

(१) Rajastan, P 76

उनकी गुणग्राहकताके लिए धन्यवाद देकर, उज्जयिनी और धाराका वर्णन किया है।

दूसरे सर्गमें—अपने मन्त्री रमाङ्गदके साथ सिन्धुराजका विन्ध्याचलपर शिकारके लिए जाना, वहाँ पर सोनेकी जंजीर गलेमें धारण किये हुए हरिणको देखकर आश्चर्य्यपूर्वक राजाका उसको बाण मारना और बाणसहित हरिणका भाग जाना लिखा है।

तीसरे सर्गमें—बहुत ढूँढनेपर भी उस हरिणका न मिलना; उसीकी खोजमें फिरते हुए राजाका चोंचमें हार लिए हुए एक हंसको देखना, उस हंसका उस हारको राजाके पैरोंपर गिरा देना, राजाका उसपर नागराजकन्या शशिप्रभाका नाम लिखा हुआ देखना, उस पर आसक्त होना और उसे ढूँढनेका इरादा करना, है।

चौथे और पाँचवे सर्गमें—हारकी खोजमें शशिप्रभाकी सहेली पाटलाका आना, राजासे मिलना, कमलनाल समझकर हार लेकर हंसका उड़ जाना आदि राजासे कहना, उसे नर्मदा तटपर जानेकी सलाह देना और, इसी समय, उधर नर्मदा तटपर बैठी हुई शशिप्रभाके पास उस घायल हरिणका आना, शशिप्रभाका हरिणके शरीरसे तीर खींचना, उसपर नवसाहसाङ्क नाम पढकर राजापर आसक्त होना वर्णित है।

छठे सर्गमें—शशिप्रभाका नवसाहसाङ्कसे मिलनेकी युक्ति सोचना है।

सातवें सर्गमें—रमाङ्गदसहित राजाका नर्मदापर पहुँचना, शशिप्रभासे मिलना और दोनोंका पारस्परिक प्रेम-प्रकटीकरण वर्णित है।

आठवें सर्गमें—इन लोगोंके आपसमें बातें करते समय तूफानका आना, पाटलासहित शशिप्रभाको उड़ाकर पातालकी भोगवती नगरीमें ले जाना, राजाको आकाशवाणीका (कि जो इस कन्याके पिताके प्रणको पूरा करेगा उसीके साथ इसका विवाह होगा) सुनाई देना। एक सारसकी सलाहसे मंत्रीसहित राजाका नर्मदामें घुसना, वहाँ एक

गुफा द्वारा एक महलमें पहुँचना और पिंजरेमें लटकते हुए तोते द्वारा रूपवती स्त्रीके वेशमें नर्मदाको पहचान कर उससे मिलना वर्णित है।

नवें सर्गमें—राजाने नर्मदासे यह सुना कि रत्नावती नगरी यहाँसे १०० कोस दूर है। वज्रांकुश वहाँका स्वामी है। उसके महलके पासके तालावसे सुवर्ण-कमल लाकर जो कोई शशिप्रभाके कानोंमें पहनावेगा उसीको नागराज अपनी कन्या देगा। इस पर राजाने वंकु मुनिके पास जाकर उनसे सहायता माँगी।

दसवें सर्गमें—मन्त्रीका राजाको समझाना, राजाका रत्नचूड नामक नागकुमार द्वारा, जो शापसे तोता हो गया था, शशिप्रभाको सन्देश भेजना और नागकुमारका शापसे छूटना लिखा है।

ग्यारहवें सर्गमें—राजाका वंकु मुनिके आश्रममें जाना, रामाङ्गद द्वारा परमारोंकी उत्पत्तिका वर्णन और उनकी वंशावली है।

बारहवें सर्गमें—स्वप्नमें राजाका शशिप्रभासे मिलना वर्णित है।

तेरहवें सर्गमें—राजाका वंकु मुनिसे बातचीत करना, विद्याधरराजके लड़के शशिखण्डको शापसे छुडाना; विद्याधरोंकी सेनाकी सहायता पाना और राजाका वज्रांकुश पर चढाई करना लिखा है।

चौदहवें सर्गमें—राजाका विद्याधर-सैन्यसहित आकाश मार्गसे रवाना होना, रमाङ्गदका वन आदिकी शोभा वर्णन करना और पाताल-गङ्गाके तीर पर सेनासहित निवास करना वर्णित है।

पन्द्रहवें सर्गमें—पाताल-गङ्गामें जलक्रीडाका वर्णन है।

सोलहवें सर्गमें—शशिप्रभाका पत्र लेकर राजाके पास पाटलाका आना; राजाका उत्तर देना, रत्नचूडका मिलना, रमाङ्गदको वज्रांकुशके पास सुवर्ण-कमल माँगने भेजना, उसका इनकार करना, रमाङ्गदका वापस आना और युद्धकी तैयारी करना है।

सत्रहवें सर्गमें—विद्याधर-सैन्यसहित नवसाहसाङ्कका वज्राङ्कुशके साथ युद्ध-वर्णन, राजाके द्वारा वज्राङ्कुशका मारा जाना, उसकी जगह रत्नावतीका राज्य नागकुमार रत्नचूडको देना और सुवर्ण-कमल लेकर भोगवती नगरीमें जाना वर्णित है।

अठारहवें सर्गमें—राजाका नागराजसे मिलना, हाटकेश्वर महादेवके दर्शन करना, मृगका शापसे मुक्त होकर पुरुषरूप होना और अपनको परमार श्रीहर्षदेवका द्वारपाल बताना, राजाका शशिप्रभाके साथ विवाह, नागराजका राजाको एक स्फटिकशिवलिङ्ग देना, राजाका अपने नगरको लौटना, उज्जयिनीमें महाकालेश्वरके दर्शन करना, धारा नगरीमें जाकर नागराजके दिये हुए शिवलिङ्गका स्थापन करना, विद्याधर आदिकोंका जाना और राजाका राज्य भार अपने हाथमें लेना वर्णित है।

इस कथामें सत्य और असत्यका निर्णय करना बहुत ही कठिन है। परन्तु जहाँ तक अनुमान किया जा सकता है यह नागकन्या नाग वंशी क्षत्रियोंकी कन्या थी। ये क्षत्रिय पूर्व समयमें राजपूताना और मध्यभारतमें रहते थे। यह घटना भी हुशंगाबादके निकटकी प्रतीत होती है। इससे सम्बन्ध रखनेवाले विद्याधर, नाग और राक्षस आदि विन्ध्यपर्वतनिवासी क्षत्रिय तथा अन्य पहाडी लोग अनुमान किये जा सकते ह। नागनगरसे नागपुरका भी बोध हो सकता है।

डाक्टर बूलरके मतानुसार नवसाहसाङ्कचरितका रचना-काल १००५ ईसवी और भोजके गद्दी पर बैठनेका समय १०१० ईसवी है।

बल्लाल पण्डितने अपने भोजप्रबन्धमें लिखा है कि सिन्धुराजके मरनेके समय भोज पाँच वर्षका था। इससे सिन्धुराजने अपने छोटे भाई मुञ्जको राज्य देकर, भोजको उसकी गोदमें रख दिया। परन्तु यह लेख किसी प्रकार विश्वासयोग्य नहीं। क्योंकि सिन्धुराज मुञ्जका छोटा भाई था।

भोजके बालक होनेके कारण ही वह राज्यासन पर बैठा था। यह सिद्ध हो चुका है।

इसीके समयमें अणहिलवाडाके चालुक्य चामुण्डराजने अपने पुत्रको राज्य देकर तीर्थयात्राका इरादा किया था और मालवेमें पहुँचने पर राज्यचिह्न छीननेकी घटना हुई थी। उसके बाद बल्लभराजने अपने पिताके आज्ञानुसार सिन्धुराज पर चढाई की थी। परन्तु मार्गमें चेचक-की बीमारीसे वह मर गया। इस चढाईका जिक्र बडनगरकी प्रशस्तिमें है[१]। प्रबन्धकारोंसे भी इस आपसकी लडाई (९९७–१०१० ईसवी) का पता लगता है, जो सिन्धुराज तथा चालुक्य चामुण्डराज और बल्लभराजके साथ हुई थी।

इसके जीते हुए देशोंमेंसे कोशल और दक्षिण कोशल (मध्यप्रान्त और बराडका कुछ भाग) होना चाहिए, क्योंकि वे मालवेके निकट थे। इसी तरह वागडदेश राजपूतानेका वागड होना चाहिए, न कि कच्छका। यह वागड अधिकतर डूँगरपुरके अन्तर्गत है, उसका कुछ भाग बाँस-वाडेमें भी है।

यद्यपि मुरल अर्थात् दक्षिणका केरल देश मालवेसे बहुत दूर है तथापि सम्भव है कि सिन्धुराजने मुञ्जका बदला लेनेके लिए चालुक्य-राज्य पर चढाई की हो और केरल तक अपना दखल कर लिया हो। इसके बाद भोजने भी तो उस पर चढाई की थी।

यह राजा शैव मालूम होता है।

इसके मन्त्री रमाङ्गदका दूसरा नाम यशोभट था।

९–भोज।

इस वंशमें भोज सबसे प्रतापी राजा हुआ। भारतके प्राचीन इति-हासमें सिवा विक्रमादित्यके इतनी प्रसिद्धि किसी राजाने नहीं प्राप्त की।

(१) Ep Ind 1, 33

यह इतना विद्यानुरागी और विद्वानोंका सम्मान करनेवाला था कि इस विषयकी सैकडों कथायें अबतक प्रसिद्ध हैं।

राज्यासन पर बैठनेके समय भोज कोई १५ वर्षका था। उसने उज्जैनको छोड़ धाराको अपनी राजधानी बनाया। बहुधा वह वहीं रहा करता था। इसीसे उसकी उपाधि धारेश्वर हुई।

भोजका समय हिन्दुस्तानमें विशेष महत्त्वका था, क्योंकि १०११ से १०३० ईसवी तक महमूद गजनवीने भारत पर पिछले ६ हमले किये। मथुरा, सोमनाथ और कालिंजर भी उसके हस्तगत हो गये।

भोजके विषयमें उदयपुर (ग्वालियर) की प्रशस्तिके सत्रहवें श्लोकमें लिखा है:—

आकैलासान्मलयगिरितोऽस्तोदयाद्रिद्वयाद्वा
भुक्ता पृथ्वी पृथुनरपतेस्तुल्यरूपेण येन।
उन्मूल्योर्वीभरगुरु [ग] णा लीलया चापयज्या
क्षिप्ता दिक्षु क्षितिरपि परां प्रीतिमापादिता च ॥

अर्थात् उसने कैलास (हिमालय) से लगाकर मलयपर्वत (मलबार) तकके देशों पर राज्य किया। यह केवल कवि-कल्पना और अत्युक्तिमात्र है। इसमें सन्देह नहीं कि भोजका प्रताप बहुत बढा हुआ था। किन्तु उसका राज्य मुञ्जके राज्यसे अधिक विस्तृत था, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। नर्मदाके उत्तरमें, उसके राज्यमें थोडा बहुत वही भाग था जो इस समय बुंदेलखण्ड और बघेलखण्डको छोड कर मध्य भारतमें शामिल है। दक्षिणमें उसका राज्य किसी समय गोदावरीके किनारे तक पहुँच गया जान पडता है। नर्मदा और गोदावरीके बीचके प्रदेशके लिए परमारों और चौलुक्योंमें बहुधा विरोध रहता था। इसी प्रशस्तिके उन्नीसवें श्लोकमें लिखा है —

चेदीश्वरेन्द्ररथ [तोग्ग] ल [भीमसु] ख्यान्
कर्णाटलाटपतिगुर्जरराट्तुरुष्कान्।

यद्भृत्यमात्रविजितानवलो [क्य] मौला
दोष्णां मलानि कथयन्ति न [योद्‌धृ] लो [कान्] ॥

अर्थात् भोजने चेदीश्वर, इन्द्ररथ, भीम, तोग्गल, कर्णाट और लाटके राजा, गुजरातके राजा और तुरुष्कोंको जीता। भोजका समकालीन चेदीका राजा, १०३८ से १०४२ ईसवी तक, कलचुरी गाङ्गेयदेव था। उसके बाद, १०४२ से ११२२ तक, उसका लड़का और उत्तराधिकारी कर्णदेव था, जिसकी राजधानी त्रिपुरी थी। इन्द्ररथ और तोग्गलका कुछ पता नहीं चलता कि वे कौन थे। भीम अणहिलवाड़ेका चौलुक्य भीमदेव (प्रथम) था, जिसका समय १०२२ से १०६३ ईसवी है। कर्णाटका राजा जयसिंह दूसरा था, जो १०१८ से १०४० तक विद्यमान था। उसका उत्तराधिकारी सोमेश्वर (प्रथम) १०४० से १०६९ तक रहा। तुरुष्कोंसे मुसलमानोंका बोध होता है, क्योंकि बहुत-से दूसरे लेखोंमें भी यह शब्द उन्हींके लिए प्रयोग किया गया है।

राजवल्लभने अपने भोजचरितमें लिखा है कि जब भोजने राज्यकार्य ग्रहण कर लिया तब मुञ्जकी स्त्री कुसुमवती (तैलपकी बहिन) के प्रबन्धसे भोजके सामने एक नाटक खेला गया। उसमें तैलप द्वारा मुञ्जका वध दिखलाया गया। उसे देखकर भोज बहुत ही क्रुद्ध हुआ और कुसुमवतीको मरदानी पोशाकमें अपने साथ लेकर तैलप पर उसने चढ़ाई की और उसे कैद करके मार भी डाला। इसके बाद कुसुमवतीने अपनी शेष आयु सरस्वती नदीके तीर पर बौद्ध संन्यासिनके वेशमें बिताई।

यह कथा कवि-कल्पित जान पड़ती है, क्योंकि मुञ्जको मारनेके बाद तैलप ९९७ ई० मेंही मर गया था, जब भोज बहुत छोटा था। यह तैलपका पौत्र, विक्रमादित्य पञ्चम (कल्याणका राजा) हो सकता है। उसका राजत्वकाल १००९ से १०१८ तक था। सम्भव है, उस पर चढ़ाई करके भोजने उसे पकड़ लिया हो और मुञ्जका बदला लेनेके लिए उसे

मार डाला हो। विक्रमादित्यके भाई और उत्तराधिकारी जयसिंह दूसरेके शक संवत् ९४१ (वि० सं० १०७६) के, एक लेखसे इसका प्रमाण मिलता है। उसमें लिखा है कि जयसिंहने भोजको उसके सहायकों सहित भगा दिया। यह भी लिखा है कि जयसिंह भोजरूपी कमलके लिए चन्द्रसमान था।

काश्मीरी पण्डित बिल्हणने अपने 'विक्रमाङ्कदेवचरित' काव्यके प्रथम सर्गके ९०–९५ श्लोकोंमें चालुक्य जयसिंहके पुत्र सोमेश्वर (आहवमल्ल) द्वारा भोजका भगाया जाना आदि लिखा है। इससे अनुमान होता है कि भोजने जयसिंह पर शायद विजय पाई हो। उसीका बदला लेनेके लिए सोमेश्वरने शायद भोज पर चढ़ाई की हो। परन्तु यह बात दक्षिणके किसी लेखमें नहीं मिलती।

अप्पय्य दीक्षितने अपने अलङ्कार-ग्रन्थ कुवलयानन्दमें, अप्रस्तुतप्रशंसाके उदाहरणमें, निम्नलिखित श्लोक दिया है —

> कालिन्दी, ब्रूहि कुम्भोद्भव, जलधिरहं, नाम गृह्णासि कस्मा
> च्छत्रोर्मे, नर्मदाहं, त्वमपि वदसि मे नामक स्मात्सपत्न्या।
> मालिन्यं तर्हि कस्मादनुभवसि, मिलत्कज्जलैर्मालवीनां
> नेत्राम्भोभिः, किमासां समजनि, कुपित कुन्तलक्षोणिपाल ॥

इसमें समुद्रने नर्मदासे उसके जलके काले होनेका कारण पूछा है। उत्तरमें नर्मदाने कहा है कि कुन्तलेश्वरके हमलेसे मरे हुए मालवेवालोंकी स्त्रियोंके कज्जलमिश्रित आँसुओंके जलमें मिलनेसे मेरा जल काला हो गया है।

इससे भी सूचित होता है कि कुन्तलके राजाने मालवेपर चढ़ाई की थी। परन्तु किसीका नाम न होनेसे यह युद्ध किसके समयमें हुआ इसका पता नहीं लगता। आश्चर्य्य नहीं जो यह सोमेश्वरका ही वर्णन हो।

अन्तमें भोजने चौलुक्यों पर विजय पाई, यह बात उदयपुर (ग्वालियर) की प्रशस्तिसे प्रकट होती है।

प्रबन्धचिन्तामणिकारने लिखा है कि भोजने गुजरात-अनहिलवाड़ाके राजा भीमकी राजधानी पर जब भीम सिन्धु देश जीतनेमें लगा था, अपने जैन सेनपाति कुलचन्द्रको सेनासहित हमला करने भेजा। उसकी वहाँ जीत हुई। वह लिखित विजयपत्र लेकर धाराको लौटा। भोज उससे सादर मिला। परन्तु गुजरातके प्रबन्ध-लेखकोंने इसका वर्णन नहीं किया।

कुमारपालकी वड़नगरवाली प्रशस्तिमें लिखा है कि एक बार मालवेकी राजधानी धारा गुजरातके सवारों द्वारा छीन ली गई थी। सोमेश्वरकी कीर्ति-कौमुदीमें भी लिखा है कि चौलुक्य भीमदेव (प्रथम) ने भोजका पराजय करके उसे पकड लिया था। परन्तु उसके गुणोंका खयाल करके उसे छोड़ दिया। सम्भव है, इसी अपमानका बदला लेनेके लिए भोजने कुलचन्द्रकोससैन्य भेजा हो। पीछेसे इन दोनोंमें मेल हो गया था। यहाँतक कि भीमने डामर (दामोदर) को राजदूत (Ambassador) बनाकर भोजके दरबारमें भेजा था।

प्रबन्धचिन्तामणिसे यह भी ज्ञात होता है कि जब भीमको भोजसे बदला लेनेका कोई और उपाय न सूझा तब आधा राज्य देनेका वादा करके उसने कर्णको मिला लिया। फिर दोनोंने मिलकर भोजपर चढाई की और धाराको बरबाद करके कल ली। परन्तु इस चढाईमें अधिक लाभ कर्णहीने उठाया।

मदनकी बनाई 'पारिजातमञ्जरी' नामक नाटिकासे, जो धाराके राजा अर्जुनवर्माके समयमें लिखी गई थी, प्रतीत होता है कि भोजने युवराज (दूसरे) के पौत्र गाङ्गेयदेवको, जो प्रतापी होनेके कारण विक्रमादित्य कहलाता था, हराया।

गाङ्गेयदेवका ही उत्तराधिकारी और पुत्र कर्णदेव था, जो इस वंशमें बड़ा प्रतापी राजा हुआ। इसीने १०५५ ई० के लगभग भीमसे मिलकर भोजपर चढ़ाई की। इसका हाल कीर्तिकौमुदी, सुकृतसङ्कीर्तन और कई एक प्रशस्तियोंमें मिलता है। परन्तु द्व्याश्रयकाव्यके कर्त्ता हेमचन्द्रने भीमके पराजय आदिका वर्णन नहीं लिखा।

तुरुष्कोंके साथ भोजकी लड़ाईसे मतलब मुसलमानोंके विरुद्ध लड़ाईसे है।

कप्तान सी० ई० लूअर्ड, एम० ए० और पण्डित काशिनाथ कृष्ण लेलेने अपनी पुस्तकमें[1] तुरुष्कोंकी लड़ाईसे महमूद गजनवीके विरुद्ध लाहोरके राजा जयपालकी मदद करनेका तात्पर्य निकाला है। परन्तु हम इससे सहमत नहीं। क्यों कि प्रथम तो कीलहार्नके मतानुसार उस-समय भोजका होना ही साबित नहीं होता। दूसरे फरिश्ताने लिखा है कि केवल दिल्ली, अजमेर, कालिञ्जर और कन्नोजके राजाओंहीने जयपालको मदद दी थी। आगे चलकर इसी ग्रन्थकारने यह भी लिखा है कि महमूद गजनवीसे जयपालके लड़के आनन्दपालकी लड़ाई ३९९ हिजरी (वि० स० १०६६, ई० स० १००९) में हुई थी। उसमें उज्जेनके राजाने आनन्दपालकी मदद की थी। सो यदि भोजका राजत्वकाल १००० ई० से मानें, जैसा कि आगे चलकर हम लिखेंगे, तो उज्जेनके इस राजासे भोजका मतलब निकल सकता है।

तबकाते अकबरीमें लिखा है कि जब महमूद ४१७ हिजरी (ई० स० १०२४) में सोमनाथसे वापिस आता था तब उसने सुना कि परमदेव नामका राजा उससे लड़नेको उद्यत है। परन्तु महमूदने उससे लड़ना उचित न समझा। अतएव वह सिन्धके मार्गसे मुल्तानकी तरफ चला गया। इसपर भी पूर्वोक्त कप्तान और लेले महाशयोंने लिखा है

(१) The Parmars of Dhar and Malwa.

कि " यह राजा भोज ही था। बम्बई गैजेटियरमें जो यह लिखा है कि यह राजा आबूका परमार था सो ठीक नहीं। क्योंकि उस समय आबू पर धन्धुकका अधिकार था, जो अणहिलवाड़ेके भीमदेवका एक छोटा सामन्त था। " परन्तु हमारा अनुमान है कि यह राजा भोज नहीं, किन्तु पूर्वोक्त भीम ही था। क्योंकि फरिश्ता आदि फारसी तवारीखोंमें इसको कहीं परमदेव और कहीं बरमदेवके नामसे लिखा है, जो भीमदेवका ही अपभ्रंश हो सकता है। उनमें यह भी लिखा है कि यह गुजरात-नहरवालेका राजा था। इससे भी इसीका बोध होता है। बम्बई गैजेटियरसे भी इसीका बोध होता है। क्योंकि उस समय आबू और गुजरात दोनों पर इसीका अधिकार था।

गोविन्दचन्द्रके वि० सं० ११६१, पौष शुक्ल ५, रविवार, के दानपत्रमें यह श्लोक है:—

याते श्रीभोजभूपे विबु(बु)धवरवधूनेत्रसीमातिथित्वं
श्रीकर्णे कीर्तिशेषं गतवति च नृपे क्ष्मात्यये जायमाने ।
भर्तारं यां व (ध)रित्री त्रिदिवविभुनिभं प्रीतियोगादुपेता
त्राता विश्वासपूर्वं समभवदिह स क्ष्मापतिश्चन्द्रदेव ॥ ३ ॥

अर्थात् भोज और कर्णके मरनेके बाद जो पृथ्वी पर गड़बड़ मची थी उसे कन्नौजके राजा चन्द्रदेव (गहड़वाल) ने मिटाई। इस चन्द्रदेवका समय परमार लक्ष्मदेवके राज्यकालमें निश्चित है। हमारी समझमें इस श्लोकसे यह सूचित होता है कि चन्द्रदेवका प्रताप भोज और कर्णके बाद चमका, उनके समयमें नहीं।

भोज बड़ा विद्वान्, दानी और विद्वानोंका आश्रयदाता था। उदयपुर (ग्वालियर) की प्रशस्तिके अठारवें श्लोकसे यह बात प्रकट होती है—

साधितं विहितं दत्तं ज्ञातं तद्यन्न केनचित्।
किमन्यत्कविराजस्य श्रीभोजस्य प्रशस्यते ॥

(१) In. An., Vol. XIV, P. 103, J. B. A., XXVII, P. 220.

अर्थात् कविराज भोजकी कहाँ तक प्रशंसा की जाय। उसके दान, ज्ञान और कार्योंकी कोई बराबरी नहीं कर सकता।

कल्हण-कृत राजतरङ्गिणीमें भी, राजा कलशके वृत्तान्तमें, भोजके दान और विद्वत्ताकी प्रशंसा है। इसका वर्णन हम भोजका राजत्वकाल निश्चय करते समय करेंगे।

काव्यप्रकाशमें मम्मटने भी, उदात्तालङ्कारके उदाहरणमें, भोजके दानकी प्रशंसाका बोधक एक श्लोक उद्घृत किया है। उसका चतुर्थपाद यह है:—

यद्विद्वद्भवनेषु भोजनृपतेस्तत्त्यागलीलायितम्।

अर्थात् भोजके आश्रित विद्वानोंके घरोंमें जो ऐश्वर्य्य देखा जाता है वह सब भोजहींके दानकी लीला है।

गिरनारमें मिली हुई वस्तुपालकी प्रशस्तिमें भी भोजकी दानशीलताकी प्रशंसाका उल्लेख है। प्रबन्धकारोंने तो इसकी बहुत ही प्रशंसा की है।

यह राजा शैव था, जैसा कि उदयपुरकी प्रशस्तिके २१ वें श्लोकसे ज्ञात होता है। यथा.—

तत्रादित्यप्रतापे गतवति सदनं स्वर्गिणां भर्गभक्ते।
व्याप्ता धारेव धात्री रिपुतिमिरभरैर्म्मौललोकस्तदाभूत्॥

अर्थात् उस तेजस्वी शिवभक्तके स्वर्ग जाने पर धारा नगरीकी तरह तमाम पृथ्वी शत्रुरूपी अन्धकारसे व्याप्त होगई।

भोज दूसरे धर्मके विद्वानोंका भी सम्मान करता था। जैनों और हिन्दुओंके शास्त्रार्थका बडा अनुरागी था। श्रवणबेलगुल नामक स्थानमें कनारी भाषामें एक शिलालेख बिना सन्-सवत्का मिला है। उसे डाक्टर राइस ११९५ ईसवीका बताते हैं। उसमें लिखा है कि भोजने प्रभाचन्द्र जैनाचार्यके पैर पूजे थे।

दूबकुण्ड नामक स्थानके कच्छपघाटवंशसम्बन्धी एक लेखमें लिखा है कि भोजके सामने सभामें शान्तिसेन नामक जैनने सैकडों विद्वानोंको हराया था। क्योंकि उन्होंने उसके पहले अम्बरसेन आदि जैनोंका सामना किया था। इन बातोंसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि भोज सभी धर्मोके विद्वानोंका सम्मान करता था।

धाराके अबदुल्लाशाह चङ्गालकी कब्रके ८५९ हिजरी (१४५६ ई०) के लेखमें लिखा है कि भोज मुसलमान होगया था और उसने अपना नाम अबदुल्ला रक्खा था। परन्तु यह असम्भवसा प्रतीत होता है। ऐसा विद्वान्, धार्मिक और प्रतापी राजा मुसलमान नहीं हो सकता। उस समय मुसलमानोंका आधिपत्य केवल उत्तरी हिन्दुस्थानमें था। मध्यभारतमें उनका दौरदौरा न था। फिर भोज कैसे मुसलमान हो सकता था? गुलदस्ते अब्र नामक उर्दूकी एक छोटीसी पुस्तकमें लिखा है कि अबदुल्लाशाह फकीरकी करामातोंको देख कर भोजने मुसलमानी धर्म ग्रहण कर लिया था। पर यह केवल मुल्लाओंकी कपोलकल्पना है। क्योंकि इस विषयका कोई प्रमाण फारसी तवारीखोंमें नहीं मिलता।

भोज विद्वानोंमें कविराजके नामसे प्रसिद्ध था। उसकी लिखी हुई भिन्न भिन्न विषयोंपर अनेक पुस्तकें बताइ जाती है। परन्तु उनमेंसे कौन कौनसी वास्तवमें भोजकी बनाई हुई है, इसका पता लगाना कठिन है।

भोजके नामसे प्रसिद्ध पुस्तकोंकी सूची नीचे दी जाती है —

ज्योतिष। राजमृगाङ्क, राजमार्तण्ड, विद्वज्जनवल्लभ, प्रश्नज्ञान और आदित्यप्रतापसिद्धान्त।

अलङ्कार। सरस्वतीकण्ठाभरण।

योगशास्त्र। राजमार्तण्ड (पतञ्जलियोगसूत्रकी टीका)।

धर्मशास्त्र। पूर्तमार्तण्ड, दण्डनीति, व्यवहारसमुच्चय और चारुचर्या।

शिल्प। समराङ्गणसूत्रधार।

काव्य। चम्पूरामायण या भोजचम्पूका कुछ भाग, महाकालीविजय, सुक्तिकल्पतरु, विद्याविनोद और शृङ्गारमञ्जरी (गद्य)।

प्राकृतकाव्य। दो प्राकृत-काव्य, जो अभी कुछ ही समय हुआ धारामें मिले हैं।

व्याकरण। प्राकृत-व्याकरण।

वैद्यक। विश्रान्तविद्याविनोद और आयुर्वेदसर्वस्व।

शैवमत। तत्त्वप्रकाश और शिवतत्त्वरत्नकलिका।

संस्कृतकोष। नाममाला।

शालिहोत्र, शब्दानुशासन, सिद्धान्तसंग्रह और सुभाषितप्रबन्ध।

ऑफरेक्टस (Aufrechts) की बड़ी सूची (Catalogus Catologorum) में भोजके बनाये हुए २३ ग्रन्थोंके नाम हैं।

इन पुस्तकोंमेंसे कितनी भोजकी बनाई हुई हैं, यह तो ठीक ठीक नहीं मालूम, परन्तु धर्मशास्त्र, ज्योतिष, वैद्यक, कोष, व्याकरण आदिके कई लेखकोंने भोजके नामसे प्रसिद्ध ग्रन्थोंसे श्लोक उद्धृत किये हैं। इससे प्रकट होता है कि भोजने अवश्य ही इन विषयों पर ग्रन्थ लिखे थे।

ऑफरेक्टसने लिखा है कि बौद्ध लेखक दशबलने अपने बनाये प्रायश्चित्तविवेकमें और विज्ञानेश्वरने मिताक्षरामें भोजको धर्मशास्त्रका लेखक कहा है। भावप्रकाश और माधवकृत रोगविनिश्चयमें भोज आयुर्वेदसम्बन्धी ग्रन्थोंका रचयिता माना गया है। केशवार्कने भोजको ज्योतिषका लेखक बताया है। क्षीरस्वामी, सायन और महीपने भोजको एक व्याकरणग्रन्थका कर्ता और कोषकार कहा है। चित्तप, दिवेश्वर, विनायक, शङ्करसरस्वती और कुटुम्बदुहितृने इसे एक श्रेष्ठ कवि स्वीकार किया है। विद्वानोंमें यह भी प्रसिद्धि है कि हनुमन्नाटक पहले शिलाओं पर खुदा हुआ था और समुद्रमें फेंक दिया गया था। उसको भोजने ही समुद्रसे निकलवाया था।

भोजकी बनाई छपी हुई पुस्तकोंमें सरस्वतीकण्ठाभरण साहित्यकी प्रसिद्ध पुस्तक है। उसमें पाँच परिच्छेद हैं। उस पर पण्डित रामेश्वर भट्टने टीका लिखी है। भोजकी चम्पू-रामायण पण्डित रामचन्द्र बुधेन्द्र-की टीकासहित छपी है। पुस्तककी समाप्ति पर कर्ताका नाम विदर्भराज लिखा है। परन्तु रामचन्द्र बुधेन्द्र और लक्ष्मणसूरि उसको भोजकी बनाई हुई लिखते हैं।

भोजकी सभामें अनेक विद्वान् थे। भोजप्रबन्ध और प्रबन्धचिन्तामणि आदिमें कालिदास, वररुचि, सुबन्धु, बाण, अमर, रामदेव, हरिवंश, शङ्कर, कलिङ्ग, कर्पूर, विनायक, मदन, विद्याविनोद, कोकिल, तारेन्द्र, राजशेखर, माघ, धनपाल, सीता, पण्डिता, मयूर, मानतुङ्ग आदि विद्वानोंका भोजहीकी सभामें रहना लिखा है। परन्तु इनमेंसे बहुतसे विद्वान् भोजसे पहले हो गये थे। इस लिए इस नामावली पर हम विश्वास नहीं कर सकते।

मुञ्ज और सिन्धुराजके समयके कुछ विद्वान् भोजके समय तक विद्यमान थे। इनमेंसे एक धनपाल था। उसका छोटा भाई शोभन जैन हो गया। यह सुन कर भोजने कुछ समय तक जैनोंका धारामें आना बन्द कर दिया। परन्तु शोभनने धनपालको भी जैन कर लिया। धन-पालकी रची तिलकमञ्जरीमें भोज अपने विषयकी कुछ बातें लिखाना चाहता था। पर कविने उन्हें न लिखा। अतएव भोजने उसे नष्ट कर दिया। किन्तु अन्तमें उसे इसका बहुत पश्चात्ताप हुआ। उस समय उसीकी आज्ञासे धनपालकी कन्याने, जिसको वह पुस्तक कण्ठाग्र थी, भोजको वह पुस्तक सुनाई। इसीसे उसकी रक्षा हो गई।

भोजके समयमें भी एक कालिदास था, जो मेघदूत आदिके कर्तासे भिन्न था। परन्तु इसका कोई ग्रन्थ न मिलनेसे इसका विशेष वृत्तान्त विदित नहीं। प्रबन्धकारोंने इसकी प्रतिभा और कुशाग्रबुद्धिका वर्णन

किया है। नलोदय नामक ग्रन्थ उसीका बनाया हुआ बताया जाता है। उसकी कवितामें श्लेष बहुत है। कई विद्वान् चम्पू रामायणको भी इसी कालिदासकी बनाई बताते हैं। उनका कहना है कि कालिदासने उसमें भोजका नाम उसकी गुणग्राहकताके कारण रख दिया है।

सूक्तिमुक्तावली और हारावलीमें राजशेखरका बनाया हुआ एक श्लोक है। उसमें कालिदास नामके तीन कवियोंका वर्णन है। वह श्लोक यह है:—

एकोऽपि ज्ञायते हन्त कालिदासो न केनचित्।
शृङ्गारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयं किमु॥

नवसाहसाङ्कचरितकी एक पुस्तकमें उसका कर्ता पद्मगुप्त भी कालिदासके नामसे लिखा गया है। उसका वर्णन हम पहले कर चुके हैं।

आनन्दपुर (गुजरात) के रहनेवाले वज्रटके पुत्र ऊवटने भोजके समयमें उज्जैनमें वाजसनेय-संहिता (यजुर्वेद) पर भाष्य लिखा था, और प्रसिद्ध ज्योतिषी भास्कराचार्यके पूर्वज भास्कर भट्टको भोजने विद्यापतिकी उपाधि दी थी।

भोजके समयमें विद्याका बड़ा प्रचार था। उसने विद्यावृद्धिके लिए धारा-नगरीमें भोजशाला नामक एक संस्कृत पाठशालाकी स्थापना की थी। उस पाठशालामें भोज, उदयादित्य, नरवर्मा और अर्जुनवर्मा आदिके समयमें भर्तृहरिकी कारिका, इतिहास, नाटक आदि अनेक ग्रन्थ श्याम पत्थरकी बड़ी बड़ी शिलाओं पर खुदवा कर रक्खे गये थे। उन पर अन्दाजन ४००० श्लोकोंका खुदा रहना अनुमान किया जाता है। खेदका विषय है कि धारा पर मुसलमानोंका दखल हो जानेके बाद उन्होंने उस पाठशालाको गिरा कर वहीं पर मसजिद बनवा दी। वह मौलाना कमालुद्दीनकी कब्रके पास होनेसे कमाल मौलाकी मसजिदके नामसे प्रसिद्ध है। उसकी शिलाओंके अक्षरोंको टाँकियोंसे तोड़ कर

मुसलमानोंने उन शिलाओंको फर्श पर लगा दिया है। ऐसी ऐसी शिलायें वहाँ पर कोई ६० या ७० के हैं। परन्तु अब उनके लेख नहीं पढ़े जा सकते।

अर्जुनवर्माकी प्रशस्तिमें इस पाठशालाका नाम सरस्वतीसदन (भारतीभवन) लिखा है। यह भी लिखा है कि वेदवेदाङ्गोंके इसमें बड़े बड़े जाननेवाले विद्वान् अध्यापन-कार्य्य करते थे।

इस पाठशालाको, ८६१ हिजरी (१४५७ ई०) में, मालवेके मुहम्मदशाह खिलजीने मसजिदमें परिणत किया। यह वृत्तान्त दरवाजे परके फारसी लेखसे प्रकट होता है।

इस पाठशालाकी लम्बाई २०० फुट और चौड़ाई ११७ फुट थी। इसके पास एक कुँआ था, जो सरस्वती-कूप कहलाता था। वह अब अकलकुईके नामसे प्रसिद्ध है। भोजके समयमें विद्याका बहुत प्रचार होनेके कारण यह प्रसिद्धि थी कि जो कोई उस कुवेका पानी पीता था उस पर सरस्वतीकी कृपा हो जाती थी। इसी मसजिदमें, पूर्वोक्त शिलाओंके पास, दो स्तम्भों पर उदयादित्यके समयकी व्याकरण-कारिकायें सर्पके आकारमें खुदी हुई हैं।

भोज बड़ा दानी था। उसका एक दानपत्र वि० सं० १०७८, चैत्र सुदि १४ (१०२२ ईसवी) का मिला है। उसमें आश्वलायन शाखाके भट्ट गोविन्दके पुत्र धनपति भट्टको भोजके द्वारा वीराणक नामक ग्रामका दिया जाना लिखा है। यह दानपत्र धारामें दिया गया था। यह गोविन्द भट्ट शायद वही हो जो कथाओंके अनुसार माँडूके विद्यालयमें अध्यक्ष था।

भोजके राजत्वकालके तीन संवत् मिलते हैं। पहला, १०१९ ईसवी (वि० सं० १०७६) जब चौलुक्य जयसिंहने मालवेवालोंको भोज सहित हराया था। दूसरा, वि० सं० १०७८ (१०२२ ईसवी) यह

पूर्वोक्त दानपत्रका समय है। तीसरा, वि० स० १०९९ (१०४२ ईसवी) जब राजमृगाङ्क नामक ग्रन्थ बना था।

इससे प्रतीत होता है कि भोज वि० स० १०९९ (१०४२ ईसवी) तक विद्यमान था। उसके उत्तराधिकारी जयसिंहका दानपत्र वि० स० १११२ (१०५५ ईसवी) का मिला है। जयसिंहने थोडे ही समय तक राज्य किया था। इससे भोजका देहान्त वि० स० १११० या ११११ (१०५३ या १०५४ ईसवी) के आसपास हुआ होगा।

डाक्टर बूलरने भोजके राज्यका प्रारम्भ १०१० ईसवी (वि० स० १०६७) से माना है। परन्तु यदि इसका राज्यारम्भ (वि० स० १०५७) १००० ई० से माना जाय तो भोजका राज्य-काल उसके विषयमें कही गई भविष्यद्वाणीसे मिल जाता है। वह वाणी यह है --

पञ्चाशत्पञ्चवर्षाणि सप्तमास दिनत्रयम्।
भोजराजेन भोक्तव्य सगौडो दक्षिणापथ ॥

अर्थात् भोज ५५ वर्ष, ७ महीने और ३ दिन राज्य करेगा।

ऐसी भविष्यद्वाणियाँ बादमें ही कही जाती हैं। तारीख फरिश्तासे भी पूर्वोक्त आनन्दपालकी मददसे १००९ में इसका होना सिद्ध होता है। राजतरङ्गिणीकारने उस पुस्तकके सातवें तरङ्गमें काश्मीरके राजा कलशके वृत्तान्तमें निम्नलिखित श्लोक लिखा है —

स च भोजनरेन्द्रश्च दानोत्कर्षेण विश्रुतौ।
सूरी तस्मिन्क्षणे तुल्य द्वावास्तां कविबान्धवौ ॥ २५९ ॥

अर्थात् उस समय भोज और कलश दोनों बराबरीके दानी, विद्वान् और कवियोंके आश्रयदाता थे।

इसी प्रकार विक्रमाङ्कदेवचरितमें भी एक श्लोक है —

यस्य भ्राता क्षितिपतिरितिक्षात्रतेजोनिधानम्।
भोजक्ष्माभृत्सदृशमहिमा लोहराखण्डलोऽभूत् ॥ ४२॥

अर्थात् कलशका भाई लोहराका स्वामी बड़ा प्रतापी और भोजकी तरह कीर्तिमान् था।

इन श्लोकोंसे प्रकट होता है कि कलश, क्षितिपति और बिल्हण, भोजके समकालीन थे।

डाक्टर बूलरने भी राजतरङ्गिणीके पूर्वोक्त श्लोकके उत्तरार्धमें कहे हुए— 'तस्मिन्क्षणे'—इन शब्दोंसे भोजको कलशके समय तक जीवित मान कर विक्रमाङ्कदेवचरितके निम्नलिखित श्लोकके अर्थमें गडबड कर दी है:—

> भोजक्ष्माभृत्स खलु न खलैस्तस्य साम्यं नरेन्द्रै-
> स्तत्प्रत्यक्षं किमिति भवता नागतं हा हतास्मि।
> यस्य द्वारोड्डमरशिखरक्रोड़पारावतानां
> नादव्याजादिति सकरुणं व्याजहारेव धारा ॥ ९६ ॥

अर्थात्—धारा नगरी दरवाजे पर बैठे हुए कबूतरोंकी आवाज द्वारा मानो बिल्हणसे (जिस समय वह मध्यभारतमें फिरता था) बोली कि मेरा स्वामी भोज है, उसकी बराबरी कोई और राजा नहीं कर सकता। उसके सम्मुख तुम क्यों न हाजिर हुए ? अर्थात् तुमको उसके पास आना चाहिए।

परन्तु वास्तवमें उस समय भोज विद्यमान न था। अतएव ठीक अर्थ इस श्लोकका यह है कि—धारा नगरी बोली कि बडे अफसोसकी बात है कि तुम भोजके सामने, अर्थात् जब वह जीवित था, न आये। यदि आते तो वह तुम्हारा अवश्य ही सम्मान करता।

राजा कलश १०६३ ईसवी (वि० सं०११२०) में गद्दी पर बैठा और १०८९ ईसवी (वि० सं० ११४६) तक विद्यमान रहा। अतएव यदि राजतरङ्गिणीवाले श्लोक पर विश्वास किया जाय तो वि० सं० ११२० (१०६३ ईसवी) के बाद तक भोजको विद्यमान मानना पडेगा। इसी श्लोकके आधार पर डाक्टर बूलर और स्टीनने कलशके समय भोजका जीवित होना

माना है। किन्तु राजतरङ्गिणीका कर्त्ता भोजसे बहुत पीछे हुआ था। इससे उसने गड़बड़ कर दी है। ताम्रपत्रों और शिलालेखोंसे सिद्ध है कि भोजका उत्तराधिकारी जयसिंह वि० सं० १११२ में विद्यमान था और उसका उत्तराधिकारी उदयादित्य वि० सं० १११६ में। अतएव कलशके समयमें भोजका होना स्वीकार नहीं किया जा सकता। फिर, भोजके देहान्त-समयमें भीमदेव विद्यमान था। यह बात डाक्टर बूलर भी मानते हैं। सम्भव है, भोजके बाद भी वह जीवित रहा हो। यदि भीमका देहान्त वि० स० ११२० में हुआ तो भीमके पीछे भोजका होना उनके मतसे भी असम्भव सिद्ध नहीं।

उदयपुर (ग्वालियर) की प्रशस्तिमें निम्नलिखित श्लोक है, जिससे भोजके बनाये हुए मान्दिरोंका पता लगता है.—

> केदार-रामेश्वर-सोमनाथ [सु]-डीरकालानलरुद्रसत्कै' ।
> सुराश्र[यै]र्व्याप्य च य समन्तादयथार्थसंज्ञा जगतीं चकार ॥ २० ॥

अर्थात्—भोजने पृथ्वी पर केदार, रामेश्वर, सोमनाथ, सुंडीर, काल (महाकाल), अनल और रुद्रके मन्दिर बनवाये।

भोजकी बनवाई हुई धाराकी भोजशाला, उज्जेनके घाट और मन्दिर, भोपालकी भोजपुरी झील और काश्मीरका पापसूदन-कुण्ड अब तक प्रसिद्ध हैं।

राजतरङ्गिणीका कर्त्ता लिखता है—" पद्मराज नामक पान बेचनेवाले-ने, जो काश्मीरके राजा अनन्तदेवका प्रीतिपात्र था, मालवेके राजा भोज-के भेजे हुए सुवर्ण-समूहसे पापसूदन कपटेश्वर (कोटेर—काश्मीर) का कुण्ड बनवाया। भोजने प्रतिज्ञा की थी कि पापसूदनके उस कुण्डसे नित्य मुख धोऊँगा। अतएव पद्मराजने वहाँसे उस तीर्थजलसे भरे हुए काचके कलश पहुँचाते रह कर भोजकी उस प्रतिज्ञाको पूर्ण किया। पापसूदनतीर्थ (कपटेश्वर महादेव) काश्मीरमें कोटेर गाँवके पास,

२२°—४१ उत्तर और ७५°—११ पूर्वमें है। यह कुण्ड उसके चारों तरफ खिंची हुई पत्थरकी दृढ़ दीवारसहित अब तक विद्यमान है। कुण्डका व्यास कोई ६० गज है। वह गहरा भी बहुत है। वहीं एक टूटा हुआ मन्दिर भी है, जिसके विषयमें लोग कहते हैं कि यह भी भोजहीका बनवाया हुआ है। बहुधा पहलेके राजा दूर दूरसे तीर्थोंका जल मँगवाया करते थे। आज कल भी इसके उदाहरण मिलते हैं।

सम्भव है, धाराकी लाट-मसाजिद भी भोजके समयके खँडहरोंसे ही बनी हो। उसे वहाँ वाले भोजका मठ बताते हैं। उसके लेखसे प्रकट होता है कि उसे दिलावरखाँ गोरीने ८०७ ईसवी (१४०५ ई०) में बनवाया था। इस मसजिदके पास ही लोहेकी एक लाट पड़ी है। उसीसे इसका यह नाम प्रसिद्ध हुआ है। तुजक जहाँगीरीमें लिखा है कि यह लाट दिलावरखाँ गोरीने ८७० हिजरीमें, पूर्वोक्त मसाजिद बनवानेके समय, रक्खी थी। परन्तु उक्त पुस्तकके रचयिताने सन लिखनेमें भूल की है। ८०७ के स्थान पर उसने ८७० लिख दिया है।

जान पड़ता है कि यह लाट भोजका विजयस्तम्भ है। इसे भोजने दाक्षिणके चौलुक्यों और त्रिपुरी (तेवर) के चेदियोंपर विजय प्राप्त करनेके उपलक्ष्यमें खड़ा किया होगा। इस लाटके विषयमें एक कहावत प्रसिद्ध है। एक समय धारामें राक्षसीके आकारकी एक तेलिन रहती थी। उसका नाम गांगली या गांगी था उसके पास एक विशाल तुला थी। यह लाट उसी तुलाका डंडा थी और इसके पास पड़े हुए बड़े बड़े पत्थर उसके वजन—बाँट—थे। वह नालछामें रहती थी। कहते हैं, धारा और नालछाके बीचकी पहाड़ी, उसका लँहगा झाड़नेसे गिरी हुई रेतसे बनी थी। इसीसे वह तेलिन-टेकरी कहाती है। इसीसे यह कहावत चली है कि "कहाँ राजा भोज और कहाँ गांगली तेलिन" जिसका अर्थ आज काल लोग यह करते हैं कि यद्यपि तेलिन इतनी विशाल शरीरवाली थी, तथापि भोज जैसे राजाकी वह बराबरी न कर सकती थी।

परन्तु इस लाटका सम्बन्ध चेदीके गाङ्गेयदेव और दक्षिणके चौलुक्य जयसिंह पर प्राप्त की हुई भोजकी जीतसे हो तो कोई आश्चर्य नहीं। जयसिंह तिलङ्गानेका राजा था। उसी पर प्राप्त हुई जीतका बोधक होनेसे इस लाटका नाम 'गांगेय-तिलिंगाना लाट' पड़ा होगा। जब जयसिंहने धारा पर चढाई की तब नालछा उसके मार्गमें पडा होगा। सो शायद उसने इस पहाडीके आस पास डेरे डाले होंगे। इस कारण इसका नाम तिलिंगाना-टेकरी पड गया होगा। समयके प्रभावसे इस विजयका हाल और विजित राजाओंका नाम आदि, सम्भव है, लोग भूल गये हों और इन नामोंके सम्बन्धमें कहावतें सुन कर नई कथा बना ली हो। इसीसे "कहाँ राजा भोज और कहाँ गांगेय और तैलंगराज" की कहावतमें गंगिया तेलिन या गंगू तेलीको ठूँस दिया हो। गाङ्गेयका निरादर-सूचक या अपभ्रष्ट नाम गांगी, या गांगली और तिलिंगानाका तेलन हो जाना असम्भव नहीं। कहावतें बहुधा किसी न किसी बातका आधार जरूर रखती हैं। परन्तु हम यह पूर्ण निश्चयके साथ नहीं कह सकते कि तिलिंगानेके कौनसे राजाका हराया जाना इस लाटसे सूचित होता है। तथापि हम इतना अवश्य कह सकते हैं कि यह बात १०४२ ईसवीके पूर्व हुई होगी। क्योंकि उस समय गाङ्गेयदेवका उत्तराधिकारी कर्ण राजासन पर बैठा था।

धाराके चारों तरफका कोट भी भोजका बनाया हुआ बताया जाता है। ऐसी प्रसिद्धि है कि माँडू (मण्डपदुर्ग) में भी भोजने कोट बनवाया था और कई सौ विद्यार्थियोंके लिए, गोविन्दभट्टकी अध्यक्षतामें, विद्यालय स्थापित किया था। वहाँ अब तक कुवे पर भोजका नाम खुदा हुआ है।

भोजकी खुदाई हुई भोजपुरी झीलको पन्द्रहवीं शताब्दीमें मालवेके हुशंगशाहने नष्ट कर दिया। भूपालकी रियासतमें इस झीलकी जमीन इस समय सबसे अधिक उपजाऊ गिनी जाती है।

प्रबन्धकारोंने लिखा है कि भोजके अनेक स्त्रियाँ और पुत्र थे। पर कोई बात निश्चयात्मक नहीं लिखी। भोजका उत्तराधिकारी जयसिंह शायद भोजहीका पुत्र हो। पर भोजके सम्बन्धी बांधवोंमें केवल उदयादित्य ही कहा जाता है। उदयादित्यका वर्णन भी आगे किया जायगा।

मिस्टर विन्सेन्ट स्मिथ अपने भारतवर्षीय इतिहासमें लिखते हैं कि भोजने ४० वर्षसे अधिक राज्य किया। मुञ्जकी तरह इसने भी अनेक युद्ध और सन्धियाँ कीं। यद्यपि इसके युद्धादिकोंकी बातें लोग भूल गये हैं, तथापि इसमें सन्देह नहीं कि भोज हिन्दुओंमें आदर्श राजा समझा जाता है। वह कुछ कुछ समुद्रगुप्तके समान योग्य और प्रतापी था।

१०–जयसिंह (प्रथम)।

भोजके पीछे उसका उत्तराधिकारी जयसिंह गद्दीपर बैठा। यद्यपि उदयपुर (ग्वालियर), नागपुर आदिकी प्रशस्तियोंमें भोजके उत्तराधिकारीका नाम उदयादित्य लिखा है, तथापि वि० सं० ११११ (ई० स० १०५५) आषाढ वदि १२ का जो दानपत्र मिला है उससे स्पष्टतापूर्वक प्रकट होता है कि भोजका उत्तराधिकारी जयसिंह ही था। यह दान-पत्र स्वयं जयसिंहका खुदाया हुआ है और धारामें ही दिया गया था।

भोजके मरनेपर, उसके राज्यपर उसके शत्रुओंने आक्रमण किया। इसका वर्णन हम पूर्व ही कर चुके हैं। इस आक्रमणका फल यह हुआ कि धारा नगरी चेदीके राजा कर्णके हाथमें चली गई थी। उस समय शायद धारापति जयसिंह विन्ध्याचलकी तरफ चला गया हो, और बादमें कर्ण और भीम द्वारा धाराकी गद्दीपर बिठला दिया गया हो। यह पुरानी कथाओंसे प्रकट होता है। यह भी सम्भव है कि इसके कुछ

(१) The Early History of India, p. 317.
(२) Ep Ind, Vol. III, p. 80

समय वाद, अपनी ही निर्बलताके कारण, वह अपने कुटुम्बी उदयादित्य द्वारा गद्दीसे उतार दिया गया हो। इसीसे शायद उसका नाम पूर्वोक्त लेखोंमें नहीं पाया जाता।

जयसिंहने अपनी बहनका विवाह कर्णाटके राजा चौलुक्य जयसिंह-के साथ किया। दहेजमें उसने अपने राज्यका वह भाग, जो नर्मदाके दक्षिणमें था, जयसिंहको दे दिया। उसने अपना विवाह चेदीके राजा-की कन्यासे किया।

जयसिंहने धारामें एक महल बनवाया था, जो कैलास कहलाता था। उसमें साधु-सन्त ठहरा करते थे। यह बात कथाओंसे जानी जाती है।

जयसिंहने बहुत ही थोड़े समय तक राज्य किया; क्योंकि उदयादित्य-का वि० सं० १११६ (ई० सं० १०५९) का एक लेख मिला है, जिससे उस समय उदयादित्यहीका राजा होना सिद्ध होता है।

पूर्वोक्त लेखसे यह मालूम होता है कि जयसिंहका देहान्त वि० सं० १११२ (ई० स० १०५५) और वि० सं० १११६ (ई० स० १०५९) के बीच किसी समय हुआ।

११–उदयादित्य।

यह राजा भोजका कुटुम्बी था। नागपुरकी प्रशस्तिके बत्ती-सवें श्लोकमें लिखा है कि भोजके स्वर्ग जाने पर उसके राज्य पर जो विपत्ति आई थी उसको उसके कुटुम्बी उदयादित्यने दूर किया और स्वयं राजा बन कर कर्णाटवालोंसे मिले हुए राजा कर्णसे भोजके राज्यको फिर छीन लिया।

बिल्हण कविने विक्रमाङ्कदेवचरितके अन्तर्गत भोजके वृत्तान्तमें लिखा है कि कर्णाटकके राजा चौलुक्य सोमेश्वर (आहवमल्ल) ने भोज पर चढ़ाई की थी। यह चढ़ाई भोजके शासनकालके अन्तमें हुई होगी।

(१) Ep. Ind, Vol. II, P. 182.

पृथ्वीराजचरितमें लिखा है कि साँभरके चौहान राजा दुर्लभ (तीसरे) से घोड़े प्राप्त करके मालवेके राजा उदयादित्यने गुजरातके राजा कर्णको जीता । इससे अनुमान होता है कि भोजका बदला लेनेहीके लिए उदयादित्यने यह चढ़ाई की होगी । गुजरातके इतिहास-लेखकोंने इस चढ़ाईका वर्णन नहीं किया, परन्तु इसकी सत्यतामें कुछ भी सन्देह नहीं।

हम्मीर-महाकाव्यमें लिखा है कि शाकम्भरी (साँभर) के राजा दुस्सल (दुर्लभ) ने लड़ाईमें कर्णको मारा । इससे अनुमान होता है कि यद्यपि भोजने चौहान दुर्लभके पिता वीर्यरामको मारा था; तथापि उदयादित्यने गुजरातवालोंसे बदला लेनेके लिए चौहानोंसे मेल कर लिया होगा और उन दोनोंने मिलकर गुजरात पर चढ़ाई की होगी।

विक्रमाङ्कदेवचरितमें लिखा है कि विक्रमादित्यने जिस समय कि उसका पिता सोमेश्वर राज्य करता था, मालवेके राजाकी सहायता करके उसे धाराकी गद्दीपर बिठाया । इससे विदित होता है कि उस समय इन दोनोंमें आपसकी शत्रुता दूर हो गई थी ।

उदयादित्य विद्याका बड़ा अनुरागी था । उसने अपने पुत्रोंको अच्छा विद्वान् बनाया । अनुमान है कि उसके दूसरे पुत्र नरवर्मदेवने एकसे अधिक प्रशस्तियाँ उत्कीर्ण कराईं ।

उदयादित्यका भोजके साथ क्या सम्बन्ध था, इसका पता नहीं लगता । इस राजाके दो पुत्र थे, लक्ष्मीदेव और नरवर्मदेव । वे ही एकके बाद एक इसके उत्तराधिकारी हुए । इसके एक कन्या भी थी, जिसका नाम श्यामलादेवी था । वह मेवाड़के गुहिल राजा विजयसिंहसे ब्याही गई । श्यामलादेवीसे आल्हणदेवी नामकी कन्या उत्पन्न हुई, जिसका विवाह चेदीके हैहयवंशी राजा गयकर्णसे हुआ ।

---

(१) पृथ्वीराजचरित, श्लो० ७२ ।

उदयादित्यने अपने नामसे उदयपुर नगर (ग्वालियरमें) बसाया। वहाँ मिली हुई प्रशस्तिका हम अनेक बार उल्लेख कर चुके हैं। उस प्रशस्तिके इक्कीसवें श्लोकमें लिखा है कि भोजके पीछे उत्पन्न हुई अराजकताको दबाकर उदयादित्य राज्यासन पर बैठा। इस प्रशस्तिसे इस राजातकका ही वर्णन ज्ञात होता है। क्योंकि तेईसवें श्लोकके प्रारम्भमें ही प्रथम शिला समाप्त हो गई है। उसके बादकी दूसरी शिला मिली ही नहीं। अतएव पूरी प्रशस्ति देखनेमें नहीं आई।

इस राजाने अपने बसाये हुए उदयपुर नगरमें एक शिवमन्दिर बनवाया, वह अबतक विद्यमान है। उसमें अनेक परमार-राजाओंकी प्रशस्तियाँ हैं। उनमेंसे दो प्रशस्तियोंका सम्बन्ध इसी राजासे है। उनसे पता लगता है कि यह मन्दिर वि० स० ११६६ में बनने लगा था और वि० स ११३७ में बनकर तैयार हुआ था। इन प्रशस्तियोंमें पहली[2] तो वि० स० ११६६ (शक स० ९८१) की है और दूसरी[3] वि० स० ११३७ की। ये दोनों प्रशस्तियाँ प्रकाशित हो चुकी है। परन्तु उदयादित्यके समयकी एक प्रशस्ति शायद अबतक कहीं नहीं प्रकाशित हुई। अतएव उसीको हम यहाँपर उद्धृत करते है। यह प्रशस्ति झालरापाटनके दीवान साहबकी कोठीपर रक्खी हुई है।

प्रशस्तिकी नकल।

(१) ओँ नम शिवाय ॥ सवत् ११४३ वैसांस शुदि १०, अ-

(२) द्येह श्रीमदुदयादित्यदेवकल्याणविजयराज्ये। तै-

(३) लिकान्वए (ये) पट्टकिलँचाहिलसुतपट्टकिल-जन्न [के]

(१) Ep Ind., Vol. I, P 236 (२) Jour Beng As Soc, Vol IX, P 549 (३) Ind Ant, Vol XX, P 83 (४) यह लेख इमन बंगाल एशियाटिक सोसाइटीके जनरलकी जिल्द १०, नं० ६ सन् १९१४ पत्र ४१ में छपवाया है। (५) Denoted by a symbol (६) Read वैशाख। (७) Read पट्टान्वय। (८) Read पट्टकिल।

(४) न शंभोः प्रासादमिदं कारितं[1] । तथा चिरिहिलतले चा
(५) हाचोपकूपिकाव्रुवासकयोः अंतराले वापी च ॥
(६) उत्कीर्णेयं पडितहर्षुकेनेति[3] ॥ * ॥ जानासत्कमा-
(७) ता धाइणिः प्रणमति ॥ श्रीलोलिगस्वामिदेवस्स केरि[4]
(८) तैलकान्वयपदूकिलचाहिलसुतपदूकिल जंनकेन ॥

श्रीसैंधव देवपर—

(९) वनिमित्यं[5] दीपतैल्यंचतुःपलं मेकं मुदकं कीर्त्वौ

तथा वरिषं[12] प्रैतिस (सं) विज्ञा—

(१०) ७ तं ॥ छ ॥ मंगलं महाश्री ॥ ९ ॥

अर्थात्—सं० ११४३ वैशाखशुक्ला दशमीके दिन, जब कि उद्-दित्य राज्य करता था, तेली वंशके पटेल चाहिलके पुत्र पटेल जन्नने महादेवका यह मन्दिर बनवाया—इत्यादि ।

इससे वि० सं० ११४३ तक उदयादित्यका राज्य करना निश्चित होता है ।

भाटोंकी ख्यातोंमें उदयादित्यके छोटे पुत्रका नाम जगदेव लिखा है और उसकी वीरताकी बड़ी प्रशंसा की गई है । उन्हीं ख्यातोंके आधार पर फार्ब्स साहबने अपनी रासमाला नामक ऐतिहासिक पुस्तकमें जगदेवका किस्सा बड़े विस्तारसे वर्णन किया है । वे लिखते हैं:—

"धारा नगरीके राजा उदयादित्यके बघेली और सोलङ्किनी दो रानियाँ थीं । उनमेंसे बघेलीके रणधवल और सोलङ्किनीके जगदेव नामक

---

(१) Read प्रासादोऽयं कारित । (२) Read पण्डित । (३) Read हर्षुकेणे० । (४) Red ० देवस्य । (५) The meaning is not clear Perhaps इते is meant. (६) Read तैल्किा० । (७) Reap. पट्टकिल । (८) Read पट्टकिल । (९) Read पर्वनिमित्त । (१०) Read तैल० । (११) The meaning is not clear perhaps मोदकं क्रीत्वा is meant. (१२) Read वर्षं ।

पुत्र उत्पन्न हुए। बघेली पर उदयादित्यकी विशेष प्रीति थी। उसका पुत्र रणधवल ज्येष्ठ भी था। इससे वहीं राज्यका उत्तराधिकारी हुआ। सापत्न्यकी ईर्ष्याके कारण सोलङ्किनी और उसके पुत्र जगदेवको बघेली यद्यपि सदा दुःख देनेके उद्योगमें रहती थी तथापि उदयादित्य अपने छोटे पुत्र जगदेवको कम प्यार न करता था।

उदयादित्य माण्डवगढ़ (मॉंडू) के राजाका सेवक था। इस कारण, एक समय, उसे कुछ काल तक मॉंडूमें रहना पड़ा। उन्हीं दिनों जगदेवका विवाह टोंक-टोडाके चावड़ा राजा राजकी पुत्री वीरमतीके साथ हो गया। इससे बघेलीका द्वेष और भी बढ गया। यह दशा देख कर जगदेव धाराको छोड़ कर अपनी स्त्री-सहित पाटण (अणहिल-पाटन—अणहिलवाडा) के राजा सिद्धराज जयसिंहके पास चला गया। सिद्धराजने उसकी वीरता और कुलीनताके कारण बडे आदरके साथ उसको, ६०००० रुपया मासिक पर, अपने पास रख लिया। जगदेव भी तन मनसे उसकी सेवा करने लगा। वहॉं जगदेवके दो पुत्र हुए—जगधवल और बीजधवल। इन पर भी सिद्धराजकी पूर्ण कृपा थी।

एक बार भाद्रपद मासकी घनघोर अँधेरी रातमें एक तरफसे ४ स्त्रियोंके रोनेकी और दूसरी तरफसे ४ स्त्रियोंके हँसनेकी आवाज सिद्धराजके कानमें पड़ी। इस पर सिद्धराजने जगदेव आदि अपने सामन्तोंको, जो उस समय वहाँ उपस्थित थे, आज्ञा दी कि इस रोने और हँसनेका वृत्तान्त प्रातःकाल मुझसे कहना। यह सुनकर सब लोग वहाँसे रवाने हो गये। उनके चले जाने पर सिद्धराजने सोचा कि देखना चाहिए ये लोग इस भयानक रातमें इन घटनाओंका पता लगानेका साहस करते हैं या नहीं। यह सोच कर वह भी गुप्त रीतिसे घटनास्थलकी तरफ रवाना हुआ।

इधर रोने और हँसनेवाली स्त्रियोंका पता लगानेकी आज्ञा राजासे

पाकर खड्ग हाथमें ले जगदेव पहले रोनेवाली स्त्रियोंके पास पहुँचा। वहाँ उसने उनसे पूछा कि तुम कौन हो और क्यों अँधेरी रातमें यहाँ बैठ कर रो रही हो? यह सुन कर उन्होंने उत्तर दिया कि हम इस पाटण नगर-की देवियाँ है। कल इस नगरके राजा सिद्धराजकी मृत्यु होनेवाली है। इससे हम रो रही हैं। अँधेरेमें छिपा हुआ सिद्धराज स्वयं यह सब सुन रहा था। यह सुन कर जगदेव हँसनेवाली स्त्रियोंके पास पहुँचा। उनसे भी उसने वही सवाल किये। उन्होंने उत्तर दिया कि हम दिल्लीकी इष्टदेवियाँ है और सिद्धराजको मारनेके लिए यहाँ आई है। कल सवा पहर दिन चढे सिद्ध-राजका देहान्त हो जायगा। यह सुनकर जगदेवने कहा कि इस समय सिद्धराज जैसा प्रतापी दूसरा कोई नहीं। इस कारण यदि उसके बचनेका कोई उपाय हो तो कृपा करके आप कहें। इस पर उन्होंने उत्तर दिया कि इसका एक मात्र उपाय यही है कि यदि उसका कोई बडा सामन्त अपना सिर अपने हाथसे काटकर हमें दे तो राजाकी मृत्यु टल सकती है। तब जगदेवने निवेदन किया कि यदि मेरा सिर इस कामके लिए उपयुक्त समझा जाय तो मैं देनेको तैयार हूँ। देवियोंने राजाके बदले उसका सिर लेना मञ्जूर किया। तब जगदेवने कहा कि मुझे थोड़ी देरके लिए आज्ञा हो तो अपने घर जाकर यह वृत्तान्त मैं अपनी स्त्रीसे कहकर उसकी आज्ञा ले आऊँ। इस पर उन्होंने हँसकर उत्तर दिया कि कौन ऐसी होगी जो अपने पतिको मरनेकी अनुमति देगी। परन्तु यदि तेरी यही इच्छा हो तो जा, जल्दी लौटना। यह सुन जगदेव घरकी तरफ रवाना हुआ। सिद्धराज भी, जो छिपे छिपे ये सारी बातें सुन रहा था, जगदेवकी स्त्रीकी पति-भक्तिकी जाँच करनेकी इच्छासे उसके पीछे पीछे चला।

जगदेवने घर पहुँच कर सारा वृत्तान्त अपनी स्त्रीसे कहा। उसे सुन-कर वह बोली कि राजाके लिए प्राण देना अनुचित नहीं। ऐसे ही समय

पर काम आनेके लिए राजाने आपको रक्खा है । और क्षत्रियका धर्म भी यही है । परन्तु इतना आपको स्वीकार करना होगा कि आपके साथ ही मैं भी अपने प्राण दे दूं । यह सुनकर जगदेवने कहा कि यदि हम दोनों मर जायँगे तो इन बालकोंकी क्या दशा होगी ? इसपर उसकी स्त्री चावडीने कहा कि यदि ऐसा है तो इनका भी बलिदान कर दो। इस बातको जगदेवने भी अङ्गीकार कर लिया, और अपने दोनों पुत्रों और स्त्रीके साथ वह उन देवियोंके सामने उपस्थित हो गया। सिद्धराज भी पूर्ववत् चुपचाप वहाँ पहुँचा और छिपकर खडा हो गया।

जगदेवने देवियोंसे पूछा कि मेरे सिरके बदले सिद्धराजकी उम्र कितनी बढ़ जायगी ? उन्होंने उत्तर दिया, १२ वर्ष । यह सुनकर जगदेवने कहा कि स्त्री-सहित मैं अपने दोनों पुत्रोंके भी सिर आपको अर्पण करता हूँ। इसके बदले सिद्धराजकी उम्र ४८ वर्ष बढनी चाहिए । देवियोंने प्रसन्न होकर यह बात मान ली। तब चावडीने अपने बड़े पुत्रको देवियोंके सामने खडा किया । जगदेवने अपनी तलवारसे उसका सिर काट दिया। फिर दूसरे पुत्र पर उसने तलवार उठाई । इतनेमें देवियोंने जगदेवका हाथ पकड लिया और कहा कि हमने तेरी स्वामि-भक्तिसे प्रसन्न होकर राजाकी उम्र ४८ वर्ष बढा दी। इसके बाद देवियोंने उसके मृत पुत्रको भी जीवित कर दिया । तब जगदेव देवियोंको प्रणाम करके स्त्रीपुत्रों-सहित घरको लौट आया। सिद्धराज भी मन ही मन जगदेवकी दृढता और स्वामि-भक्तिकी प्रशंसा करता हुआ अपने महलको गया।

प्रातःकाल, जब जगदेव दरबारमें आया तब, सिद्धराज गद्दीसे उतर कर उससे मिला। फिर उन सामन्तोंसे, जिनको उसने रोने और गाने-वालियोंका हाल मालूम करनेको कहा था, पूछा कि कहो क्या पता लगाया ? उन्होंने उत्तर दिया कि किसीका पुत्र मर गया था, इससे वे रो रही थीं। दूसरीके यहाँ पुत्र उत्पन्न हुआ था इससे वहाँ स्त्रियाँ गा

रही थीं। तब सिद्धराजने जगदेवसे पूछा कि तुमने इस घटनाका क्या कारण ज्ञात किया ? इस पर उसने कहा कि जैसा इन सामन्तोंने निवेदन किया वैसा ही हुआ होगा।

यह सुनकर सिद्धराजने उन सब सामन्तोंको बहुत धिक्कारा। इसके बाद उसने वह सारा वृत्तान्त जो रातको हुआ था, कह सुनाया। जगदेवकी उसने बहुत प्रशंसा की। फिर उसके साथ अपनी बड़ी राजकुमारीका विवाह कर दिया और २५०० गाँव और जागीरमें दे दिये।

पूर्वोक्त घटनाके दो तीन वर्ष बाद सिद्धराज कच्छके राजा फूलके पुत्र लाखा (लाखा फूलाणी) की पुत्रीसे विवाह करने भुज गया। उस समय जगदेव भी उसके साथ था। राजा फूलने जो जगदेवकी कुलीनता और वीरतासे अच्छी तरह परिचित था, अपने पुत्र लाखाकी छोटी लड़की फूलमतीसे जगदेवका विवाह भी उसी समय कर दिया। लाखाकी बड़ी पुत्री, सिद्धराजकी रानी, के शरीरमें कालभैरवका आवेश हुआ करता था। उस भैरवके साथ युद्ध करके जगदेवने उसे अपने वशमें कर लिया। सिद्धराज पर यह उसका दूसरा एहसान हुआ।

एक दिन स्वयं चामुण्डा देवी, भाटनीका रूप धारण करके, सिद्धराजके दरबारमें कुछ माँगने गई। वहाँ पर जगदेवने कोई बात पड़ने पर अपना सिर काट कर उसे देवीको अर्पण कर दिया। उसकी वीरता और भक्तिसे प्रसन्न होकर देवीने उसे फिर जिला दिया। परन्तु उसी दिनसे सिद्धराज उससे अप्रसन्न रहने लगा। यह देख जगदेवने पाटन छोड़ देनेका विचार दृढ किया। एतदर्थ उसने सिद्धराजकी आज्ञा माँगी और अपने स्त्री-पुत्रों सहित वह धाराको लौट गया। वहाँपर उदयादित्यने उसका बहुत सम्मान किया।

कुछ समय बाद उदयादित्य बहुत बीमार हुआ। जब जीनेकी आशा न रही, तब उसने अपने सामन्तोंको एकत्र करके अपना राज्य अपने

छोटे पुत्र जगदेवको दे दिया; और अपने बड़े पुत्र रणधवलको १०० गाँव देकर अपने छोटे भाईकी आज्ञामें रहनेका उपदेश दिया। जब उदयादित्यका देहान्त होगया तब पिताके आज्ञानुसार जगदेव गद्दी पर बैठा।

जगदेवने १५ वर्षकी अवस्थामें स्वदेश छोड़ा था। उसके बाद उसने १८ वर्ष सिद्धराजकी सेवा की और ५२ वर्ष राज्य करके, ८५ वर्षकी उम्रमें, उसने शरीर छोड़ा। उसके पीछे उसका पुत्र जगधवल राज्याधिकारी हुआ।"

यहीं यह कथा समाप्त होती है। इस कथामें इतना सत्य अवश्य है कि जगदेव नामक वीर और उदार प्रकृतिका क्षत्रिय सिद्धराज जयसिंहकी सेवामें कुछ समय तक रहा था। शायद वह उदयादित्यका पुत्र हो। परन्तु उदयादित्यके देहान्तके कोई २०० वर्ष पीछे मेरुतुङ्गने जगदेवका जो वृत्तान्त लिखा है उसमें वह उसको केवल क्षत्रिय ही लिखता है। वह उदयादित्यका पुत्र था या नहीं, इस विषयमें वह कुछ भी नहीं लिखता। भाटोंने जगदेवकी कुलीनता, वीरता और उदारता प्रसिद्ध करनेके लिए इस कथाकी कल्पना शायद पीछेसे कर ली हो। इसमें ऐतिहासिक सत्यता नहीं पाई जाती।

उदयादित्य माँडूके राजाका सेवक नहीं, किन्तु मालवेका स्वतन्त्र राजा था, माँडू उसीके अधीन एक किला था। वहींसे दिया हुआ उसके वंशज अर्जुनवर्म्माका एक दानपत्र मिला है। उदयादित्यके पीछे उसका बड़ा पुत्र लक्ष्मीदेव और उसके पीछे लक्ष्मीदेवका छोटा भाई नरवर्मा गद्दी पर बैठा। परन्तु जगदेव और जगधवल नामके राजे मालवेकी गद्दीपर कभी नहीं बैठे। इतिहासमें उनका पता नहीं।

कच्छके राजा फूलके पुत्र लाखा (लाखा फूलाणी) की पुत्रियोंके साथ सिद्धराज और जगदेवके विवाहकी कथा भी असम्भव सी प्रतीत

होती है। क्योंकि फूलका पुत्र लाखा, सिद्धराजके पूर्वज राजाका समकालीन था। मूलराजने ग्रहरिपु पर जो चढ़ाई की थी उसमें ग्रहरिपुकी सहायताके लिए लाखा आया था और मूलराजके द्वारा वह मारा गया था। यदि सिद्धराजके समय कच्छका राजा लाखा हो तो वह जाम जाडाका पुत्र (लाखा जाडाणी) होना चाहिए था।

इसी तरह सिद्धराजकी १८ वर्षतक सेवा करके जगदेवके लौटने तक उदयादित्यका जीवित रहना भी कल्पित ही जान पड़ता है। क्योंकि वि० सं० ११५०, पौष कृष्ण ३ (गुजराती अमान्त मास)को, सिद्धराज गद्दीपर बैठा। इसके बाद १८ वर्षतक जगद्देव उसकी सेवामें रहा। इस हिसाबसे उसके धारा लौटनेका समय वि० सं० ११६८ के बाद आता है। परन्तु इसके पूर्व ही उदयादित्य मर चुका था। इसका प्रमाण उसके उत्तराधिकारी लक्ष्मीदेवके छोटे भाई और उत्तराधिकारी नरवर्माके सं० ११६१ के शिलालेखसे मिलता है। उक्त संवत्में वही मालवेका राजा था।

प्रबन्ध-चिन्तामणिमें उसका वृत्तान्त इस तरह लिखा है:—"जगदेव नामक क्षत्रिय सिद्धराज जयसिंहकी सभामें था। वह दानी, उदार और वीर था। जयसिंह उसका बहुत सत्कार करता था। कुन्तल-देशके राजा परमर्दीने उसके गुणोंकी प्रशंसा सुन कर उसे अपने पास बुलवाया। जिस समय द्वारपालने जगदेवके पहुँचनेकी खबर राजाको दी, उस समय उसके दरबारमें एक वेश्या पुष्प-चलन नामका एक प्रकारका वस्त्र। पहने नग्न नाच रही थी। वह जगदेवका आना सुनते ही कपड़े पहन कर बैठ गई। जगद्देवके वहाँ पहुँचने पर राजाने उसका बहुत सम्मान किया और एक लाख रुपयेकी कीमतके दो वस्त्र उसे भेंट दिये। इसके बाद राजाने उस वेश्याको नाचनेकी आज्ञा दी। वेश्याने निवेदन किया कि जगदेव, जो कि जगत्में एकही पुरुष गिना जाता है, इस जगह उपस्थित

है (कहते हैं कि उसकी छाती पर स्तन-चिह्न न थे।) उसके सामने नग्न होनेमें लज्जा आती है। क्योंकि स्त्रियाँ स्त्रियोंहीके बीच यथेष्ट चेष्टा कर सकती हैं।

इस प्रकार उस वेश्याके मुखसे अपनी प्रशंसा सुनकर जगदेवने राजाकी दी हुई वह बहुमूल्य भेट उसी वेश्याको दे डाली। कुछ दिन बाद परमर्दीकी कृपासे जगदेव एक प्रान्तका अधिपति हो गया। उस समय जगदेवके गुरुने उसकी प्रशंसामें एक श्लोक सुनाया। इस पर जगदेवने ५०००० मुद्रायें गुरुको उपहारमें दीं।

परमर्दीकी पटरानीने जगदेवको अपना भाई मान लिया था। एक वार राजा परमर्दीने श्रीमालके राजाको परास्त करनेके लिए जगदेवको ससैन्य भेजा। वहाँ पहुँचने पर, जिस समय जगदेव देवपूजनमें लगा हुआ था, उसने सुना कि शत्रुने उसके सैन्य पर हमला करके उसे परास्त कर दिया है। परन्तु तब भी वह देव-पूजनको अपूर्ण छोडकर न उठा। इतनेमें यह खबर दूतों द्वारा परमर्दीके पास पहुँची। उसने अपनी रानीसे कहा कि तुम्हारा भाई, जो बड़ा वीर समझा जाता है, शत्रुओंसे घिर गया है और भागनेमें भी असमर्थ है। इस पर उसने उत्तर दिया कि मेरे भाईका परास्त होना कभी सम्भव नहीं। इसी बीचमें दूसरी खबर मिली कि देवपूजन समाप्त करके जगदेवने ५०० योद्धाओं सहित शत्रु पर हमला किया और उसे क्षण भरमें नष्ट कर दिया।

कुछ काल बाद इस परमर्दीका युद्ध सपादलक्षके राजा पृथ्वीराज चौहानके साथ हुआ। उससे भाग कर परमर्दीको अपनी राजधानीको लौटना पड़ा।

प्रबन्ध-चिन्तामणिके कर्ताने कुन्तल-देशके राजा परमर्दीको तथा चौहान पृथ्वीराजके शत्रु, महोबाके चन्देल राजा परमर्दीको, एक ही समझा है। यह उसका भ्रम है।

कुन्तल-देशका परमर्दी शायद कल्याणका पश्चिमी चालुक्य राजा पेर्म (पेर्माडी–परमर्दी) हो। वह जगदेकमल्ल भी कहलाता था।

यदि जगद्देवको उदयादित्यका पुत्रका मान लें, जैसा कि भाटोंकी ख्यातोंसे प्रकट होता है, तो पृथ्वीराज चौहान और चन्देल परमर्दीकी लडाई तक उसका जीवित रहना असम्भव है। क्योंकि यह लड़ाई उदयादित्यके देहान्तके ८० वर्षसे भी अधिक समय बाद, वि० सं० १२३९ में, हुई थी।

पण्डित भगवानलाल इन्द्रजीका अनुमान है कि जगदेव, सिद्धराज जयसिंहकी माता मियणल्लदेवीके भतीजे, गोवाके कदम्बवंशी राजा जयकेशी दूसरेका, सम्बन्धी था। सम्भव है, वहीं कुछ समय तक सिद्धराजके पास रहनेके बाद, पेर्माडी (चौलुक्य राजा पेर्म) की सेवामें जा रहा हो और पेर्माडीके सम्बन्धसे ही शायद परमार कहलाया हो।

चालुक्य राजा पेर्म (जगदेकमल्ल) के एक सामन्तका नाम जगदेव था। वह त्रिभुवनमल्ल भी कहलाता था। वह गोवाके कदम्बवंशी राजा जयकेशी दूसरेकी मौसीका पुत्र था। माईसोरमें उसकी जागीर थी। उसका मुख्य निवासस्थान पट्टिपों बुच्चपुर-हौंबुच या हुँच-(अहमदनगर जिले) में था। उसका जन्म सान्तर-वंशमें हुआ था। वह वि० सं० १२०६ में विद्यमान था और पेर्मके उत्तराधिकारी तैल तीसरेके समय तक जीवित था।

प्रबन्ध-चिन्तामणिका लेख भाटोंकी ख्यातोकी अपेक्षा पं० भगवानलाल इन्द्रजीके लेखको अधिक पुष्ट करता है।

१२–लक्ष्मदेव।

यह उदयादित्यका ज्येष्ठ पुत्र था। यद्यपि परमारोंके पिछले लेखों और ताम्रपत्रोंमें इसका नाम नहीं है, तथापि नरवर्माके समयके नागपुरके लेखमें इसका जिक्र है। यह लेख लक्ष्मदेवके छोटे भाईका

लिखाया हुआ है । इसलिए इस लेखमें उसकी अनेक चढ़ाइयोंका उल्लेख है; परन्तु त्रिपुरी पर किये गये हमले और तुरुष्कोंके साथवाली लडाईके सिवा इसकी और सब बातें कल्पित ही प्रतीत होती हैं ।

उस समय शायद त्रिपुरीका राजा कलचुरी यश:कर्णदेव था ।

१३–नरवर्मदेव ।

यह अपने बड़े भाई लक्ष्मदेवका उत्तराधिकारी हुआ । विद्या और दानमें इसकी तुलना भोजसे की जाती थी । इसकी रचित अनेक प्रशस्तियाँ मिली हैं । उनसे इसकी विद्वत्ताका प्रमाण मिलता है ।

नागपुरकी प्रशस्ति इसीकी रची हुई है । यह बात उसके छप्पनवें श्लोकसे प्रकट होती है । देखिए:—

> तेन स्वयं कृतानेकप्रशस्तिस्तुतिचित्रितम् ।
> श्रीमल्लक्ष्मीधरेणैतद्देवागारमकार्यत ॥ [५६]

अर्थात्—नरवर्मदेवने अपनी बनाई हुई अनेक प्रशस्तियोंसे शोभित यह देवमन्दिर श्रीलक्ष्मीधर द्वारा बनवाया । इस प्रशस्तिका रचनाकाल वि० सं० ११६१ (ई० स० ११०४–५) है ।

उज्जेनमें महाकालके मन्दिरमें एक लेखका कुछ अंश मिला है । यह भी इसीका बनाया हुआ मालूम होता है । यह लेखखण्ड अब तक नहीं, प्रकाशित हुआ । धारामें भोजशालाके स्तम्भ पर जो लेख है वह, और इन्दोर-राज्यके खरगोन परगनेके ‘ उन ’ गाँवमें एक दीवार पर जो लेख है वह भी, इसीकी रचना है ।

---

(१) पुत्रस्तस्य जगत्त्रयैकशरणे सम्यक्प्रजापालन—
व्यापारप्रवण प्रजापतिरिव श्रीलक्ष्मदेवोऽभवत् ।
नैस्या येन मनुप्रणयनुविदधे नाशो न वैवस्वत·
धर्मत्रापि सदान्वयर्थन यथा कीर्त्तिर्वैरस्वतः ॥ [३५]
—Ep. Ind , Vol. II, p 186

भोजशालाके स्तम्भ पर नागबन्धमें जो व्याकरणकी कारिकायें खुदी हैं उनके नीचे श्लोक भी हैं[1]। उनका आशय क्रमशः इस प्रकार है:—

(१) वर्णोंकी रक्षाके लिए शैव उदयादित्य और नरवर्माके खड्ग सदा उद्यत रहते थे। (यहाँ पर 'वर्णा' शब्दके दो अर्थ होते हैं। एक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण; दूसरा क, ख आदि अक्षर।)

(२) उदयादित्यका वर्णमय सर्पाकार खड्ग विद्वानों और राजाओंकी छाती पर शोभित होता था।

'उन' गाँवके नागबन्धके नीचे भी उल्लिखित दूसरा श्लोक खुदा हुआ है। परन्तु महाकालके मन्दिरमें प्राप्त हुए उल्लेखके टुकड़ेमें पूर्वोक्त दोनों श्लोकोंके साथ साथ निम्नलिखित तीसरा श्लोक भी है।

उदयादित्यनामाङ्कवर्णनागकृपाणिका।
~~~~— मणिश्रेणी सृष्टा सुकविबन्धुना॥

इस श्लोकमें शायद सुकवि-बन्धुसे तात्पर्य नरवर्मासे है। पूर्वोक्त तीनों स्थानोंके नागबन्धोंको देख कर अनुमान होता है कि इनका कोई न कोई गूढ़ आशय ही रहा होगा।

नरवर्माके तीसरे भाई जगदेवका जिक्र हम पहले कर चुके हैं। अमरुतशतककी टीकामें अर्जुनवर्माने भी जगदेवका नाम लिखा है। कथाओंमें यह भी लिखा है कि नरवर्माकी गद्दी पर बैठानेके बाद जगदेव उससे मिलने धारामें आया, तथा नरवर्माकी तरफसे कल्याणके चौलुक्यों पर उसने चढ़ाई की। उस युद्धमें चौलुक्यराजका मस्तक काट कर जगदेवने नरवर्माके पास भेजा।

जगदेवके वर्णनमें लिखा है कि उसने अपना मस्तक अपने ही हाथसे काट कर कालीको दे दिया था। इस बातके प्रमाणमें यह कविता उद्धृत की जाती है।

(१) J. B R A. S; Vol. XXI, P. 35.
~~~~

सवत् ग्यारा सौ एकावन चैत सुदी रविवार ।
जगदेव सीस समप्पियो धारा नगर पवाँर ॥

परन्तु जगदेवका विश्वास-योग्य हाल नहीं मिलता ।

ऐसी प्रसिद्ध है कि नरवर्मदेवने गौड और गुजरातको जीता था, तथा शास्त्रार्थोंका भी वह बडा रसिक था । महाकालके मन्दिरमें उसके समयमें जैन रत्नसूरि और शैव विद्याशिववादीके बीच एक बडा भारी शास्त्रार्थ हुआ था । एक और शास्त्रार्थका जिक्र अम्मस्वामीके लिखे हुए रत्नसूरिके जीवनचरितकी प्रशस्तिमें है । यह चरित वि० स० ११९० (ई० स० ११३४) में लिखा गया । इससे समुद्रघोपका परमारोंकी सभामें होना पाया जाता है —

(१) यो मालवापात्तविशिष्टतर्को विद्यानवद्योपदानैप्रधान ।
विद्वज्जनालिश्रितपादपद्म केषां न विद्यागुरुतामदत्त ॥ ८ ॥

अर्थात्—समुद्रघोष, जिसने मालवेमें तर्कशास्त्र पढा था और जो बडा भारी विद्वान् था, किनका विद्यागुरु न था ? मतलब यह कि सभी उसके शिष्य थे ।

(६) धारायां नरवम्मदेवनृपतिं श्रीगोहृदक्ष्मापतिं
श्रीमत्सिद्धपतिंच गुर्ज्जरपुरे विद्वज्जने साक्षिणि ।
स्वैर्यो रञ्जयति स्म सद्गुणगणैर्व्याख्यानवद्याशयो
न्पी प्राक्तनगौतमादिगणभृत्सब्रादिनीर्धारयन् ॥ ६ ॥

अर्थात्—समुद्रघोप गौतम आदिके सदृश विद्वान् था । उसने अपनी विद्वत्तासे नरवर्मदेव आदि राजाओंको प्रसन्न कर दिया ।

पर्वाक्त प्रथम श्लोकसे अनुमान होता है कि उस समय मालवा विद्याके लिए प्रसिद्ध स्थान था ।

समुद्रघोपका शिष्य सूरप्रभसूरि था । और सूरप्रभसूरिका शिष्य रत्नसूरि सूरप्रभ भी बडा विद्वान् था, जैसा कि इस श्लोकसे प्रकट होता है —

मुख्यस्तदीयशिष्येषु कवीन्द्रेषु बुधेषु च ।
सूरि सूरप्रभ श्रीमानवन्तीम्यातसद्गुण ॥

अर्थात्—समुद्रघोषका शिष्य सूरप्रभसूरि अवन्ती नगर भरमें प्रसिद्ध विद्वान् था।

जैन अभयदेवसूरिके जयन्तकाव्यकी प्रशस्तिमें नरवर्माका जैन वल्लभसूरिके चरणों पर सिर झुकाना लिखा है। वि० सं० १२७८ में यह काव्य बना था। इस काव्यमें वल्लभसूरिका समय वि० सं० ११५७ लिखा है[1]। यद्यपि इस काव्यमें लिखा है कि नरवर्मा जैनाचार्योंका भक्त था, तथापि वह पक्का शैव था, जैसा कि धारा और उज्जैनके लेखोंसे विदित होता है।

चेदिराजकी कन्या मोमला देवीसे नरवर्माका विवाह हुआ था। उससे यशोवर्मा नामका एक पुत्र उत्पन्न हुआ।

कीर्तिकौमुदीमें लिखा है कि नरवर्माको काष्ठके पिंजड़ेमें कैद करके उसकी धारा नगरी जयसिंहने छीन ली। परन्तु यह घटना इसके पुत्रके समयकी है। १२ वर्ष तक लड कर यशोवर्माको उसने कैद किया था।

नरवर्माके समयके दो लेखोंमें संवत् दिया हुआ है। उनमेंसे पहला लेख वि० सं० ११६१ (ई० स० ११०४) का है, जो नागपुरसे मिला था। दूसरा लेख वि० सं० ११६४ (ई० स० ११०७) का है[2]। वह मधुकरगढमें मिला था[3]। बाकीके तीन लेखों पर संवत् नहीं है। प्रथम भोजशालाके स्तम्भवाला, दूसरा 'उन' गाँवकी दीवारवाला और तीसरा महाकालके मन्दिरवाला लेखखण्ड।

१४–यशोवर्मदेव।

यह नरवर्म्मदेवका पुत्र था और उसीके पीछे गद्दी पर बैठा। परमारोंका वह ऐश्वर्य, जो उदयादित्यने फिरसे प्राप्त कर लिया था, इस राजाके

(१) History of Jainism in Gujrat, pt. I, p 38 (२) Ind. Ant., XIX. 349 (३) Tra. R A. S, Vol. I, p 226.

समयमें नष्ट हो गया। उस समय गुजरातका राजा सिद्धराज जयसिंह बडा प्रतापी हुआ। उसीने मालवे पर अधिकार कर लिया।

प्रबन्धचिन्तामणिमें लिखा है कि एक बार जयसिंह और उसकी माता सोमेश्वरकी यात्राको गये हुए थे। इसी बीचमें यशोवर्माने उसके राज्य पर चढाई की। उस समय जयसिंहके राज्यका प्रबन्ध उसके मन्त्री सान्तुके हाथमें था। उसने यशोवर्मासे वापिस लौट जानेकी प्रार्थना की। इस पर यशोवर्माने कहा कि यदि तुम मुझे जयसिंहकी यात्राका पुण्य दे दो तो मैं वापिस चला जाऊँ। इस पर जल हाथमें लेकर सान्तने जयसिंहकी यात्राका पुण्य यशोवर्माको दे दिया। सिद्धराज जयसिंह यात्रासे लौटा तो पूर्वोक्त हाल सुन कर बहुत नाराज हुआ तथा सान्तुसे कहा कि तूने ऐसा क्यों किया। इस पर सान्तुने उत्तर दिया कि यदि मेरे देनेसे आपका पुण्य यशोवर्माको मिल गया हो तो आपका वह पुण्य मैं आपको लौटता हूँ और साथ ही अन्य महात्माओंका पुण्य भी देता हूँ। यह सुन कर जयसिंहका क्रोध शान्त हो गया। कुछ दिन बाद बदला लेनेके लिए जयसिंहने मालवे पर चढाई की। बहुत कालतक युद्ध होता रहा। परन्तु धारा नगरीको वह अपने अधीन न कर सका। तब एक दिन युद्धमें क्रुद्ध होकर जयसिंहने यह प्रतिज्ञा की कि जब तक धारा नगरी पर विजय प्राप्त न कर लूँगा तब तक भोजन न करूँगा। राजाकी इस प्रतिज्ञाको सुन कर उस दिन उसके अमात्यों और सैनिकोंने बडी ही वीरतासे युद्ध किया। उस दिन पाँच सौ परमार मारे गये तथापि सन्ध्या तक धारा पर दखल न हो सका। तब अनाजकी धारा नगरी बनाई गई। उसीको तोड कर राजाने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। इसके बाद मुञ्जाल नामक मन्त्रीकी सलाहसे जासूसों द्वारा गुप्त भेद प्राप्त करके हाथियोंसे जयसिंहने दक्षिणका फाटक तुडवा डाला। उसी रास्ते किले पर हमला करके धाराको जीत लिया और यशोवर्माको छ रस्सियोंसे बाँध कर वह पाटण ले आया।

इस कथाका प्रथमार्ध जैनों द्वारा कल्पना किया गया मालूम होता है। एकका पुण्य दूसरेको दे दिया जा सकता है, हिन्दू-धर्मवालोंका ऐसा ही विश्वास है। इसी विश्वासकी हँसी उड़ानेके लिए शायद जैनियोंने यह कल्पना गढ़ी है।

यद्यपि इस विजयका जिक्र मालवेके लेखादिमें नहीं है, तथापि द्व्याश्रयकाव्य और चालुक्योंके लेखोंमें इसका हाल है। मालवेके भाटोंका कथन है कि इस युद्धमें दोनों तरफका बहुत नुकसान हुआ। यह कथन प्रायः सत्य प्रतीत होता है।

यह कथा द्व्याश्रयकाव्यमें भी प्रायः इसी तरह वर्णन की गई है। अन्तर बहुत थोडा है। उसमें इतना जियादह लिखा है कि यशोवर्माके पुत्र महाकुमारको जयसिंहके भतीजे मौसलने मार डाला। जयसिंहको सपरिवार कैद करके वह अणहिलवाडे ले गया। मालवेका राज्य गुजरातके राज्यमें मिला दिया गया तथा जैन-धर्मावलम्वी मन्त्री जैनचन्द्र वहाँका हाकिम नियत किया गया।

मालवेसे लौटते हुए जयसिंहकी सेनासे भीलोंने युद्ध करके उसे भगा देना चाहा। परन्तु सान्तुसे उन्हें स्वय ही हार खानी पड़ी।

दोहद नामक स्थानमें जयसिंहका एक लेख मिला है[1] जिसमें इस विजयका जिक्र है। उसमें लिखा है कि मालवे और सौराष्ट्रके राजाओंको जयसिहने कैद किया था।

सोमेश्वरने अपने सुरथोत्सव नामक काव्यके पन्द्रहवें सर्गके बाईसवें श्लोकमें लिखा है:—

नीत स्फीतबलोऽपि मालवपति काराय दारान्वित ।

अर्थात्—उसने बलवान् मालवेके राजाको भी सस्त्रीक कैद कर लिया।

(१) Ep. Ind, Vol I, p 256

कथाओंमें लिखा है कि बारह वर्ष तक यह युद्ध चलता रहा। इससे प्रतीत होता है कि शायद यह युद्ध नरवर्मदेवके समयसे प्रारम्भ हुआ होगा और यशोवर्मके समयमें समाप्त।

ऐसा भी लिखा मिलता है कि जयसिंहने यह प्रतिज्ञाकी थी कि मैं अपनी तलवारका मियान मालवेके राजाके चमडेका बनाऊँगा। परन्तु मन्त्रीके समझानेसे केवल उसके पैरकी एड़ीका थोडासा चमड़ा काटकर ही उसने सन्तोष किया। ख्यातोंमें लिखा है कि मालवेका राजा काठके पिँजड़ेमें, जयसिंहकी आज्ञासे, बड़ी बेइज्जतीके साथ, रक्खा गया था। दण्ड लेकर उसे छोड़ देनेकी प्रार्थना की जानेपर जयसिंहने ऐसा करनेसे इनकार कर दिया था।

इस विजयके बाद जयसिंहने *अवन्तीनाथका* खिताब धारण किया था, जो कुछ दानपत्रोंमें लिखा मिलता है।

यह विजय मन्त्रोंके प्रभावसे जयसिंहने प्राप्त की थी। मन्त्रोंहीके भरोसे यशोवर्माने भी जयसिंहका सामना करनेका साहस किया था। सुरथोत्सव-काव्यके एक श्लोकसे यह बात प्रकट होती है। देखिए:—

धाराधीशपुरोधसा निजनृपक्षोणीं विलोक्याखिलां
चौलुक्याकुलितां तदत्ययकृते कृत्या किलोत्पादिता।
मन्त्रैर्यस्य तपस्यत प्रतिहता तत्रैव त मान्त्रिकं
सा संहृत्य तडित्लतातरलमिव क्षिप्रं प्रयाता क्वचित्॥ २०॥

अर्थात्—चौलुक्यराजसे अधिकृत अपने राजाकी पृथ्वीको देख कर उसे मारनेको धाराके राजाके गुरुने मन्त्रोंसे एक कृत्या पैदा की। परन्तु वह कृत्या चौलुक्यराजके गुरुके मन्त्रोंके प्रभावसे स्वयं उत्पन्न करनेवालेहीको मार कर गायब हो गई।

मालवेकी इस विजयने चन्देलोंकी राजधानी जेजाकभुक्ति (जेजाहुति) का भी रास्ता साफ कर दिया। इससे वहाँके चन्देल राजा मदनवर्मापर

भी जयसिंहने चढ़ाई की। यह जेजाकभुक्ति आजकल बुंदेलखण्ड कह-लाता है। इन विजयोंसे जयसिंहको इतना गर्व हो गया कि उसने एक नवीन संवत् चलानेकी कोशिश की।

जयसिंहके उत्तराधिकारी कुमारपाल और अजयपालके उदयपुर (ग्वालियर) के लेखोंसे भी कुछ काल तक मालवे पर गुजरातवालोंका अधिकार रहना प्रकट होता है। परन्तु अन्तमें अजमेरके चौहान राजाकी सहायतासे कैदसे निकल कर अपने राज्य–का कुछ हिस्सा यशोवर्माने फिर प्राप्त कर लिया। उस समय जयसिंह और यशोवर्म्माके बीच मेल हो गया था। वि० सं० ११९९(ई० स०११-४२) में जयसिंह मर गया। इसके कुछ ही काल बाद यशोवर्म्माका भी देहान्त हो गया।

अब तक यशोवर्म्माके दो दानपत्र मिले हैं। एक वि० स० ११९१ (ई० स०११३४), कार्तिक सुदी अष्टमीका है। यह नरवर्म्माके सांवत्सरिक श्राद्धके दिन यशोवर्म्मा द्वारा दिया गया था। इसमें अवस्थिक ब्राह्मण धनपालको बडौद गाँव देनेका जिक्र है। वि० स० १२००, श्रावण सुदी पूर्णिमाके दिन, चन्द्रग्रहण पर्व पर, इसी दानको दुबारा मजबूत करनेके लिए महाकुमार लक्ष्मीवर्म्माने नवीन ताम्रपत्र लिखा दिया। अनुमान है कि ११९१, कार्तिक सुदी अष्टमीको, नरवर्माका प्रथम सांवत्सरिक श्राद्ध हुआ होगा, क्योंकि विशेष कर ऐसे महादान प्रथम सांवत्सरिक श्राद्ध पर ही दिये जाते हैं। यद्यपि ताम्रपत्रमें इसका जिक्र नहीं है, तथापि संभव है कि वि० सं०११९०, कार्तिक सुदी अष्टमीको ही, नरवर्माका देहान्त हुआ होगा।

(१) Ind. Ant, Vol XVIII, p. 343. (२) Ind. Ant., Vol. XVIII, p 347. (३) Ind. Ant., Vol. VI, p 213. (४) Ind. Ant., XIX. p. 351.

दूसरा दानपत्र वि० स० ११९२, (ई० स० ११३५), मार्गशीर्ष बदी तीजका है। इसका दूसरा ही पत्रा मिला है। इसमें मोमलादेवीके मृत्यु-समय सङ्कल्प की हुई पृथ्वीके दानका जिक्र है। शायद यह मोमलादेवी यशोवर्माकी माता होगी।

उस समय यशोवर्माका प्रधान मन्त्री राजपुत्र श्रीदेवधर था।

१५-जयवर्मा।

यह अपने पिता यशोवर्माका उत्तराधिकारी हुआ। परन्तु उस समय मालवेपर गुजरातके चौलुक्य राजाका अधिकार हो गया था। इसलिए शायद जयवर्मा विन्ध्याचलकी तरफ चला गया होगा। ई० स० ११४२ से ११७९ के बीचका, परमारोंका, कोई लेख अबतक नहीं मिला। अतएव उस समय तक शायद मालवे पर गुजरातवालोंका अधिकार रहा होगा।

यशोवर्माके देहान्तके बाद मालवाधिपतिका खिताब बल्लालदेवके नामके साथ लगा मिलता है। परन्तु न तो परमारोंकी वंशावलीमें ही यह नाम मिलता है, न अब तक इसका कुछ पता ही चला है कि यह राजा किस वंशका था।

जयसिंहकी मृत्युके बाद गुजरातकी गद्दीके लिए झगडा हुआ। उस झगडेमें भीमदेवका वंशज कुमारपाल कृतकार्य हुआ। मेरुतुङ्गके मतानुसार स० ११९९, कार्तिक वदि २, रविवार, हस्त नक्षत्र, मे कुमारपाल गद्दी पर बैठा। परन्तु मेरुतुङ्गकी यह कल्पना सत्य नहीं हो सकती।

कुमारपालके गद्दी पर बैठते ही उसके विरोधी कुटुम्बियोंने एक व्यूह बनाया। मालवेका बल्लालदेव, चन्द्रावती (आबूके पास) का परमार राजा विक्रमसिंह और साँभरका चौहान राजा अर्णोराज इस व्यूहके सहायक हुए। परन्तु अन्तमें इनका सारा प्रयत्न निष्फल हुआ। विक्रमसिंहका राज्य उसके भतीजे यशोधवलको मिला। यह यशोधवल कुमार-

(१) Bombay Gaz., Gujrat, pp 181—194

पालकी तरफ था। कुछ समय बाद बल्लालदेव भी यशोधवल द्वारा मारा गया और मालवा एक बार फिर गुजरातमें मिला लिया गया[१]।

बल्लालदेवकी मृत्युका जिक्र अनेक प्रशस्तियोंमें मिलता है। वडनगरमें मिली हुई कुमारपालकी प्रशस्तिके पन्द्रहवें श्लोकमें बल्लालदेव पर की हुई जीतका जिक्र है। उसमें लिखा है कि बल्लालदेवका सिर कुमारपालके महलके द्वार पर लटकाया गया था[२]। ई० स० ११४३ के नवंबरमें कुमारपाल गद्दी पर बैठा, तथा उल्लिखित वड़नगरवाली प्रशस्ति[३] ई० स० ११५१ के सेप्टम्बरमें लिखी गई। इससे पूर्वोक्त बातोंका इस समयके बीच होना सिद्ध होता है।

कीर्तिकौमुदीमें लिखा है कि मालवेके बल्लालदेव और दक्षिणके मल्लिकार्जुनको कुमारपालने हराया। इस विजयका ठीक ठीक हाल ई० स० ११६९ के सोमनाथके लेखमें मिलता है। उदयपुर (ग्वालियर) में मिले हुए चौलुक्योंके लेखोंसे भी इसकी दृढ़ता होती है।

उदयपुर (ग्वालियर) में कुमारपालके दो लेख मिले है। पहला वि० सं० १२२०(ई० स०११६३)का और दूसरा वि०सं० १२२२ (ई०स० ११६५) का। वहीं पर एक लेख वि० सं० १२२९ (ई० स०११७२) का अजयपालके समयका भी मिला है। इससे मालूम होता है कि वि०सं० १२२९ तक भी मालवे पर गुजरातवालोंका अधिकार था। जयसिंहकी तरह कुमारपाल भी अवन्तीनाथ कहलाता था।

कहा जाता है कि पूर्वोल्लिखित 'उन' गाँव बल्लालदेवने बसाया था। वहाँके एक शिव-मन्दिरमें दो लेख-खण्ड मिले है। उनकी भाषा संस्कृत है। उनमें बल्लालदेवका नाम है। परन्तु यह बात निश्चयपूर्वक नहीं कही जा सकती कि भोजप्रबन्धका कर्ता बल्लाल और पूर्वोक्त बल्लाल दोनों

(१) Ep. Ind., Vol. VIII, p. 200. (२) Ep. Ind, Vol. VIII, p. 200. (३) Ep Ind, Vol. I, p 296,

एक ही थे। यदि एक ही हों तो बल्लालके परमार-वंशज होनेमें विशेष संदेह न रहेगा, क्योंकि इस वंशमें विद्वत्ता परम्परागत थी।

भाटोंकी पुस्तकोंमें लिखा है कि जयवर्माने कुमारपालको हराया, परन्तु यह बात कल्पित मालूम होती है। क्योंकि उदयपुर (ग्वालियर) में मिली हुई, वि० सं० ११२९ की, अजयपालकी प्रशस्तिसे उस समय तक मालवे पर गुजरातवालोंका अधिकार होना सिद्ध है।

जयवर्मा निर्बल राजा था। इससे उसके समयमें उसके कुटुम्बमें झगड़ा पैदा हो गया। फल यह हुआ कि उस समयसे मालवेके परमार-राजाओंकी दो शाखायें हो गईं। जयवर्माके अन्त-समयका कुछ भी हाल मालूम नहीं। शायद वह गद्दीसे उतार दिया गया हो।

यशोवर्माके पीछेकी वंशावलीमें बड़ी गड़बड़ है। यद्यपि जयवर्मा, महाकुमार लक्ष्मीवर्मा, महाकुमार हरिश्चन्द्रवर्मा और महाकुमार उदयवर्माके ताम्रपत्रोंमें यशोवर्माके उत्तराधिकारीका नाम जयवर्मा लिखा है, तथापि अर्जुनवर्माके दो ताम्रपत्रोंमें यशोवर्माके पीछे अजयवर्माका नाम मिलता है।

महाकुमार उदयवर्माके ताम्रपत्रमें, जिसका हम ऊपर जिक्र कर चुके हैं, लिखा है कि परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीजयवर्माका राज्य अस्त होने पर, अपनी तलवारके बलसे महाकुमार लक्ष्मीवर्म्माने अपने राज्यकी स्थापना की। परन्तु यशोवर्माके पौत्र (लक्ष्मीवर्माके पुत्र) महाकुमार हरिश्चन्द्रवर्माने अपने दानपत्रमें जयवर्माकी कृपासे राज्यकी प्राप्ति लिखी है। इन ताम्रपत्रोंसे अनुमान होता है कि शायद यशोवर्माके तीन पुत्र थे—जयवर्मा, अजयवर्मा और लक्ष्मीवर्मा। इनमेंसे, जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं, यशोवर्माका उत्तराधिकारी जयवर्मा हुआ। परन्तु

(१) देखो—Aufrecht's Catalogus Catalogorum, Vol. I, pp. 398, 418 (२) Ind. Ant., Vol. XVI, p 252.

वह निर्बल राजा था। इस कारण इधर तो उस पर गुजरातवालोंका दबाव पड़ा और उधर उसके भाईने बगावत की। इससे वह अपनी रक्षा न कर सका। ऐसी हालतमें उसको गद्दीसे उतार कर उसके स्थान पर उसके भाई अजयवर्माने अधिकार कर लिया। अजयवर्मासे परमारोंकी 'ख' शाखाका प्रारम्भ हुआ, तथा इसी उतार चढावमें उसके दूसरे भाई लक्ष्मीवर्माने जयवर्मासे मिल कर कुछ परगने दबा लिये। उससे 'क' शाखा चली। अपने ताम्रपत्रोंमें इस 'क' शाखाके राजाओंने जयवर्माको अपना पूर्वाधिकारी लिखा है। इस प्रकार मालवेके परमार-राजाओंकी दो शाखायें चलीं —

१४—यशोवर्मा

(क)	(ख)
१५—जयवर्मा	(१५)—अजयवर्मा
१६—लक्ष्मीवर्मा	(१६)—विन्ध्यवर्मा
१७—हरिश्चन्द्र	(१७)—सुभटवर्मा
१८—उदयवर्मा	(१८)—अर्जुनवर्मा

१९—देवपालदेव (हरिश्चन्द्रदेवका पुत्र)

'क' शाखाके लेखोंका क्रम इस प्रकार है:—

पूर्वोक्त वि० सं० ११९१ (ई० स० ११३४) के यशोवर्माके दान-पत्रके बादके जयवर्माके दान-पत्रका प्रथम पत्र मिला है[1]। यद्यपि इसमें संवत् न होनेसे इसका ठीक समय निश्चित नहीं हो सकता, तथापि

(१) Ind Ant., Vol XIX, p 353 (२) Ep Ind, Vol. I, p. 350.

अनुमानसे शायद इसका समय वि० स० ११९९ के आसपास होगा। इसके बाद वि० स० १२०० (ई० स० ११४३) श्रावणशुक्ला पूर्णिमाका, महाकुमार लक्ष्मीवर्माका, दान पत्र मिला है[१]। इसमें अपने पिता यशोवर्माके वि० स० ११९१ में दिये हुए दानकी स्वीकृति है। इससे यह भी अनुमान होता है कि सम्भवत वि० स० १२०० के पूर्व ही जयवर्मासे राज्य छीना गया होगा। इस दान पत्रमें लक्ष्मीवर्माने अपनेको महाराजाधिराजके बदले महाकुमार लिखा है। इस लिए शायद उस समय तक जयवर्मा जीवित रहा होगा। परन्तु वह अजयवर्माकी कैदमें रहा हो तो आश्चर्य नहीं।

वि० सं० १२३६ (ई० स० ११७९) वैशाख-शुक्ला पूर्णिमाका, लक्ष्मीवर्माके पुत्र हरिश्चन्द्रका, दानपत्र भी मिला है[२]। तथा उसके बादका वि० स० १२५६ (ई०स० ११९९) वैशाख-सुदी पूर्णिमाका, हरिश्चन्द्र के पुत्र उदयवर्माका दानपत्र मिला है[३]।

यशोवर्माका उल्लिखित ताम्रपत्र धारासे दिया गया था, जयवर्मा का वर्द्धमानपुरसे जो शायद बडवानी कहलाता है। लक्ष्मीवर्माका राजसयनसे दिया गया था, जो अब रायसेन कहाता है। वह भोपाल-राज्यमें है। हरिश्चन्द्रका पिपलिआनगर (भोपाल-राज्य) से दिया गया था। यह नर्मदाके उत्तरमें है। उदयवर्माका गुवाडाघट्ट या गिन्नूरगढसे दिया गया था। नर्मदाके उत्तरमें, इस नामका एक छोटासा किला भोपाल-राज्यमें है।

इससे मालूम होता है कि 'क' शाखाका अधिकार भिलसा और नर्मदाके बीच और 'ख' शाखाका अधिकार धाराके चारों तरफ था।

---

(१) Ind Ant , Vol. XIX, p 351 (२) J. B A S., Vol. VII, p 736 (३) Ind. Ant., Vol. XVI, p, 254.

' ख ' शाखाके राजा।

१५–अजयवर्मा।

इसने अपने भाई जयवर्मासे राज्य छीना और अपने वंशजोंकी नई ' ख ' शाखा चलाई। यह ' ख ' शाखा लक्ष्मीवर्माकी प्रारम्भकी हुई ' क ' शाखासे बराबर लड़ती झगड़ती रही। उस समय धारापर इसी ' ख ' शाखाका अधिकार था। इसलिये यह विशेष महत्त्वकी थी।

१६–विन्ध्यवर्मा।

यह अजयवर्माका पुत्र था। अर्जुनवर्माके ताम्रपत्रमें यह 'वीरमूर्धन्य' लिखा गया है। इसने गुजरातवालोंके आधिपत्यको मालवेसे हटाना चाहा। ई०सं० ११७६ में गुजरातका राजा अजयपाल मर गया। उसके मरते ही गुजरातवालोंका अधिकार भी मालवेपर शिथिल हो गया। इससे मालवेके कुछ भागों पर परमारोंने फिर दखल जमा लिया। परन्तु यशोवर्माके समयसे ही वे सामन्तोंकी तरह रहने लगे। मालवे पर पूरी प्रभुता उन्हें न प्राप्त हो सकी।

सुरथोत्सव नामक काव्यमें सोमेश्वरने विन्ध्यवर्मा और गुजरातवालोंके बीच वाली लड़ाईका वर्णन किया है। उसमें लिखा है कि चौलुक्योंके सेनापतिने परमारोंकी सेनाको भगा दिया तथा गोगस्थान नामक गाँवको बरबाद कर दिया।

विन्ध्यवर्मा भी विद्याका बड़ा अनुरागी था। उसके मन्त्रीका नाम बिल्हण था। यह बिल्हण विक्रमाङ्कदेवचरितके कर्ता, काश्मीरके बिल्हण कविसे, भिन्न था। अर्जुनवर्मा और देवपालदेवके समय तक यह इसी पद पर रहा।

मांडूमें मिले हुए विन्ध्यवर्माके लेखमें बिल्हणके लिए लिखा है:—

" विन्ध्यवर्मनृपतेः प्रसादभूः। सान्धिविग्रहिकबिल्हणः कविः।"

अर्थात्—बिल्हण कवि विन्ध्यवर्माका कृपापात्र था और उसका परराष्ट्र-सचिव (Foreign Minister) भी था।

आशाधरने भी अपने धर्मामृत नामक ग्रन्थमें पूर्वोक्त बिल्हणका जिक्र किया है।

आशाधर।

ई० स० ११९२ में दिल्लीका चौहान राजा पृथ्वीराज, मुअज़ुद्दीन साम (शहाबुद्दीन गोरी) द्वारा हराया गया। इससे उत्तरी हिन्दुस्तान मुसलमानोंके अधिकारमें चला गया तथा वहाँके हिन्दू विद्वानोंको अपना देश छोड़ना पड़ा। इन्हीं विद्वानोंमें आशाधर भी था, जो उस समय मालवेमें जा रहा।

अनेक ग्रन्थोंका कर्ता जैनकवि आशाधर सपादलक्ष-देशके मण्डलकर-नामक गाँवका रहनेवाला था। यह देश चौहानोंके अजमेर-राज्यके अन्तर्गत था। मण्डलकरसे मतलब मेवाड़के माँडलगढ़से है। इसकी जाति व्याघ्रेरवाल (बघेरवाल) थी। इसके पिताका नाम सल्लक्षण और माताका रत्नी था। इसकी स्त्री सरस्वतीसे चाहड़ नामक पुत्र हुआ। आशाधरकी कविताका जैन-विद्वान् बहुत आदर करते थे। यहाँ तक कि जैनमुनि उदयसेनने उसे कलि-कालिदासकी उपाधि दी थी। धारामें इसने धरसेनके शिष्य महावीरसे जैनेन्द्रव्याकरण और जैनसिद्धान्त पढ़े। विन्ध्यवर्माके सान्धिविग्रहिक बिल्हण कविसे इसकी मित्रता हो गई। आशाधरको बिल्हण कविराज कहा करता था। आशाधरने अपने गुणों-से विन्ध्यवर्माके पौत्र अर्जुनवर्माको भी प्रसन्न कर लिया। उसके राज्य-समयमें जैनधर्मकी उन्नतिके लिए आशाधर नालछा (नलकच्छ-पुर) के नेमिनाथके मन्दिरमें जा रहा। उसने देवेन्द्र आदि विद्वानोंको

व्याकरण, विशालकीर्ति आदिकोंको तर्कशास्त्र, विनयचन्द्र आदिको जैनसिद्धान्त तथा बालसरस्वती महाकवि मदनको काव्यशास्त्र पढ़ाया।

आशाधरने अपने बनाये हुए ग्रन्थोंके नाम इस प्रकार दिये हैं:—(१) प्रमेयरत्नाकर (स्याद्वादमतका तर्कग्रन्थ), (२) भरतेश्वराभ्युदय काव्य और उसकी टीका, (३) धर्मामृतशास्त्र, टीकासहित (जैनमुनि और श्रावकोंके आचारका ग्रन्थ), (४) राजीमतीविप्रलम्भ (नेमिनाथविषयक खण्ड-काव्य), (५) अध्यात्मरहस्य (योगका), यह ग्रन्थ उसने अपने पिताकी आज्ञासे बनाया था, (६) मूलाराधना-टीका, इष्टोपदेश टीका, चतुर्विंशतिस्तव आदिकी टीका, (७) क्रियाकलाप (अमरकोष-टीका), (८) रुद्रट-कृत काव्यालङ्कार पर टीका, (९) सटीक सहस्रनामस्तव (अर्हतका), (१०) सटीक जिनयज्ञकल्प, (११) त्रिषष्ठिस्मृति (आर्ष महापुराणके आधार पर ६३ महापुरुषोंकी कथा), (१२) नित्यमहोद्योत (जिनपूजनका), (१३) रत्नत्रयविधान (रत्नत्रयकी पूजाका माहात्म्य) और (१४) वाग्भटसंहिता (वैद्यक) पर अष्टाङ्गहृदयोद्योत नामकी टीका। उल्लिखित ग्रन्थोंमेंसे त्रिषष्ठिस्मृति वि० सं० १२९२ में और भव्यकुमुदचन्द्रिका नामकी धर्मामृतशास्त्र पर टीका वि० सं० १३०० में समाप्त हुई। यह धर्मामृतशास्त्र भी आशाधरने देवपालदेवके पुत्र जैतुगिदेवके ही समयमें बनाया था।

१७–सुभटवर्मा।

यह विन्ध्यवर्माका पुत्र था। उसके पीछे गद्दी पर बैठा। इसका दूसरा नाम सोहड़ भी लिखा मिलता है। वह शायद सुभटका प्राकृत रूप होगा। अर्जुनवर्माके ताम्रपत्रमें लिखा है कि सुभटवर्माने अनहिलवाड़ा (गुजरात) के राजा भीमदेव दूसरेको हराया था।

प्रबन्धचिन्तामणिमें लिखा है कि गुजरातको नष्ट करनेकी इच्छासे

(१) प्रबन्धचिन्तामणि, पृष्ठ २४५।

मालवेके राजा सोहडने भीमदेव पर चढाई की। परन्तु जिस समय वह गुजरातकी सरहद्के पास पहुँचा उस समय भीमदेवके मन्त्रीने उसे यह श्लोक लिख भेजा —

प्रतापो राजमार्तण्ड पूर्वस्यामेव राजते।
स एव विलयं याति पश्चिमाशावलम्बिन ॥ १ ॥

अर्थात्—हे नृपसूर्य! सूर्यका प्रताप पूर्व दिशाहीमें शोभायमान होता है। जब वह पश्चिम दिशामें जाता है तब नष्ट हो जाता है। इस श्लोकको सुन कर सोहड लौट गया।

कीर्तिकौमुदीमें[1] लिखा है कि भीमदेवके राज्य-समयमें मालवेके राजा (सुभटवर्माने) ने गुजरात पर चढाई की। परन्तु बघेल लवणप्रसादने उसे पीछे लौट जानेके लिये बाध्य किया।

इन लेखोंसे भी अर्जुनवर्माके ताम्रपत्रमें कही गई बातहीकी पुष्टि होती है। सम्भवत इस चढाईमें देवगिरिका यादव राजा सिंघण भी सुभटवर्माके साथ था। शायद उस समय सुभटवर्मा, सिंघणके सामन्तकी हैसियतमें, रहा होगा। क्योंकि बम्बई गैज़ेटियर आदिसे सिंघणका सुभटवर्माको अपने अधीन कर लेना पाया जाता है[2]। इन उल्लिखित प्रमाणोंसे यह अनुमान भी होता है कि गुजरात पर की गई यह चढाई ई० स० १२०९–१० के बीचमें हुई होगी।

इसके पुत्रका नाम अर्जुनवर्मदेव था।

१८–अर्जुनवर्मदेव।

यह अपने पिता सुभटवर्माका उत्तराधिकारी हुआ। यह विद्वान्, कवि और गान विद्यामें निपुण था। इसके तीन ताम्रपत्र मिले हैं, उनमें

(१) कीर्तिकौमुदी, २–७४।
(२) Bombay Gazetteer, Vol I, Pt II, p 240.

प्रथम ताम्रपत्र वि० सं० १२६७ (ई० स० १२१०) का है। वह मण्डपदुर्गमें दिया गया था। दूसरा वि० सं० १२७० (ई० स० १२१३) का है[2]। वह भृगुकच्छमें सूर्यग्रहण पर दिया गया था। तीसरा वि० सं० १२७२ (ई० स० १२१५) का है[3]। वह अमरेश्वरमें दिया गया था। यह अमरेश्वर तीर्थ रेवा और कपिलाके सङ्गम पर है। इन ताम्रपत्रोंसे अर्जुनवर्माका ६ वर्षसे अधिक राज्य करना प्रकट होता है। ये ताम्रपत्र गौडजातिके ब्राह्मण मदन द्वारा लिखे गये थे। इनमें अर्जुनवर्माका खिताब महाराज लिखा है और वंशावली इस प्रकार दी गई है:—भोज, उदयादित्य, नरवर्मा, यशोवर्मा, अजयवर्मा, विन्ध्यवर्मा, सुभटवर्मा और अर्जुनवर्मा। इसके ताम्रपत्रोंसे यह भी प्रकट होता है कि इसने युद्धमें जयसिंहको हराया था। इस लड़ाईका जिक्र पारिजातमञ्जरी नामक नाटिकामें भी है। इस नाटिकाका दूसरा नाम विजयश्री और इसके कर्ताका नाम बालसरस्वती मदन है। यह मदन अर्जुनवर्माका गुरु और आशाधरका शिष्य था। इस नाटिकाके पूर्वके दो अङ्कोंका पता, ई० स० १९०३ में, श्रीयुत काशीनाथ लेले महाशयने लगाया था[4]। ये एक पत्थरकी शिला पर खुदे हुए हैं। यह शिला कमाल मौला मसजिदमें लगी हुई है। इस नाटिकामें लिखा है कि यह युद्ध पर्व-पर्वत (पावागढ) के पास हुआ था। शायद यह मालवा और गुजरातके बीचकी पहाड़ी होगी। यह नाटिका प्रथम ही प्रथम सरस्वतीके मन्दिरमें वसन्तोत्सव पर खेली गई थी। इसमें चौलुक्यवंशकी सर्वकला नामक रानीकी ईर्ष्याका वर्णन भी है। अर्जुनवर्मदेवके मन्त्रीका नाम नारायण था। इस नाटिकामें धारा नगरीका वर्णन इस प्रकार किया गया है:—धारामें चौरासी चौक और अनेक सुन्दर मन्दिर थे। उन्हींमें सरस्वतीका भी एक

---

(१) J. B. A. S, Vol V, p. 378. (२) J. A. O S, Vol. VII, p 32. (३) J. A O S, Vol VII, p. 25. (४) Parmars of Dhar and Malwa, p. 39.

मन्दिर था (यह मन्दिर अब कमाल मौला मसजिदमें परिवर्तित हो गया है)। वहीं पर प्रथम वार यह खेल खेला गया था।

पूर्वोक्त जयसिंह गुजरातका सोलङ्की जयसिंह होगा। भीमदेवसे इसने अनहिलवाडेका राज्य छीन लिया था। परन्तु अनुमान होता है कि कुछ समय बाद इसे हटा कर अनहिलवाडे पर भीमने अपना अधिकार कर लिया था। वि०स० १२८० का जयसिंहका एक ताम्रपत्र[1] मिला है। उसमें उसका नाम जयन्तसिंह लिखा है, जो जयसिंह नामका दूसरा रूप है।

प्रबन्धचिन्तामणिमें लिखा है कि भीमदेवके समयम अर्जुनवर्माने गुजरातको बरबाद किया था। परन्तु अर्जुनवर्माके वि०स० १२७२ तकके ताम्रपत्रोंमें इस घटनाका उल्लेख नहीं है। इससे शायद यह घटना वि०स० १२७२ के बाद हुई होगी।

वि०स० १२७५ का एक लेख देवपालदेवका मिला है। अतएव अर्जुनवर्माका देहान्त वि०स० १२७२ और १२७५ के बीच किसी समय हुआ होगा। इसने अमरुशतक पर रसिक-सञ्जीवनी नामकी टीका बनाई थी, जो काव्यमालामें छप चुकी है।

१९-देवपालदेव।

यह अर्जुनवर्माका उत्तराधिकारी हुआ। इसके नामके साथ ये विशेषण पाये जाते हैं —"समस्त प्रशस्तोपेतसमधिगतपञ्चमहाशब्दालङ्कार विराजमान"। इनसे प्रतीत होताहै कि इसका सम्बन्ध महाकुमार लक्ष्मी वर्माके वंशजोंसे था, न कि अर्जुनवर्मासे। क्योंकि ये विशेषण उन्हीं महाकुमारोंके नामोंके साथ लगे मिलते हैं। इससे यह भी अनुमान होता है कि शायद अर्जुनवर्माके मृत्युसमयमें कोई पुत्र न था इसलिए उसके मृत्युके

(१) Ind Ant, Vol VI, p 196

साथ ही 'ख' शाखाकी भी समाप्ति हो गई और मालवेके राज्यपर 'क' शाखावालोंका अधिकार हो गया। मालवा-राज्यके मालिक होनेके बाद देवपालदेवने—"परमभट्टारक-महाराजाधिराज परमेश्वर" आदि स्वतन्त्र राजाके खिताब धारण किये थे।

उसके समयके चार लेख मिले हैं। पहला वि० सं० १२७५ (ई०स० १२१८) का, हरसौदा ग्रामको। दूसरा वि० सं० १२८६ (ई० स० १२२९) को। तीसरा वि० सं० १२८२ (ई० स० १२३२) को। ये दोनों उदयपुर (ग्वालियर) से मिले हैं। चौथा वि० सं० १२८२ (ई० स० १२२५) का एक ताम्रपत्र है। यह ताम्रपत्र हालहीमें मान्धाता गाँवमें मिला है। यह माहिष्मती नगरीसे दिया गया था। इस गाँवको अब महेश्वर कहते हैं। यह गाँव इन्दोर-राज्यमें है।

देवपालदेवके राज्य-समय अर्थात् वि० सं० १२९२ (ई०स० १२३५)में आशाधरने त्रिषष्टिस्मृति नामक ग्रन्थ समाप्त किया तथा वि० सं० १३०० (ई० स० १२४३) में जयतुगीदेवके राज्य-समयमें धर्मामृतकी टीका लिखी। इससे प्रतीत होता है कि वि० सं० १२९२ और १३०० के बीच किसी समय देवपालदेवकी मृत्यु हुई होगी। इसी कविके बनाये जिन-यज्ञकल्प नामक पुस्तकमें ये श्लोक हैः—

> विक्रमवर्षसपंचाशीतिद्वादशशतेष्वतीतेषु।
> आश्विनसितान्त्यदिवसे साहसमल्लापराख्यस्य॥
> श्रीदेवपालनृपतेः प्रमारकुलशेखरस्य सौराज्ये।
> नलकच्छपुरे सिद्धो ग्रन्थोऽयं नेमिनाथचैत्यगृहे॥

इनसे पाया जाता है कि वि० सं० १२८५, आश्विनशुक्ला पूर्णिमाके दिन, नलकच्छपुरमें, यह पुस्तक समाप्त हुई। उस समय देवपाल राजा था, जिसका दूसरा नाम साहसमल्ल था।

(१) Ind. Ant , Vol XX, p. 3.1 (२) Ind. Ant , Vol XX, p 83.
(३) Ind. Ant., Vol. XX, p 83 (४) Ep. Ind , Vol IX, p. 103.

देवपालदेवके समयमें मालवेके आसपास मुसलमानोंके हमले होने लगे थे। हिजरी सन् ६३० (ई० स० १२३२) म दिल्लीके बादशाह शमसुद्दीन अल्तमशने गवालियर ले लिया तथा तीन वर्ष बाद मिलसा और उज्जेनपर भी उसका अधिकार हो गया। उज्जैनपर अधिकार करके अल्तमशने महाकालके मन्दिरको तोड़ डाला और वहाँसे विक्रमादित्यकी मूर्ति उठवा ले गया। परन्तु इस समय उज्जेनपर मुसल्मानोंका पूरा पूरा दखल नहीं हुआ। मालवा और गुजरातवालोंके बीच भी यह झगडा बराबर चलता था। चन्द्रावतीके महामण्डलेश्वर सोमसिहने मालवेपर हमला किया। परन्तु देवपालदेव द्वारा वह हराया जाकर कैद कर लिया गया। यह सोमसिह गुजरातवालोंका सामन्त था।

तारीख फरिश्तामें लिखा है कि हिजरी सन् ६२९ (ई० स० १२३१= वि० स० १२८८) में शमसुद्दीन अल्तमशन गवालियरके किलेके चारों तरफ घेरा डाला। यह किला अल्तमशके पूर्वाधिकारी आरामशाहके समयमें फिर भी हिन्दू राजाओंके अधिकारमें चला गया था। एक साल तक घिरे रहनेके बाद वहाँका राजा देवबल (देवपाल) रातके समय किला छोड कर भाग गया। उस समय उसके तीन सौसे अधिक आदमी मारे गये। गवालियरपर शमसुद्दीनका अधिकार हो गया। इस विजयके अनन्तर शमसुद्दीनने भिलसा और उज्जैनपर भी अधिकार जमाया। उज्जेनमें उसने महाकालके मन्दिरको तोडा। यह मन्दिर सोमनाथके मन्दिरके ढँग पर बना हुआ था। इस मन्दिरके इर्द गिर्द सौ गज ऊँचा कोट था। कहते हैं, यह मन्दिर तीन वर्षमें बनकर समाप्त हुआ था। यहाँसे महाकालकी मूर्ति, प्रसिद्ध वीर विक्रमादित्यकी मूर्ति और बहुत सी पीतलकी बनी अन्य मूर्तियाँ भी अल्तमशके हाथ लगीं। उनको वह देहली ले गया। वहाँ पर वे मसजिदके द्वारपर तोड़ी गई।

तबकात-ए नासिरीमें गवालियरके राजाका नाम मलिकदेव और

उसके पिताका नाम बासिल लिखा है तथा उसके फतह किये जानेकी तारीख हि० स० ६३० (वि० सं० १२८९, पौष) सफर महीना, तारीख २६, मङ्गलवार, लिखी है। इन बातोंसे प्रकट होता है कि यद्यपि कछवाहोंके पीछे गवालियर मुसलमानोंके हाथमें चला गया था, तथापि देवपालदेवके समयमें उस पर परमारोंहीका अधिकार था। इसमें अल्तमशको उसे घेर कर पड़ा रहना पड़ा। शमसुद्दीनके लौट जाने पर देवपाल ही मालवेका राजा बना रहा। ऐसी प्रसिद्धि है कि इन्दोरसे तीस मील उत्तर, देवपालपुरमें देवपालने एक बहुत बड़ा तालाब बनवाया था।

इसका उत्तराधिकारी इसका पुत्र जयसिंह (जेतुगी) देव हुवा।

२०–जयसिंहदेव (दूसरा)।

यह अपने पिता देवपालदेवका उत्तराधिकारी हुआ। इसको जेतुगिदेव भी कहते थे। जयन्तसिंह, जयसिंह, जैत्रसिह और जेतुगी ये सब जयसिंहके ही रूपान्तर हैं। यद्यपि इस राजाका विशेष वृत्तान्त नहीं मिलता तथापि इसमें सन्देह नहीं कि मुसलमानोंके दबावके कारण इसका राज्य निर्बल रहा होगा। वि० सं० १३१२ (ई० स० १२५५) का इसका एक शिलालेख राहतगढमें मिला है। इसीके समयमें, वि०सं० १३०० में आशाधरने धर्मामृतकी टीका समाप्त की।

२१–जयवर्मा (दूसरा)।

यह जयसिंहका छोटा भाई था। वि० सं० १३१३ के लगभग यह राज्यासनपर बैठा। वि० सं० १३१४ (ई० स० १२५७) का एक लेख-खण्ड मोरी गाँवमें मिला है। यह गाँव इन्दोर-राज्यके मानपुरा जिलेमें है। इसमें लिखा है कि माघवदी प्रतिपदाके दिन जयवर्मा द्वारा

(१) Ind. Ant. Vol. XX, P. 84. (२) Parmars of Dhar and Malwa, p. 40.

ये दान दिये गये। परन्तु लेख खण्डित है। इससे क्या क्या दिया गया, इसका पता नहीं चलता। वि० सं० १३१७ (ई० स० १२६०) का, इसी राजाका, एक और भी ताम्रपत्र मान्धाता गाँवमें मिला है[1]। यह मण्डपदुर्गसे दिया गया था। इस पर परमारोंकी मुहर-स्वरूप गरुड और सर्पका चिह्न मौजूद है। यह दान अमरेश्वर-क्षेत्रमें (कपिला और नर्मदाके सङ्गम पर स्नान करके) दिया गया था। उस समय इस राजाका मन्त्री मालाधर था।

२२-जयसिंहदेव (तीसरा)।

यह जयवर्माका उत्तराधिकारी हुआ। वि० सं० १३२६ (ई० स० १२६९) का इसका एक लेख पथारी गाँवमें मिला है[2]। परन्तु इसमें इसकी वंशावली नहीं है। विशालदेवके एक लेखमें[3] लिखा है कि उसने धारापर चढ़ाई की और उसे लूटा। यह विशालदेव अनहिलवाड़े--का बघेल राजा था। परन्तु इसमें मालवेके राजाका नाम नहीं लिखा। यह चढाई इसी जयसिंहदेवके समयमें हुई या इसके उत्तराधिकारियोंके समयमें, यह बात निश्चय-पूर्वक नहीं कह सकते। ऐसा कहते हैं कि गुजरातके कवि व्यास गणपतिने धाराके इस विजयपर एक-काव्य लिखा थी।

२३-भोजदेव (दूसरा)।

हम्मीर-महाकाव्यके अनुसार यह जयसिंहका उत्तराधिकारी हुआ। ई० स० ११९२ में दिल्लीका राजा पृथ्वीराज मारा गया। उसी साल अजमेर भी मुसलमानोंके हाथमें चला गया। मुसलमानोंने अजमेरमें अपनी तरफसे पृथ्वीराजके पुत्रको अधिष्ठित किया। परन्तु बहुतसे

(१) Ep Ind , Vol IX, p 117. (२) K. N. I ,232. (३) Ind. Ant., Vol. VI, p. 191. (४) K. N. I., 233.

चहुवानोंने मुसलमानोंकी अधीनताको अनुचित समझा। इससे वे पृथ्वीराजके पोते गोविन्दराजकी अध्यक्षतामें रणथंभोर चले गये। ई० स० १३०१ में उसे भी मुसलमानोंने छीन लिया। तारीख-ए-फीरोजशाहीके लेखानुसार हम्मीरको, जो उस समय रणथभोरका स्वामी था, अलाउद्दीन खिलजीने मार डाला। ऐसा भी कहा जाता है कि मालवेके राजाको चहुवान वाग्भटको मारनेकी अनुमति दी गई थी। परन्तु वाग्भट बचकर निकल गया। यद्यपि यह स्पष्टतया नहीं कह सकते कि उस समय मालवेका राजा कौन था, तथापि वह राजा जयसिंह (तृतीय) हो तो आश्चर्य नहीं। इसका बदला लेनेको ही शायद, कुछ वर्ष बाद, हम्मीरने मालवेपर चढाई की होगी।

हम्मीर चहुवान वाग्भटका पोता था। वि० सं० १३३९ (ई० स० १२८२) में यह राज्यपर बैठा। इसने अनेक हमले किये। इसके द्वारा धारापर किये गये हमलेका वर्णन कविने इस प्रकार किया है—"उस समय वहाँपर कवियोंका आश्रयदाता भोज (दूसरा) राज्य करता था। उसको जीतकर हम्मीर उज्जैनकी तरफ चला। वहाँ पहुँचकर उसने महाकालके दर्शन किये। फिर वहाँसे वह चित्रकूट (चित्तौड) की तरफ रवाना हुआ। फिर आबूकी तरफ जाते हुए मेदपाट (मेवाड़) को उसने बरबाद किया। यद्यपि वह वेदानुयायी था, तथापि आबूपर पहुँचकर उसने पहाडीपर प्रतिष्ठित जैनमन्दिरके दर्शन किये। ऋषभदेव और वस्तुपालके मन्दिरोंकी सुन्दरताको देख कर उसके चित्तमें बडा आश्चर्य हुआ। उसने अचलेश्वर महादेवके भी दर्शन किये। तदनन्तर आबूके परमार-राजाको अपने अधीन करके वहाँसे हम्मीर वर्धमानपुरकी तरफ चला। वहाँ पहुँचकर उसने उस नगरको लूटा।"

हम्मीरका समय ई० स० १२८३ और १३०८ के बीच पड़ता है। उस समय मालवेका राजा भोज (दूसरा) था, ऐसा हम्मीर महाकाव्यके नव सर्गके इन श्लोकोंसे प्रतीत होता है। देखिए —

> ततो मण्डलकृद्दुर्गात्करमादाय सत्वरम्।
> ययौ धारां धरासारां वीरां राशिर्महौजसाम्॥ १७॥
> परमारान्वयप्रौढो भोजो भोज इवापरः।
> तत्राम्भोजमिवानेन राज्ञा म्लानिमनीयत॥ १८॥

अर्थात्—वह प्रतापका समुद्र (हम्मीर) मण्डलकर किलेसे कर लेकर धाराकी तरफ चला। वहाँ पहुँचकर उसने परमार-राजा भोजको, जो कि प्राचीन प्रसिद्ध भोजके समान था, कमलकी तरहसे मुरझा दिया।

अब्दुल्लाशाह चङ्गालकी कब्र जो धारामें है उसके लेखका उल्लेख[1] हम पूर्व ही कर चुके हैं। उसमें उस फकीरकी करामतोंके प्रभावसे भोजका मुसलमानी धर्म अङ्गीकार करना लिखा है। यही कथा गुलदस्ते अब्र नामकी उर्दूकी एक छोटीसी पुस्तकमें भी लिखी है। परन्तु इस बातका प्रथम भोजके समयमें होना तो दुस्सम्भव ही नहीं, बिल्कुल असम्भव ही है। क्योंकि उस समय मालवेमें मुसलमानोंका कुछ भी दौर-दौरा न था, जिनके भयसे भोज जैसा विद्वान् और प्रतापी राजा भी मुसलमान हो जाता। अब रहा द्वितीय भोज। सो सिवा शाह-चङ्गालके लेख और गुलदस्ते अब्रके किसी और फारसी तवारीखमें उसका मुसलमान होना नहीं लिखा। हिजरी ८५९ (ई० स० १४५५) का लिखा हुआ—होनेसे शाह-चङ्गालका लेख भी दूसरे भोजके समयसे डेढ़ सौ वर्ष बादका है। अतः, सम्भव है, कब्रकी महिमा बढ़ानेको किसीने यह कल्पित लेख पीछेसे लगा दिया होगा।

---

(१) J B R A S, Vol XXI, p 35°

बघेलोंके एक लेखमें लिखा है कि अनहिलवाडाके सारङ्गदेवने यादव-राजा और मालवेके राजाको एक साथ हराया। उस समय यादवराजा रामचन्द्र थो।

२४ जयसिंहदेव (चतुर्थ)।

यह भोज द्वितीयका उत्तराधिकारी हुआ। वि० सं० १३६६ (ई० स० १३०९), श्रावण वदी द्वादशीका एक लेख जयसिंह देवका मिला है[१]। सम्भवतः वह इसी राजाका होगा। इस लेखके विषयमें डाक्टर कीलहार्नका अनुमान है कि वह देवपालदेवके पुत्र जयसिंहका नहीं, किन्तु वहाँके इसी नामके किसी दूसरे राजाका होगा। क्योंकि इस लेखको देवपालके पुत्रका माननेसे जयसिंहका राज्य-काल ६६ वर्षसे भी अधिक मानना पड़ेगा। परन्तु अब उसके पूर्वज जयवर्माके लेखके मिल जानेसे यह लेख जयसिह चतुर्थका मान लें तो इस तरहका एतराज करनेके लिए जगह न रहेगी। यह लेख उदयपुर (ग्वालियर) में मिला है।

मालवेके परमार-राजाओंमें यह अन्तिम राजा था। इसके समयसे मालवेपर मुसलमानोंका दखल हो गया तथा उनकी अधीनतामें बहुतसे छोटे छोटे अन्य राज्य बन गये। उनमेंसे कोक नामक भी एक राजा मालवेका था। तारीख-ए-फरिश्तामें लिखा है:—हिजरी सन् ७०४ (ई० स० १३०५) में चालीस हजार सवार और एक लाख पैदल फौज लेकर कोकने ऐनुलमुल्कका सामना किया। शायद यह राजा परमार ही हो। उज्जैन, माण्डू, धार और चन्देरीपर ऐनुलमुल्कने अधिकार कर लिया था। उस समयसे मालवेपर मुसलमानोंकी प्रभुता बढ़ती ही गई।

(१) Ep. Ind., Vol I, p. 271. (२) Ind. Ant., Vol. XX, p. 84.

वि० सं० १४९६ (ई० स० १४३९) के गुहिलोंके लेखमें लिखा है कि मालवेका राजा गोगादेव लक्ष्मणसिंह द्वारा हराया गया थो। मिराते सिकन्दरीमें लिखा है कि हि० स० ७९९ (ई० स० १३९७=वि० सं० १४५४) के लगभग यह खबर मिली कि माण्डूका हिन्दू-राजा मुसलमानों पर अत्याचार कर रहा है। यह सुनकर गुजरातके बादशाह जफरखाँ (मुजफ्फर, पहले) ने माण्डू पर चढ़ाई की। उस समय वहाँका राजा अपने मजबूत किलेमें जा घुसा। एक वर्ष और कुछ महिने वह जफरखाँ द्वारा घिरा रहा। अन्तमें उसने मुसलमानों पर अत्याचार न करने और कर देनेकी प्रतिज्ञायें करके अपना पीछा छुड़ाया। जफरखाँ वहाँसे अजमेर चला गया।

तबकाते अकबरी और फरिश्तामें माण्डूके स्थान पर माण्डलगढ लिखा है। उक्त संवत्‌के पूर्व ही मालवे पर मुसलमानोंका अधिकार हो गया था। इसलिए मिराते सिकन्दरीके लेख पर विश्वास नहीं किया जा सकता। राजपूतानेके प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता श्रीमान् मुन्शी देवीप्रसादजीका अनुमान है कि यह माण्डू शब्द मण्डोरकी जगह लिख दिया गया है।

शमसुद्दीन अल्तमशके पीछे हि० स० ६९० (ई० स० १२९१=वि० सं० १३४८) में जलालुद्दीन फीरोजशाह खिलजीने उज्जैन पर दखल कर लिया। उसने अनेक मन्दिर तोड डाले। इसके दो वर्ष बाद, वि० सं १३५० में, फिर उसने मालवे पर हमला किया और उसे लूटा, तथा उसके भतीजे अलाउद्दीनने भिलसाको फतह करके मालवेके पूर्वी हिस्से पर भी अधिकार कर लिया।

मिराते सिकन्दरीसे ज्ञात होता है कि हि० स० ७४४ (ई० स० १३४४=वि० सं० १४०१) के लगभग मुहम्मद तुगलकने मालवेका सारा इलाका अजीज हिमारके सुपुर्द किया। इसी हिमारको उसने धाराका

(१) Bhavanagar Insep 114 (२) Bailey's Gujrat p 43

प्रथम अधिकारी बनाया था । इससे अनुमान होता है कि मुहम्मद तुगलकने ही मालवेके परमार-राज्यकी समाप्ति की ।

यद्यपि फीरोजशाह तुगलकके समय तक मालवेके सूबेदार दिल्लीके अधीन रहे, तथापि उसके पुत्र नासिरुद्दीन महमूदशाहके समयमें दिलावरखाँ गोरी स्वतन्त्र हो गया । इस दिलावरखाँको नासिरुद्दीनने हि० स० ७९३ (वि० सं० १४४८.) में मालवेका सूबेदार नियत किया था ।

हि० स० ८०१ (वि० सं० १४५६) में, जिस समय तैमूरके भयसे नासिरुद्दीन दिल्लीसे भागा और दिलावरखाँके पास धारामें आ रहा, उस समय दिलावरने नासिरुद्दीनकी बहुत खातिरदारी की । इस बातसे नाराज होकर दिलावरखाँका पुत्र होशङ्ग माण्डू चला गया । वहाँके दृढ दुर्गकी उसने मरम्मत कराई । उसी समयसे मालवेकी राजधानी माण्डू हुई ।

मालवे पर मुसलमानोंका अधिकार हो जानेपर परमार राजा जयसिंहके वंशज जगनेर, रणथंभोर आदिमें होते हुए मेवाड़ चले गये । वहाँ पर उनको जागीरमें बीजोल्याका इलाका मिला । ये बीजोल्यावाले धाराके परमार-वंशमें पाटवी माने जाते हैं ।

इस समय मालवेमें राजगढ और नरसिंहगढ, ये दो राज्य परमारोंके हैं । उनके यहाँकी पहलेकी तहरीरोंसे पाया जाता है कि वे अपनेको उदयादित्यके छोटे पुत्रोंकी सन्तान मानते हैं और बीजोल्यावालोंको अपने वंशके पाटवी समझते हैं । यद्यपि बुन्देलखण्डमें छत्रपुरके तथा मालवेमें धार और देवासके राजा भी परमार हैं, तथापि अब उनका सम्बन्ध मरहटोंसे हो गया है ।

सारांश ।

मालवेके परमार-वंशमें कोई साढे चार या पाँच सौ वर्ष तक राज्य रहा।

उस वंशकी चौबीसवीं पीढीमें उनका राज्य मुसलमानोंने छीन लिया। इस वंशमें मुञ्ज और भोज (प्रथम) ये दो राजा बडे प्रतापी, विख्यात और विद्यानुरागी हुए। उनके बनवाये हुए अनेक स्थानोंके खँडहर अब-तक उनके नामकी मुहरको छातीपर धारण किये संसारमें अपने बनवाने-वालोंका यश फैला रहे हैं। धारा, माण्डू और उदयपुर (गवालियर) में परमारों द्वारा बनवाये गये मन्दिर आदिक उक्त वंशकी प्रसिद्ध यादगार हैं।

परमारोंकी उन्नतिके समयमें उनका राज्य भिलसासे गुजरातकी सरहद तक और मन्दसोरके उत्तरसे दाक्षिणमें तापती तक था। इस राज्यमें मण्डलेश्वर, पट्टकिल आदिक कई अधिकारी होते थे। राजाको राज-कार्यमें सलाह देनेवाला एक सान्धि विग्रहिक (Minister of Peace and War) होता था। यह पद ब्राह्मणोंहीको मिलता था।

सिन्धुराजके समय तक उज्जैन ही राजधानी थी। परन्तु पीछेसे भोजने धारा नगरीको राजधानी बनाया। इसी कारण भोजका खिताब धारेश्वर हुआ। उसका दूसरा खिताब मालवचक्रवर्ती भी था। परमारोंका मामूली खिताब—"परमभट्टारक महाराजाधिराज-परमेश्वर" लिखा मिलता है।

इस वंशके राजा शैव थे। परन्तु विद्वान होनेके कारण जैन आदिक अन्य धर्मोंसे भी उन्हें द्वेष न था। बहुधा वे जैन विद्वानोंके शास्त्रार्थ सुना करते थे।

परमारोंकी मुहरमें गरुड और सर्पका चिह्न रहता था।

परमारोंके अनेक ताम्रपत्र मिले हैं। उनसे इनकी दानशीलताका पता चलता है। भविष्यमें और भी दानपत्रों आदिके मिलनेकी आशा है।

---

(१) Ep Ind, Vol III

पड़ोसी राज्य ।

अब हम उस समयके मालवेके निकटवर्ती उन राज्योंका भी संक्षिप्त वर्णन करते हैं जिनसे परमारोंका घनिष्ठ सम्बन्ध था । वे राज्य ये थे:—

गुजरातके चौलुक्यों और बघेलोंका राज्य, दाक्षिणके चौलुक्योंका राज्य, चेदिवालों और चन्देलोंका राज्य ।

गुजरात ।

अठारहवीं सदीके मध्यमें वल्लभी-राज्यका अन्त हो गया । उसके उपरान्त चावड़ा-वंश उन्नत हुआ । उसने अणहिल्लपाटण (अनहिलवाड़ा) नामक नगर बसाया । कोई दो सौ वर्षों तक वहाँ पर उसका राज्य रहा । ई० स० ९४१ में चौलुक्य (सोलङ्की) मूलराजने चावड़ोंसे गुजरात छीन लिया । उस समयसे ई० स० १२३५ तक, गुजरातमें, मूलराजके वंशजोंका राज्य रहा । परन्तु ई० स० १२३५ में धौलकाके बघेलोंने उनको निकाल कर वहाँ पर अपना राज्य-स्थापन कर दिया । ई० स० १२९६ में मुसलमानोंके द्वारा वे भी वहाँसे हटाये गये । गुजरात वालोंके और परमारोंके बीच बराबर झगड़ा रहता था ।

दाक्षिणके चौलुक्य ।

ई० स० ७५३ से ९७३ तक, दक्षिणमें, मान्यखेटके राष्ट्रकूटोंका बड़ा ही प्रबल राज्य रहा । इनका राज्य होनेके पूर्व वहाँके चौलुक्य भी बड़े प्रतापी थे । उस समय उन्होंने कन्नौजके राजा हर्षवर्धनको भी हरा दिया था । परन्तु, अन्तमें, इस राष्ट्रकूटवंशके चौथे राजा दान्तिदुर्ग द्वारा वे हराये गये । ऐसा भी कहा जाता है कि दान्तिदुर्गने मालवा-विजय करके उज्जैनमें बहुतसा दान दिया था । उसके पुत्र कृष्णके समयमें राष्ट्रकूटोंका बल और भी बढ़ गया था । कृष्णने इलोरा पर कैलास

(१) A. S. W. I., No 10, p. 92.

-नामक मन्दिर बनवाया। यह मन्दिर पर्वतमें ही खोदकर बनाया गया है। इनके वंशमें आठवाँ राजा गोविन्द (द्वितीय) हुआ। उसके समयमें इनका राज्य मालवेकी सीमा तक पहुँच गया था। लाट देश (भड़ोंच) को जीत कर वहाँका राज्य गोविन्दने अपने भाई इन्द्रको दे दिया। इन्द्रसे इस वंशकी एक नई शाखा चली।

इसी राष्ट्रकूट-वंशके ग्यारहवें राजा अमोघवर्षने मान्यखेट बसाया था। इस वंशके अठारहवें राजा खोट्टिगको मालवेके राजा सीयक (हर्ष) ने और उन्नीसवें कर्कदेवको चौलुक्य तैलप (दूसरे) ने हराया था। इसी तैलपसे कल्याणके पश्चिमी चौलुक्योंकी शाखा चली। इस शाखाका राज्य ई० स० ११८३ तक रहा। मुञ्जको भी इसी तैलपने मारा था। इस शाखाके छठे राजा सोमेश्वर (दूसरे) के सामनेसे भोजको भागना पड़ा था। इसी शाखाके सातवें राजा विक्रमादित्यने मालवेके परमारोंको सहायता दी थी।

पिछले यादव राजा।

बारहवीं सदीमें, दक्षिणमें, देवगिरि (दौलताबाद) के यादवोंका प्रताप प्रबल हुआ। इस शाखाने प्राय: ई० स० ११८७ से १३१८ तक राज्य किया। जिस समय सुभट वर्माने गुजरात पर चढ़ाई की उस समय सिंघन भी उसके साथ था। इस वंशका अन्तिम प्रतापी राजा रामचन्द्र, भोज (द्वितीय) का मित्र था।

चेदिके राजा।

हैहय-वंशियोंका राज्य त्रिपुरीमें था। उसे अब तेवर कहते हैं। यह नगर जबलपुरके पास है। नवीं सदीमें कोकल्ल (प्रथम) से यह वंश चला। इनके और परमारोंके बीच बहुधा लड़ाई रहा करती थी। मालवेके राजा मुञ्जने इस वंशके दसवें राजा युवराजको और भोज (प्रथम)

ने बारहवें राजा गाङ्गेयदेवको हराया था। गाङ्गेयदेवके पुत्र कर्णने भोजसे[१] सुवर्णकी एक पालकी प्राप्त की थी। अन्तमें गुजरातके भीमदेव (प्रथम) से मिल कर उसने भोजपर चढ़ाई की । उस समय ज्वरसे भोजकी मृत्यु हो गई। इसके कुछ वर्ष बाद भोजके कुटुम्बी उदयादित्यने उसे हराया। इसी वंशके पन्द्रहवें राजा गयकर्णदेवने उदयादित्यकी पोती आल्हणदेवीसे विवाह किया था।

चन्देल-राज्य।

नवीं सदीमें जेजाहुती (बुन्देलखण्ड) के चन्देलोंका प्रताप बढा।[२] परन्तु परमारोंका इनके साथ बहुत कम सम्बन्ध रहा है।

कहा जाता है कि भोज (प्रथम), चन्देल विद्याधरसे डरता था तथा चन्देल यशोवर्मा मालवेवालोंके लिए यमस्वरूप था । धङ्गदेवके समयमें चन्देलराज्य मालवेकी सीमातक पहुँच गया था।

अन्य राज्य।

परमारोंसे सम्बन्ध रखनेवाले अन्य राज्योंमें एक तो काश्मीर है। वहाँपर राजा भोज (प्रथम) ने पापसूदन तीर्थ बनवाया था। उसीका जल वह काँचके घड़ोंमें भरकर मँगवाता था। दूसरा शाकम्भरी (साँभर) के चहुआनोंका राज्य है। कहा जाता है कि भोजने चहुआन वीर्यरामको मारा था।

---

(१) Ep. Ind, Vol. I, p. 121, 217; II, p, 232. (२) Ep. Ind., Vol. II, p. 116.

वागड़के परमार।

१–डम्बरसिंह।

मालवेके परमार राजा वाक्‌पतिराज (प्रथम) के दो पुत्र हुए— वैरिसिंह (दूसरा), और डम्बरसिंह। जेष्ठ पुत्र वैरिसिंह अपने पिताका उत्तराधिकारी हुआ और छोटे पुत्र डम्बरसिंहको वागडका इलाका जागीरमें मिला। इस इलाकेमें डूँगरपुर और बाँसवाड़ेका कुछ हिस्सा शामिल था।

२–कङ्कदेव।

यह डम्बरसिंहका वंशज था। वि० सं० १०२९ (ई० स० ९७२) के करीब मालवेके परमार-राजा सीयक, दूसरे (श्रीहर्ष) के और कर्णाटकके राठौड़ खोट्टिगदेवके बीच युद्ध हुआ था। उस युद्धमें कङ्कदेवने नर्मदाके तट पर खोट्टिगदेवकी सेनाको परास्त किया था। उसी युद्धमें, हाथीपर बैठ कर लड़ता हुआ, यह मारा भी गया था।

३–चण्डप।

यह कङ्कदेवका पुत्र था। उसीके पीछे यह गद्दी पर बैठा।

४–सत्यराज।

यह चण्डपका पुत्र और उत्तराधिकारी था।

५–मण्डनदेव।

यह सत्यराजका पुत्र था और उसके मरने पर उसकी जागीरका मालिक हुआ। इसका दूसरा नाम मण्डलीक था।

६–चामुण्डराज।

यह मण्डनका पुत्र था। उसीके पीछे उसका उत्तराधिकारी हुआ।

ऐसा लिखा मिलता है कि इसने सिन्धुराजको परास्त किया था। यह सिन्धुराज कहाँका राजा था, यह पूरी तौरसे ज्ञात नहीं। या तो इससे सिन्धुदेशके राजासे तात्पर्य होगा या इसी नामवाले किसी दूसरे राजासे। यह भी लिखा है कि इसने कन्हके सेनापतिको मारा। यह कन्ह (कृष्ण) कहाँका राजा था, यह भी निश्चयपूर्वक ज्ञात नहीं। अपने पिताके नामसे चामुण्डराजने अर्थूणामें मण्डनेश्वरका मन्दिर बनवाया था। उसके साथ एक मठ भी था।

इसके समयके दो लेख अर्थूणामें मिले हैं। पहला वि० स० ११३६ (ई० स० १०७९) का और दूसरा वि० स० ११५७ (ई० स० ११००) का है। वि० स० ११३६ के लेखमें डम्बरसिंहको वैरिसिंहका छोटा भाई लिखा है तथा डम्बरसिंहसे चण्डप तककी वंशावली दी गई है।

७–विजयराज।

यह चामुण्डराजका पुत्र था। उसीके पीछे यह गद्दीपर बैठा। इसके सान्धिविग्रहिक (Minister of Peace and War) का नाम वामन था। यह वामन वालभ-वंशी कायस्थ था। इसके पिताका नाम राज्यपाल था। वि० स० ११६६ (ई० स० ११०९) का, चामुण्टराजके समयका, एक लेख अर्थूणामें मिला है।

इन परमारोंकी राजधानी अर्थूणा (उच्छूणक) नगर था। यद्यपि परमारोंके समयमें यह नगर बहुत उन्नति पर था, तथापि इस समय वहाँ पर केवल एक गाँव मात्र आबाद है। पर उसके पास ही सैकड़ों भग्नावशेष मन्दिर और घर आदिकोंके खण्डहर खड़े हैं। अर्थूणाके पासके प्रदेशका प्राचीन शोध न होनेसे विजयराजके बादका इतिहास नहीं मिलता।

(१) Ind Ant, Vol XXII P 80.

अर्थूणाके परमार मालवेके परमारोंकी अधीनतामें थे। सम्भवतः सौंथ–के परमार अर्थूणावालोंके वंशज होंगे। क्योंकि सौंथके इलाकेका कुछ हिस्सा अर्थूणावालोंके राज्यमें था। सौंथवाले अपनेको आबूके परमारोंके वंशज मानते हैं। उनका कथन है कि आबूके निकटकी चन्द्रावती नगरीसे आकर अपने नामसे राजा जालिमसिंहने जालोद नगर बसाया और स्वयं वहाँ रहने लगा। यह नगर गुजरातके ईशान कोणमें था। बादको वहाँसे चलकर इनके वंशजोंने सौंथ गाँव आबाद किया। सौंथवालोंका न तो विशेष इतिहास ही मिलता है और न उनके पूर्वजोंकी वंशावली ही। इससे उनके कथन पर पूर्ण विश्वास नहीं हो सकता। परन्तु पास ही अर्थूणाके परमारोंका राज्य रहनेसे, सम्भव है, सौंथवाले उन्हीके वंशज हों। इनका वंश-वृक्ष भी मालवेके परमारोंके वंश-वृक्षके साथ दिया जा चुका है।

१९	देवपालदेव	नं० १८ का भाई	वि० सं० १२७५, १२८२, १२८५, १२८६, १२-८९, १२९२	शम्सुद्दीन अल्तमश
२०	जयसिंह, द्वितीय (जयतुगीदेव)	नं० १९ का पुत्र	वि० सं० १३००, १३१२	
२१	जयवर्मा, द्वितीय	नं० २० का भाई	वि० सं० १३१४, १३१७	
२२	जयसिंह, तृतीय	नं० २१ का उत्तराधिकारी	वि० सं० १३२६	
२३	भोज, द्वितीय	नं० २२ का उत्तराधिकारी		चहुआन-हम्मीर, वि० सं० १३४५
२४	जयसिंह, चतुर्थ	नं, २३ का उत्तराधिकारी	वि० सं० १३६६	

(पृष्ठ १७६)

माळवेके परमारोंका वंश-वृक्ष।

परमार-वंशकी उत्पत्ति ।

इस वंशकी उत्पत्तिके विषयमें अनेक मत हैं । राजा शिवप्रसाद अपने इतिहास तिमिर-नाशक नामक पुस्तकके प्रथम भागमें लिखते हैं कि "जब विधर्मियोंका अत्याचार बहुत बढ़ गया तब ब्राह्मणोंने अर्बुदगिरि (आबू) पर यज्ञ किया, और मन्त्रबलसे अग्निकुण्डमेंसे क्षत्रियोंके चार नये वंश उत्पन्न किये । परमार, सोलंकी, चौहान और पड़िहार ।"

अबुल फजलने अपनी आईने अकबरीमें लिखा है कि जब नास्तिकोंका उपद्रव बहुत बढ़ गया तब आबूपहाड़पर ब्राह्मणोंने अपने अग्निकुण्डसे परमार, सोलंकी, चौहान और पड़िहार नामके चार वंश उत्पन्न किये ।

पद्मगुप्त (परिमल) ने अपने नवसाहसाङ्कचरितके ग्यारहवें सर्गमें इनकी उत्पत्तिका वर्णन इस प्रकार किया है:—

अर्बुदाचल-वर्णनम् ।

ब्रह्माण्डमण्डपस्तम्भः श्रीमानस्त्यर्बुदो गिरिः ।
उपोढहंसिका यस्य सरितः सालभञ्जिकाः ॥ ४९ ॥

वसिष्ठाश्रमवर्णनम् ।

अतिस्वाधीननीवार-फल-मूल-समित्कुशम् ।
मुनिस्तपोवनं चक्रे तत्रेक्ष्वाकुपुरोहितः ॥ ६४ ॥
हृता तस्यैकदा धेनुः कामसूर्गाधिसूनुना ।
कार्तवीर्यार्जुनेनेव जमदग्नेरनीयत ॥ ६५ ॥
स्थूलाश्रुधारासन्तानस्नपितस्तनवल्कला ।
अमर्षपावकस्याभूद्भर्तुरस्समिदरुन्धती ॥ ६६ ॥

अथाथर्वविदामाद्यस्सम नामाहुतिं ददौ ।
विकसद्विकटज्वालाजटिले जातवेदसि ॥ ६७ ॥
तत क्षणात्सकोदण्डः किरीटीकाञ्चनाङ्गद ।
उज्जगामाग्नित कोऽपि सहेमकवच पुमान् ॥ ६८ ॥

परमार वंश वर्णनम् ।

परमार इतिप्रापत्स मुनेर्नाम चार्थवत् ।
मीलितान्यनृपच्छत्रमातपत्र च भूतले ॥ ७१ ॥

अर्थात्–विश्वामित्रने जिस समय आबूपहाडपर वसिष्ठके आश्रमसे गाय चुरा ली, उस समय क्रुद्ध हुए वसिष्ठने अपने मन्त्रबलसे अग्निकुण्डमेंसे एक पुरुष उत्पन्न किया। इसने वसिष्ठके शत्रुओंका नाश कर डाला। इससे प्रसन्न होकर वसिष्ठने इसका नाम परमार रक्खा। संस्कृतमें 'पर' शत्रुको और 'मार' मारनेवालेको कहते हैं।

इस वंशके लेखोंमें भी इनकी उत्पत्ति इसी प्रकारसे लिखी है। विक्रम सवत् १३४४ का एक लेख पाटनारायणके मन्दिरसे मिला है[1]। उसम इस वशकी उत्पत्तिके विषयमें निम्नलिखित श्लोक लिखे है –

जयतु निखिलतीर्थैं सेव्यमान समतात् ।
मुनिसुरसुरपत्नीसयुतैरर्बुदाद्रि ॥
विलसदनलगर्भोदद्भुतं श्रीवशिष्ट ।
कमपि सुभटमेकं स्रष्टवान्यत्र मत्रै ॥ ३ ॥
आनीतधन्वे परनिर्जयेन मुनि स्वगोत्र परमारजाति ।
तस्मै ददावुद्धतभूरिभाग्यं स धौमराज च चकार नाम्ना ॥ ४ ॥

अर्थात्–आबूपर्वतपर वशिष्ठने अपने मन्त्रबल द्वारा अग्निकुण्डसे एक वीरको उत्पन्न किया। जब वह शत्रुओंको मारकर वशिष्ठकी गायको

(१) यह लेख इमन इण्डियन ऐन्टिक्वेरी (Vol XLV, Part DLXIX, May 1916) में छपा है।

ले आया तब मुनिने प्रसन्न होकर उसकी जातिका नाम परमार और उसका नाम धौमराज रक्खा।

आबूपरके अचलेश्वरके मन्दिरमें एक लेख लगा है। यह अभीतक छपा नहीं है। इसमें लिखा है:—

> तत्राथ मैत्रावरुणस्य जुह्वतश्चण्डेभिकुण्डात्पुरुष पुराभवत्।
> मत्वा मुनीन्द्र परमारणक्षम स व्याहरत्तं परमारसंज्ञया ॥ ११ ॥

अर्थात्—यज्ञ करते हुए वसिष्ठके अग्निकुण्डसे एक पुरुष उत्पन्न हुआ। उसको पर अर्थात् शत्रुओंके मारनेमें समर्थ देखकर ऋषिने उसका नाम परमार रख दिया।

उपर्युक्त वसिष्ठ और विश्वामित्रकी लडाईका वर्णन वाल्मीकि रामायणमें भी है। परन्तु उसमें अग्निकुण्डसे उत्पन्न होनेके स्थानपर नन्दिनी गौद्वारा मनुष्योंका उत्पन्न होना और साथ ही उन मनुष्योंका शक-यवन-पल्हव आदि जातियोंके म्लेच्छ होना भी लिखा है।

धनपालने १०७० के करीब तिलकमञ्जरी बनाई थी। उसमे भी इनकी उत्पत्ति अग्निकुण्डसे ही लिखी है।

परन्तु हलायुधने अपनी पिङ्गलसूत्रवृत्तिमें एक श्लोक उद्धृत किया है—

> "ब्रह्मक्षत्रकुलीन प्रलीनसामन्तचक्रनुतचरण।
> सकलसुकृतैकपुंज श्रीमान्मुञ्जश्चिरं जयति ॥"

इसमें 'ब्रह्मक्षत्रकुलीन' इस पदका अर्थ विचारणीय है। शायद ब्राह्मण वसिष्ठको युद्धके क्षतों या प्रहारोंसे बचानेवाला वंश समझकर ही इस शब्दका प्रयोग किया गया हो। अनेक विद्वानोंका मत है कि ये लोग ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्णकी मिश्रित सन्तान थे। अथवा ये विधर्मी थे और ब्राह्मणोंने संस्कार द्वारा शुद्ध करके इनको क्षत्रिय बना लिया। तथा इसी कारणसे इनको 'ब्रह्मक्षत्रकुलीनः' लिखकर, इनकी उत्पत्तिके लिये अग्निकुण्डकी कथा बनाई गई। रामायणमें भी नान्दिनीसे उत्पन्न

हुए पुरुषोंका म्लेन्छ होना लिखा है। परन्तु इस विषयपर निश्चित मत देना कठिन है।

आजकलके मालवेकी तरफके परमार अपनेको प्रसिद्ध राजा विक्रमादित्यके वंशज बतलाते हैं। यह बात भी माननेमें नहीं आती। क्योंकि यदि ऐसा होता तो मुञ्ज भोज आदि राजाओंके लेखोंमें और उनके समयके ग्रन्थोंमें यह बात अवश्य ही लिखी मिलती। परन्तु उनमें ऐसा नहीं है। और तो क्या वाक्पतिराजके लेखों तक तो इनकी उत्पत्ति आदिका भी कहीं पता नहीं चलता।

जबतक उपर्युक्त विषयोंके अन्य पूरे पूरे प्रमाण न मिल तब तक इस विषयपर पूरी तारसे विचार करना कठिन है।

पाल-वंश।
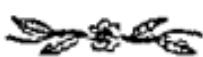
जाति, और धर्म।

पालवंशके राजा सूर्यवंशी हैं। यह बात महाराजाधिराज वैद्यदेवके कमौलीके दानपत्रसे प्रकट होती है। उसमें लिखा है—[1]

एतस्य दक्षिणदृशो वंशे मिहिरस्य जातवान्पूर्वं। विग्रहपालो नृपतिः।

अर्थात् विष्णुके दहने नेत्ररूप इस सूर्य-वंशमें पहले पहल विग्रहपाल राजा हुआ।

आगे चल कर उसीमें लिखा है—

तस्योर्जस्वलपौरुषस्य नृपतेः श्रीरामपालोऽभवद्
पुत्रः पालकुलाब्धिशीतकिरणः।

इन राजाओंके नामोंके अन्तमें पाल शब्द मिलता है। यद्यपि, बङ्गाल, मगध और कामरूप पर इनका प्रभुत्व था तथापि, कुछ दिनोंके लिए, इनका राज्य पूर्वोक्त देशोंके सिवा उड़ीसा मिथिला और कन्नौजके पश्चिम तक भी फैल गया था।

अनेक पश्चिमी शोधक विद्वान् इनको भुँइहार ब्राह्मण कहते हैं। पर अब तक इसका कोई प्रमाण नहीं मिला। ये लोग बौद्ध धर्मावलम्बी थे। इनके राज्य-समयमें यद्यपि भारतसे बौद्धधर्मका लोप होना प्रारम्भ हो गया था तथापि इनके राज्यमें, और विशेष कर मगधमें, उसकी प्रबलता विद्यमान थी। उस समय भी विक्रमशील और नालन्द नामक नगरोंमें इस धर्मके जगत्प्रसिद्ध संघाराम (मठ) थे। बहुत प्राचीन कालसे ही चीन, तातार, स्याम, ब्रह्मदेश आदिके बौद्ध उन मठोंमें विद्यार्जनके लिए आया करते थे। ग्यारहवीं शताब्दीमें विक्रमशील-मठका प्रसिद्ध विद्वान्

1 Ep Ind, Vol. II, p 350

साधु दीपाङ्कुर-श्रीज्ञान तिब्बत गया। वहाँ उसने बौद्धमतके महायान-सम्प्रदायका प्रचार किया था।

पालवंशी राजा, बौद्ध-धर्मावलम्बी होने पर भी, ब्राह्मणोंका सम्मान किया करते थे। ब्राह्मण ही उनके मन्त्री होते थे। उनकी राजधानी ओदन्तपुरी थी। उनके समयमें शिल्प और विद्यापूर्ण उन्नति पर थी। उनके शिला-लेखों और ताम्रपत्रोंमें प्रायः राज्यवर्ष ही लिखे मिलते हैं, संवत् बहुत ही कम देखनेमें आये हैं। इसीसे उनका ठीक ठीक समय निश्चित करना बहुत कठिन हो गया है।

यद्यपि तिब्बतके विख्यात बौद्ध लेखक तारानाथने और फारसीके प्रसिद्ध लेखक अबुलफज़लने इनकी वंशावलियाँ लिखी हैं तथापि उनमें सच्चे नाम बहुत ही कम हैं।

१-दयितविष्णु।

यह साधारण राजा था। इसीके समयसे इस वंशका वृत्तान्त मिलता है।

२-वप्यट।

यह दयितविष्णुका पुत्र था।

३-गोपाल (पहला)।

यह वप्यटका पुत्र था। यही इस वंशमें पहला प्रतापी राजा हुआ। खालिमपुरके ताम्रपत्रमें लिखा है कि "अराजकता और अत्याचारोंको दूर करनेके लिए धर्मपालको लोगोंने स्वयं अपना स्वामी बनाया।" तारानाथन भी लिखा है कि "बङ्गाल, उड़ीसा और पूर्वकी तरफके अन्य पाँच प्रदेशोंमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि मनमाने राजा बन गये थे। उनको नीति-पथ पर चलानेवाला कोई बलवान् राजा न था।"

(१) Ep. Ind, Vol. IV, p. 248 (२) O S R., Vol. XVI

इससे भी पूर्वोक्त ताम्रपत्रमें कही हुई बात सिद्ध होती है। सम्भव है, मगधके गुप्त-वंशियोंका राज्य नष्ट होनेपर अनेक छोटे छोटे राज्य हो गये हो और उनके आपसके सघर्षसे प्रजाको बहुत कष्ट होने लगा हो, इसीसे दु खित होकर गोपालको वहाँवालोंने अपना राजा बना लिया हो और गोपालने उन छोटे छोटे दुष्ट राजाओंका दमन करके प्रजाकी रक्षा की हो।

तारानाथके लेखसे पता लगता है कि—"गोपालने पहले पहल अपना राज्य बङ्गालमें स्थापित किया, तदनन्तर मगध (बिहार) पर अधिकार किया। इसने ४५ वर्षतक राज्य किया।"

तवारीख-ए-फरिश्ता और आईन-ए-अक्बरीमें इसका नाम भूपाल लिखा मिलता है। यह भी गोपालका ही पर्याय-वाची है। क्योंकि 'गो' और 'भू' दोनों ही पृथ्वीके नाम है। फरिश्ता लिखता है कि इसने ५५ वर्षतक राज्य किया।

इसकी रानीका नाम देहदेवी था। वह भद्र-जातिके अथवा भद्र-देशके राजाकी कन्या थी। उसके दो पुत्र हुए—धर्मपाल और वाक्पाल।

गोपालका एक लेख नालन्दमें मिली हुई एक मूर्तिके नीचे खुदा हुआ है। उसमें वह "परमभट्टारक महाराजाधिराज, परमेश्वर" लिखा हुआ है। इससे जाना जाता है कि वह स्वतन्त्र राजा था। उसके समयका एक और लेख बुद्ध गयामें मिली हुई एक मूर्ति पर खुदा हुआ है।

४—धर्मपाल।

यह गोपालका पुत्र और उसका उत्तराधिकारी था। पालवंशियोंमें यह बड़ा प्रतापी हुआ। भागलपुरके ताम्रपत्रसे प्रकट होता है कि इसने

(१) J. B A S, Vol. 63, p 53 (२) A. S J, Vol I and, III, p 120 (३) सर ए कनिंगहाम कृत महाबोधि। (४) Ind Ant. Vol XV, p 305, and Vol XX, p 187

इन्द्रराज आदि शत्रुओंको जीत कर महोदय (कन्नौज) की राजलक्ष्मी छीन ली। फिर उसे चक्रायुधको दे दिया। इस विषयमें खालिमपुरके ताम्रपत्रमें लिखा है कि धर्मपालने पञ्चालकाके राज्यपर (जिसकी राजधानी कन्नौज थी) अपना अधिकार जमा लिया था। उसकी इस विजयको मत्स्य, मद्र, कुरु, यवन, भोज, अवन्ति, गान्धार और कीर देशके राजाओंने स्वीकार किया था। परन्तु धर्मपालने यह विजित देश कन्नौजके राजाको ही लौटा दिया था।

पूर्वोक्त भागलपुरके ताम्रपत्रमें लिखा है कि इसने कन्नौजका राज्य इन्द्रराज नामक राजासे छीन लिया था। यह इन्द्रराज दक्षिण (मान्यखेट) का राठोर राजा तीसरा इन्द्र था। इस (इन्द्रराज) ने यमुनाको पार करके कन्नौजको नष्ट किया था। गोविन्दराजके सम्भातके ताम्रपत्रसे यही प्रकट होता है। सम्भवत इसीलिए इससे राज्य छीनकर धर्मपालने कन्नौजके राजा चक्रायुधको वहाँका राजा बनाया होगा। इस राठोर राजा तीसरे इन्द्रराजके समयमें कन्नौजका राजा पड़िहार क्षितिपाल (महीपाल) था। अतएव चक्रायुध शायद उसका उपनाम (खिताब) होगा। नवसारीमें मिले हुए इन्द्रराजके ताम्रपत्रसे जाना जाता है कि उसने उपेन्द्रको जीता था। वहाँ इस 'उपेन्द्र' शब्दसे चक्रायुधका ही तात्पर्य है, क्योंकि चक्रायुध और उपेन्द्र दोनों ही विष्णुके नाम हैं।

पूर्वोक्त क्षितिपालसे कन्नौजका अधिकार छिन गया था, परन्तु अन्तम दूसरोंकी सहायतासे, उसने उसपर फिर अपना अधिकार कर लिया था।

खजुराहोके लेखसे जाना जाता है कि चन्देल राजा हर्षने पड़िहार क्षितिपालको कन्नौजकी गद्दी पर बिठाया। इससे प्रतीत होता

(1) Ep Ind, Vol IV, p 248

है कि हर्षने भी धर्मपालकी सहायता की होगी तथा चन्देल राजा हर्ष पडिहार क्षितिपाल (महीपाल) और धर्मपाल ये तीनों समकालीन होंगे। यदि यह अनुमान ठीक हो तो धर्मपाल विक्रम-संवत् ९७४ के आसपास विद्यमान रहा होगा; क्योंकि महीपाल (क्षितिपाल) का एक लेख मिला है, जिसमें इस संवत्का उल्लेख है।

यद्यपि जनरल कनिंगहामका अनुमान है कि सन् ८३० ईसवीसे ८५० ईसवी (विक्रम-संवत् ८८७–९०५) तक धर्मपालने राज्य किया होगा। तथापि, राजेन्द्रलाल मित्र इसके राज्यशासनका काल सन् ८७५ ईसवीसे ८९५ ईसवी (विक्रम-सवत् ९३२ से ९५२) तक मानते है। कन्नौजकी पूर्वोक्त घटनासे यही पिछला समय ही ठीक समयका निकटवर्ती मालूम होता है।

धर्मपालकी स्त्रीका नाम रण्णा देवी था। वह राष्ट्रकूट (राठौर) राजा परबलकी पुत्री थी।

यद्यपि डाक्टर कीलहार्न, परबलके स्थानपर श्रीवल्लभ अनुमान करके, जनरल कनिगहामके निश्चित पूर्वोक्त समयके आधारपर, वल्लभको दक्षिणका राठौर, गोविन्द तीसरा, मानते हैं और डाक्टर भाण्डारकर उसीको कृष्णराज दूसरा अनुमान करते हे, तथापि परबलको अशुद्ध समझने और उसके स्थानपर श्रीवल्लभको शुद्ध पाठ माननेकी कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। यह परबल शायद उसी राठौर वशमें हो जिस वशके राजा तुङ्गकी पुत्री भाग्यदेवीका विवाह धर्मपालके वशज राज्यपालसे हुआ था। इसी राठौर राजा तुङ्गका एक शिला-लेख बुद्धगयामें मिला है।

धर्मपालके राज्यके बत्तीसवें वर्षका एक ताम्रपत्र खालिमपुरमें मिला है। उससे प्रकट होता है कि उस समय त्रिभुवनपाल उसका युवराज और

(१) Ind Ant, Vol XVI, p 174

(२) Ind Ant, Vol XXI, Mungher Plate

(३) J.B A S, Vol 63, p 53, and Ep Ind, Vol, p 247.

नारायणवर्मा महासामन्ताधिपति था । इसी ताम्रपत्रसे राजा धर्मपालका बत्तीस वर्षसे अधिक राज्य करना पाया जाता है। इसके पीछेके राजाओंमें त्रिभुवनपालका नाम नहीं मिलता । इसलिए या तो वह धर्मपालके पहले ही मर गया होगा, या वही राजासन पर बैठनेके बाद, देवपाल नामसे प्रसिद्ध हुआ होगा। यह देवपाल धर्मपालके छोटे भाई वाक्पालका लडका था। इसके छोटे भाईका नाम जयपाल था। धर्मपालकी तरफसे उसका छोटा भाई वाक्पाल दूर दूरकी लडाइयोंमें सेनापति बनकर जाया करता था।

धर्मपालका मुख्य सलाहकार शाण्डिल्यगोत्रका गर्ग नामक ब्राह्मण थो।

५–देवपाल ।

यह धर्मपालके छोटे भाई वाकपालका ज्येष्ठ पुत्र और धर्मपालका उत्तराधिकारी था । इसके राज्यके तेंतीसवें वर्षका एक ताम्रपत्र मुद्गरमें मिला है। उसमें इसे धर्मपालका पुत्र लिखा है । उसीमें यह भी लिखा है कि विन्ध्य-पर्वतसे काम्बोज तकके देशोंको इसने जीता था और हिमालयसे रामसेतु तकके देशों पर इसका राज्य था। उस समय इसका पुत्र राज्यपाल इसका युवराज था। परन्तु नारायणपालके समयके भागलपुरके एक ताम्रपत्रमें देवपालको धर्मपालका भतीजा लिखा है । इसका कारण शायद यह होगा कि देवपालको धर्मपालने गोद ले लिया होगा। क्योंकि अपने पुत्रके न होने पर अपने भाई अथवा किसी नजदीकी सम्बन्धीके पुत्रको अपने जीते जी गोद लेकर युवराज बना लेनेकी प्रथा देशी राज्योंमें अब तक प्रचलित है। गोद लिया हुआ पुत्र गोद लेनेवालेका ही पुत्र कहलाता है।

(१) Ind Ant., Vol XV, p 305 (२) Indul P M (३) \ R Vol I, p 1?3, and Ind Ant Vol XXI, p ?54

नारायणपालके समयके भागलपुरके ताम्रपत्रमें देवपालके उत्तराधिकारी विग्रहपालको देवपालके भाई जयपालका पुत्र लिखा है। राज्यपालका नाम इनकी वंशावलीमें नहीं है। अतएव, सम्भव है, राज्यपाल जयपाल-का पुत्र हो; और, देवपालने उसे गोद लिया हो; एवं गद्दी पर बैठनेके समय वह विग्रहपालके नामसे प्रसिद्ध हुआ हो। आज कल भी रजवाड़ोंमें बहुधा गोद लिये हुए पुत्रका नाम बदले देनेकी प्रथा चली आती है। यदि यह अनुमान सत्य न हो तो यही मानना पड़ेगा कि राज्यपाल अपने पिता देवपालके पहले ही मर गया होगा। परन्तु पहले इसी प्रकार त्रिभुवनपालका हाल लिखा जा चुका है। उसमें भी ऐसी ही घटनाका उल्लेख है। इसलिए, हमारी रायमें, रजवाड़ोंकी प्रथाके अनुसार, *नामका बदलना ही अधिक सम्भव है।*

देवपालके समयका एक बौद्ध लेख भी गोश्रावामें मिला है। भागल-पुरमें मिले हुए ताम्र-पत्रसे प्रकट होता है कि देवपालके समयमें उसका छोटा भाई जयपाल ही उसका सेनापति था, जिसने उत्कल और प्राग्ज्योतिषके राजाओंसे युद्ध किया था।

देवपालका प्रधान मन्त्री उपर्युक्त गर्गका पुत्र दर्भपाणी था।

६–विग्रहपाल (पहला)।

यह देवपालके छोटे भाई जयपालका पुत्र और देवपालका उत्तरा-धिकारी था। बङ्गालके स्तम्भवाले लेखसे प्रतीत होता है कि देवपालके मन्त्री, दर्भपाणी,के पौत्र (सोमेश्वरके पुत्र) केदारपाणीकी बुद्धिमानीसे गौड़के राजा (विग्रहपाल) ने उत्कल, हूण, द्रविड़ और गुर्जर देशोंके राजाओंका गर्व-खण्डन किया था। यद्यपि उक्त लेखमें गौड़के राजाका

(१) Ind. Ant., Vol. XVIII, p. 309. (२) Ind. Ant., Vol. XV, p, 305. (३) Ep. Ind., Vol. II, p. 161. (४) Ep. Ind., Vol. II, p. 163.

नाम नहीं दिया, तथापि यह वर्णन विग्रहपालका ही होना चाहिए; और, इसी लेखमें जो शूरपालका नाम लिखा है वह भी विग्रहपालका ही दूसरानाम होना चाहिए। डाक्टर कीलहार्नका अनुमान है कि इस लेखमें कहे हुए गौड़के राजासे देवपालका ही तात्पर्य है। परन्तु उस समय तो केदारपाणीका दादा दर्भपाणी प्रधान था। इसलिए उनका यह अनुमान ठीक नहीं प्रतीत होता।

विग्रहपालकी स्त्रीका नाम लज्जा था। वह हैहयवंशकी थी।

जनरल कनिंगहामका अनुमान है कि राज्यपाल और शूरपाल ये दोनों देवपालके पुत्र और क्रमानुयायी होंगे[1] तथा शूरपालके पीछे जयपालका पुत्र विग्रहपाल राजा हुआ होगा। परन्तु जितने लेख और ताम्रपत्र उक्त वंशके राजाओंके मिले हैं उनसे पूर्वोक्त जनरलका अनुमान सिद्ध नहीं होता।

इसके पुत्रका नाम नारायणपाल था।

७–नारायणपाल।

यह विग्रहपालका पुत्र और उत्तराधिकारी था। इसने पूर्वोक्त केदार मिश्रके पुत्र गुरव मिश्रको बड़े सम्मानसे रक्खा था। नारायणपालके भागलपुरवाले ताम्र-पत्रका दूतक भी यही गुरव मिश्र है। इस राजाके समयके दो लेख और भी मिले हैं। उनमेंसे एक लेख इस राजाके राज्यके सातवें वर्षका है। पूर्वोक्त ताम्र-पत्र उसके राज्यके सत्रहवें वर्षका है।

यद्यपि यह राजा बौद्ध था तथापि इसने बहुतसे शिवमन्दिर बनवाये और उनके निर्वाहके लिए बहुतसे गाँव भी प्रदान किये थे।

इसके पुत्रका नाम राज्यपाल था।

---

(१) A. S. R., Vol. XV, p. 149. (२) Ind. Ant, Vol. XV, P. 305, and J. B. A. S. Vol. 47. (३) A. S.J., Vol III, and Ep. Ind., Vol, II, P. 161.

८–राज्यपाल।

यह नारायणपालका पुत्र और उत्तराधिकारी था। इसकी स्त्री, भाग्य-देवी, राष्ट्रकूट (राठोर) राजा तुङ्गकी कन्या थी। इससे गोपाल (दूसरा) उत्पन्न हुआ। यह राजा तुङ्ग धर्मावलोक नामसे विख्यात था। इसके पिताका नाम कीर्तिराज और दादाका नाम नन्न-गुणावलोक था। तुङ्गके समयका एक लेख[1] बुद्ध गयामें मिला है।

९–गोपाल (दूसरा)।

यह राज्यपालका पुत्र और उत्तराधिकारी था। इसके पुत्रका नाम विग्रहपाल (दूसरा) था।

१०–विग्रहपाल (दूसरा)।

यह गोपाल (दूसरे) का पुत्र था। पिताके पीछे यही गद्दी पर बैठा। इसके पुत्रका नाम महीपाल था।

११–महीपाल (पहला)।

यह विग्रहपाल (दूसरे) का पुत्र और उत्तराधिकारी था। इसके समयका (विक्रम-संवत् १०८३) का एक शिला-लेख[2] सारनाथ (बनारस) में मिला है। उसमें लिखा है कि गौड (बङ्गाल) के राजा महीपालने स्थिरपाल और उसके छोटे भाई वसन्तपाल द्वारा काशीमें अनेक मन्दिर आदि बनवाये; धर्मराजिक (स्तूप) और धर्मचक्रका जीर्णोद्धार कराया और गर्भ-मन्दिर, जिसमें बुद्धकी मूर्ति रहती है नवीन बनवाया। ये स्थिरपाल और वसन्तपाल, सम्भवतः, महीपालके छोटे पुत्र होंगे।

हम पहले ही लिख चुके हैं कि पालवंशियोंके लेखोंमें बहुधा उनके राज-वर्ष ही लिखे मिलते हैं। यही एक ऐसा लेख है जिसमें विक्रम-संवत् लिखा हुआ है।

(१) R. M. B. G, P. 195. (२) Ind. Ant, Vol. XIV, P. 140.

विग्रहपाल तीसरेके समयके आमगाछी (दिनाजपुर जिले) में मिले हुए ताम्रपत्रसे प्रकट होता है कि " महीपालके पिताका राज्य दूसरोंने छीन लिया था। उस राज्यको महीपालने पीछेसे हस्तगत किया और अपने भुजबलसे लड़ाईके मैदानमें शत्रुओंको हरा कर उनके सिर पर अपना पैर रक्खा। "

महीपालके समयका दूसरा ताम्रपत्र दीनाजपुरमें मिला है।

इस राजाके राज्यके पाँचवें वर्षकी लिखी हुई " अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता " नामक एक बौद्ध पुस्तक इस समय केम्ब्रिजके विश्वविद्यालयमें है और ग्यारहवें वर्षका एक शिलालेख बुद्धगयामें मिला है। परन्तु यह कहना कठिन है कि ये दोनों महीपाल, पहलेके, समयके हैं अथवा दूसरेके समयके। इसके पुत्रका नाम नयपाल था।

१२-नयपाल।

यह महीपाल (पहले) का पुत्र था। उसके पीछे यही राज्यका अधिकारी हुआ। इसके राज्यके चौदहवें वर्षका लिखा हुआ पञ्चरक्षा नामक एक बौद्धग्रन्थ इस समय केम्ब्रिज-विश्वविद्यालयमें है और पन्द्रहवें वर्षका एक शिलालेख बुद्धगयामें मिला है।

आचार्य-दीपाङ्कर श्रीज्ञान, जिसका दूसरा नाम अतिशा था, इसी नयपालका समकालीन था। इस आचार्यके एक शिष्यके लेखसे प्रकट होता है कि पश्चिमकी तरफसे राजा कर्णने मगध पर चढ़ाई की थी। यद्यपि मूलमें कर्ण्य लिखा है तथापि शुद्ध पाठ कर्ण ही उचित प्रतीत होता है, क्योंकि हैहयोंके लेखोंसे सिद्ध है कि चेदिके राजा कर्णने बङ्ग देशपर चढ़ाई की थी। नयपालके पुत्र विग्रहपाल (तीसरे) की कर्ण-

(१) Ind. Ant., Vol. XV, q 98 (२) J. B. A. S, Vol 61, p 82. (३) A. S. J., Vol. III, p. 122, and Ind. Ant., Vol. IX, p 114 ४ J. Bm A. S, for 1900 ph.101-102.

पर की गई चढ़ाईसे भी यही सिद्ध होता है, क्योंकि वह चढ़ाई सम्भवतः पिताके समयका बदला लेनेहीके लिए विग्रहपालने की होगी। उस चढ़ाईके समय आचार्य-दीपाङ्कुर वज्रासन (बुद्धगया अथवा बिहार) में रहता था। युद्धमें यद्यपि पहले कर्ण विजय हुआ और उसने कई नगरों पर अपना अधिकार कर लिया; तथापि, अन्तमें, उसे नयपालसे हार माननी पड़ी। उस समय उक्त आचार्यने बीचमें पड़ कर उन दोनों-में आपसमें सन्धि करवा दी। इस समयके कुछ पूर्व ही नयपालने इस आचार्यको विक्रमशीलके बौद्ध–विहारका मुख्य आचार्य बना दिया था। कुछ समयके बाद तिब्बतके राजा लहलामा येसिस होड (Lha Lama Yeseshod) ने इस आचार्यको तिब्बतमें ले आनेके लिये अपने प्रति-निधिको हिन्दुस्तान भेजा। परन्तु आचार्यने वहाँ जाना स्वीकार न किया। इसके कुछ ही समय बाद तिब्बतका वह राजा कैद होकर मर गया और उसके स्थान पर उसका भतीजा कानकूब (Can–Cub) गद्दी पर बैठा। इसके एक वर्ष बाद कानकूबने भी नागत्सो (Nagtso) नामक पुरुषको पूर्वोक्त आचार्यको तिब्बत बुला लानेके लिए विक्रमशील नगरको भेजा। इस पुरुषने तीन वर्षतक आचार्यके पास रहकर उन्हें तिब्बत चलने पर राजी किया। जब आचार्य तिब्बतको रवाना हुए तब मार्गमें नयपाल देश पड़ा। वहाँ पहुँचकर उन्होंने राजा नयपालके नाम विमलरत्नलेखन नामक पत्र भेजा। तिब्बतमें पहुँचकर बारह वर्षों तक उन्होंने निवास किया (एक जगह तेरह वर्ष लिखे हैं) और सन् १०५३ ईसवीमें (विक्रम–संवत् १११०) में, वहीं पर, शरीर छोड़ा।

इस हिसाबसे सन् १०४२ ईसवी (विक्रम-संवत् १०९८) के आसपास आचार्य तिब्बतको रवाना हुए होंगे। अतएव उसी समय तक नयपालका जीवित होना सिद्ध होता है।

१३-विग्रहपाल (तीसरा)।

यह नयपालका पुत्र और उत्तराधिकारी था। इसने डाहल (चेदी) के राजा कर्ण पर चढाई की और विजयप्राप्ति भी की। इसलिए कर्णने अपनी पुत्रीका विवाह इससे कर दिया। यही उनके आपसमें सुलह होनेका कारण हुआ। इसके बदले विग्रहपालने भी कर्णका राज्य उसे लौटा दिया।

इस राजाका एक ताम्रपत्र आमगाछी गाँवमें मिला है। वह इसके राज्यके तेरहवें या बारहवें वर्षका है।

इस राजाके तीन पुत्र थे—महीपाल, शूरपाल और रामपाल। इनमेंसे बडा पुत्र महीपाल इसका उत्तराधिकारी हुआ।

विग्रहपालके मन्त्रीका नाम योगदेव था।

१४-महीपाल (दूसरा)।

यह विग्रहपाल (तीसरे) का पुत्र था। उसके मरने पर उसके राज्यका स्वामी हुआ। यह निर्बल राजा था। इसके अन्यायसे पीडित होकर वारेन्द्रका कैवर्त राजा बागी हो गया। उसने पाल-राज्यका बहुत सा हिस्सा इससे छीन लिया। इस पर महीपालने कैवर्त राजा पर चढाई की। परन्तु इस लड़ाईमें वह कैवर्त-राजद्वारा पकडा जाकर मारा गया। उसके पीछे उसका छोटा भाई शूरपाल गद्दी पर बैठा।

१५-शूरपाल।

यह विग्रहपाल (तीसरे) का पुत्र और महीपाल (दूसरे) का छोटा भाई था। अपने बड़े भाई महीपाल (दूसरे) के मारे जाने पर उसका उत्तराधिकारी हुआ। यह राजा भी निर्बल था। इसके पीछे इसका छोटा भाई रामपाल राज्यका अधिकारी हुआ।

(१) रामचरित। (२) Ind. Ant. Vol XIV, p 106.
(३) Ep Ind., Vol II, p. 350 (४) रामचरित।

१६-रामपाल।

यह शूरपालका छोटा भाई था। उसके पीछे राज्यका मालिक हुआ। यद्यपि इसके पूर्वके दोनों राजाओंके समयमें पाल-राज्यकी बहुत कुछ अवनति हो चुकी थी—राज्यका बहुत सा भाग शत्रुओंके हाथोंमें जा चुका था—तथापि रामपालने उसकी दशा फिरसे सुधारी।

नेपालमें 'रामचरित' नामक एक संस्कृत-काव्य मिला है। यह काव्य रामपालके सान्धिविग्रहिक प्रजापति नन्दीके पुत्र, सन्ध्याकर नन्दी, ने लिखा था। इस काव्यके प्रत्येक श्लोकके दो अर्थ होते हैं। एक अर्थसे रघुकुलतिलक रामचन्द्र और दूसरेसे उक्त पालवंशी राजा रामपालके चरितका ज्ञान होता है। उसमें लिखा है कि—

"गद्दी पर बैठते ही रामपालने कैवर्त राजा भीमदिवोक पर चढाई करनेका विचार किया। रामपालका मामा राठौर मथन (महन) पाल-राज्यमें एक बडे पद पर था। उसके दो पुत्र महामण्डलेश्वर (बड़े सामन्त) और एक भतीजा शिवराज महाप्रतीहार था। वह रामपालका बडा ही विश्वासपात्र था। पहले वारेन्द्रमें जाकर उसने शत्रुकी गति-विधिका ज्ञान प्राप्त किया। फिर चढाईका प्रबन्ध होने लगा। पाल-राज्यके सब सामन्त बुलवाये गये। कुछ ही समयमें वहाँ पर दण्डभुक्ति-का राजा आकर उपस्थित हुआ। दण्डभुक्ति उस रियासतका नाम रहा होगा जिसका मुख्य स्थान दण्डपुर होगा और जिसे आजकल बिहार कहते हैं। इसी दण्डभुक्तिके राजाने उत्कलके राजा कर्णको हराया था। मगध (मगधके एक हिस्से) का राजा भीमयश भी आया। इसने कन्नौजके सवारोंको मारा था। पीठिका राजा वीरगुण भी आ गया। इसको दक्षिणका राजा लिखा है। देवग्रामका राजा विक्रम, आटविक (जङ्गलसे भरे हुए) प्रदेश और मन्दार-पर्वतका स्वामी लक्ष्मीशूर, तैला-

कम्प-वंशी शिखर (यह हस्ति-युद्धमें बड़ा निपुण था), भास्कर और प्रताप आदि अनेक सामन्त इकट्ठे हो गये। इनके सिवा दो बडे योद्धा पीठिका देवरक्षित और सिन्धुराज भी आ पहुँचे। सब तैयारियाँ हो जाने पर गङ्गाको पार करके रामपाल ससैन्य वारेन्द्र-देशमें पहुँचा। वहाँ पर बड़ी वीरतासे भीमने इनका सामना किया। परन्तु अन्तमें वह हराया और कैद कर लिया गया। इससे उसकी बड़ी दुर्दशा हुई। कैवर्तोंकी सब सेना भी नष्ट कर दी गई।"

वैद्यदेवके ताम्रपत्रमें लिखा है कि "रामपालने भीमको मार कर उसका मिथिला देश छीन लिया।" रामपालके मन्त्रीका नाम बोधिदेव था। वह पूर्वोक्त योगदेवका पुत्र था।

रामपालके राज्यके दूसरे वर्षका एक लेख विहार (दण्ड विहार) में और बारहवें वर्षका चण्डियोंमें मिला है।

इसके पुत्रका नाम कुमारपाल था।

१७-कुमारपाल।

यह रामपालका पुत्र और उत्तराधिकारी था। इसके प्रधान मन्त्रीका नाम वैद्यदेव था। यह पूर्वोक्त बोधिदेवका पुत्र था। पूर्ण स्वामिभक्त और वीर होनेके कारण यह कुमारपालका पूर्ण विश्वासपात्र भी था। वैद्यदेवने दक्षिणी वङ्गदेशके युद्धमें विजय-प्राप्ति की और अपने स्वामीके राज्यको अखण्ड बना रक्खा। इसके समयमें कामरूपके राजा तिङ्गयदेवने बगावत शुरू कर दी। इस पर कुमारपालने कामरूपका राज्य वैद्यदेवको दे दिया। तब तिङ्ग्यदेवको परास्त करके उसके राज्यपर वैद्यदेवने अपना कब्जा कर लिया। वैद्यदेवने प्राग्ज्योतिषभुक्ति (काम-

(१) Ep Ind., Vol II, p 348-349.
(२) C A S, Vol. III, p. 124 and Vol II, p 169

रूप-मण्डल) के वाड़ा इलाकेके दो गाँव श्रीधर ब्राह्मणको दिये थे[1]। इस दानके ताम्रपत्रमें संवत् नहीं है। तथापि उसकी तिथि आदिसे बहुतोंका अनुमान है कि यह घटना सन् ११५२ ईसवी (विक्रम-संवत् ११९९) की होगी।

कुमारपालके पुत्रका नाम गोपाल (तीसरा) था।

१८–गोपाल (तीसरा)।

यह कुमारपालका पुत्र और उत्तराधिकारी था। इसका विशेष वृत्तान्त नहीं मिला।

१९–मदनपाल।

यह राजपालका पुत्र और कुमारपालका छोटा भाई था। यही गोपालके बाद राज्यका अधिकारी हुआ। इसकी माँका नाम मदनदेवी था। इसके राज्यके आठवें वर्षका एक ताम्रपत्र मिला है, जिसमें लिखा है कि इसकी पट्टरानी चित्रमतिका देवीने महाभारतकी कथा सुनकर उसकी दक्षिणामें बटेश्वर-स्वामी नामक ब्राह्मणको पौंड्रवर्धनभुक्तिके कोटिवर्ष इलाकेका एक गाँव दिया। यह भी अपने पूर्वपुरुषोंके अनुसार ही बौद्ध-धर्मानुयायी था। इसके समयके पाँच शिलालेख और भी मिले हैं, जो इसके नवें राज्य-वर्षसे उन्नीसवें राज्य-वर्ष तकके हैं।

अन्य पालान्त नामके राजा।

मदनपाल तक ही इस वंशकी शृङ्खलाबद्ध वंशावली मिलती है। इसके पीछेके राजाओंका न तो क्रम ही मिलता है और न पूरा हाल ही; परन्तु कुछ लेख, इन्हींके राज्यमें, पालान्त नामके राजाओंके मिले

(१) Ep. Ind., Vol II, p 348. (२) J. Bm. A. S for 1900, p 68.

हैं।[1] उनमें एक तो महेन्द्रपालके राज्यके आठवें वर्षका रामगयमें और दूसरा उन्नीसवें वर्षका गुनरियामें मिला है[2]। तीसरा लेख गोविन्दपाल नामक राजाके राज्यके चौदहवें वर्षका, अर्थात् विक्रम-संवत् १२३२ का, गयामें मिला है। ये नरेश भी पालवंशी ही होने चाहिए।

पूर्वोक्त लेखोंके अतिरिक्त एक लेख गयामें नरेन्द्र यक्षपालका भी मिला है। पर वह पालवंशी नहीं, ब्राह्मण था[3]। वह विश्वरूपका पुत्र और शूद्रकका पौत्र था। इस विश्वरूपका दूसरा नाम विश्वादित्य भी था। यह राजा नयपालके समयमें विद्यमान था, ऐसा उसके लेखसे पाया जाता है।

समाप्ति।

जनरल कनिङ्गहामका अनुमान है कि पालवंशका अन्तिम राजा इन्द्रद्युम्न था। परन्तु यह नाम इस वंशके लेखों आदिमें कहीं नहीं मिलता। अतएव उक्त नाम दन्तकथाओंके आधार पर लिखा गया होगा

सेनवंशियोंने बङ्गालका बड़ा हिस्सा और मिथिलाप्रान्त, ईसवी सनके बारहवीं शताब्दीमें, पालवंशियोंसे छीन लिया था, जिससे उनका राज्य केवल दक्षिणी विहारमें रह गया था। इस वंशका अन्तिम राजा गोविन्दपाल था। उसे सन ११९७ ईसवी (विक्रम संवत् १२५४) के निकट बख्तियार खिलजीने हराया और उसकी राजधानी ओदन्तपुरीको नष्ट कर दिया। चातुर्मास्यके कारण जितने बौद्धभिक्षु (साधु) वहाँके विहारमें थे उन सबको भी उसने मरवा डाला। इस घटनाके बाद भी, कुछ समय तक, गोविन्दपाल जीवित था; परन्तु उसका राज्य नष्ट हो चुका था।

---

(१) C. A. S. R., Vol. III, P. 123. (२) C. A. S. R., Vol. III, P. 124. (३) C. A. S. R., Vol. III, P. XXXVII.

नम्बर	नाम	परस्परका सम्बन्ध	ज्ञात संवत्	समकालीन राजा
१	दयितविष्णु			
२	वप्यट	नम्बर १ का पुत्र		
३	गोपाल	,, २ का पुत्र		
४	धर्मपाल	,, ३ का पुत्र		राठौर इन्द्रराज तीसरा, चक्रायुध (क्षितिपाल) कन्नौजका, पड़िहार नागभट मारवाड़का
५	देवपाल	,, ४ का भती		
६	विग्रहपाल	,, ५ का भती		
७	नारायणपाल	,, ६ का पुत्र		
८	राज्यपाल	,, ७ का पुत्र		राष्ट्रकूट तुङ्ग
९	गोपाल (दूसरा)	,, ८ का पुत्र		
१०	विग्रहपाल (दू०)	,, ९ का पुत्र		
११	महीपाल	,, १० का पुत्र	विक्रम-संवत् १०८३	
१२	नयपाल	,, ११ का पुत्र		चेदीका राजा कर्ण
१३	विग्रहपाल (ती०)	,, १२ का पुत्र		चेदीका राजा यश
१४	महीपाल (दू०)	,, १३ का पुत्र		
१५	शूरपाल (दूसरा)	,, १३ का पुत्र		
१६	रामपाल	,, १३ का पुत्र		
१७	कुमारपाल	,, १६ का पुत्र		
१८	गोपाल (ती०)	,, १७ का पुत्र		
१९	मदनपाल	,, १६ का पुत्र		
	महेन्द्रपाल			
	गोविन्दपाल		विक्रम-संवत् १२३२	

सेन-वंश।

जाति।

पालवंशियोंका राज्य अस्त होने पर बङ्गालमें सेन-वंशी राजाओंका राज्य स्थापित हुआ। यद्यपि इनके शिलालेखों और दान-पत्रोंसे प्रकट होता है कि ये चन्द्रवंशी क्षत्रिय थे और अद्भुतसागर नामक ग्रन्थसे भी यही बात सिद्ध होती है, तथापि देवपर (बङ्गाल) में मिले हुए बारहवीं शताब्दीके विजयसेनके लेखमें इन्हें ब्रह्मक्षत्रिय लिखा है—

तस्मिन्सेनान्ववाये प्रतिसुभटशतोत्सादनब्रह्मवादी।
सब्रह्मक्षत्रियाणामजनि कुलशिरोदामसामन्तसेन॥

अर्थात् उस प्रसिद्ध सेन-वंशमें, शत्रुओंको मारनेवाला, वेद पढ़नेवाला तथा ब्राह्मण और क्षत्रियोंका मुकुट-स्वरूप, सामन्तसेन उत्पन्न हुआ।

बङ्गालके सेनवंशी वैद्य अपनेको विख्यात राजा बल्लालसेनके वंशज बतलाते हैं। जनरल कनिङ्हामका भी अनुमान है कि बङ्गदेशके सेन-वंशी राजा क्षत्रिय न थे, वैद्य ही थे। परन्तु रायबहादुर पण्डित गौरी-शङ्कर ओझा उनसे सहमत नहीं। वे सेनवंशी राजा बल्लालसेनको वैद्य बल्लालसेनसे पृथक् अनुमान करते हैं। यही अनुमान ठीक प्रतीत होता है। क्योंकि बङ्गालमें बल्लालसेन नामका एक अन्य जमींदार भी बहुत विख्यात हो चुका है। वह वैद्यजातिका था। उसका भी एक जीवनचरित 'बल्लाल चरित' के नामसे प्रसिद्ध है। उसके कर्ता गोपालभट्टने, जो उक्त बल्लालसेनका गुरु था, अपने शिष्यको वैद्यवंशी लिखा है। उससे यह भी सिद्ध होता है कि वैद्य बल्लालसेन सेनवंशी

(१) Ep Ind, Vol I, p 307

बल्लालसेनके २५० वर्ष बाद हुआ था । इससे स्पष्ट है कि सेनवंशी राजा बल्लालसेन वैद्य बल्लालसेनसे पृथक् था और उसके समयका बल्लाल-चरित भी इस बल्लालचरितसे जुदा था । दोनोंका एकही नाम होनेसे यह भ्रम उत्पन्न हुआ है, और, जान पडता है, इसी भ्रमसे उत्पन्न हुई किंवदन्तीको सच समझकर अबुलफजलने भी सेन-वंशियोंको वैद्य लिख दिया है । उनके शिलालेखोंसे उनके चन्द्रवंशी होनेके कुछ प्रमाण नीचे दिये जाते है—

१–राजनयाधिपति-सेन-कुलकमल विकास-भास्कर सोमवशप्रदीपे[1] ।

२–भुवः काञ्चीलीलाचतुरचतुरम्भोधिलहरी-
परीताया भर्ताऽजनि विजयसेन शशिकुले[2] ।

इस वंशके राजा पहले कर्णाटककी तरफ रहते थे । सम्भव है, वहाँ पर वे किसीके सामन्त राजा हो । परन्तु वहाँसे हटाये जानेपर पहले सामन्तसेन वङ्गदेशमें आया और गङ्गाके तटपर रहने लगा । बहुतोंका अनुमान है कि वह प्रथम नवद्वीपमें आकर रहा था ।

इनके राज्य-कालमें बौद्धधर्मका नाश होकर वैदिक धर्मका प्रचार हुआ ।

१–सामन्तसेन ।

दक्षिणके राजा वीरसेनके वशमें यह राजा उत्पन्न हुआ था । इसीसे इस वशकी शृङ्खलाबद्ध वंशावली मिलती है । डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्रका अनुमान है कि वङ्गदेशमें कुलीन ब्राह्मणोंको लानेवाला शूरसेन नामका राजा यही वीरसेन है; क्योंकि शूर और वीर दोनों शब्द पर्यायवाची है । परन्तु इतिहाससे सिद्ध होता है कि वङ्गदेशमें शूरसेन

(१) J Bm. A S 1896 P 13 (२) अद्भुतसागर, श्लोक ४ ।
(३) Ep Ind, Vol I, P 307-8

नामका प्रतापी राजा सामन्तसेनसे बहुत पहले हो चुका था और सेन-वंशी वीरसेन तो स्वयं दक्षिणसे हारकर वहाँ आया था।

हरिमिश्र घटककी कारिका (वंशावली) में लिखा है "महाराज आदिशूरने कोलाचन्द्रेस (कन्नौज राज्यम) से क्षितीश, मेधातिथि, वीतराग, सुधानिधि और सौभरि, इन पाँच विद्वानोंको परिवारसहित लाकर यहाँ पर रक्खा। उसके पश्चात् जब विजयसेनका पुत्र, बल्लाल-सेन वहाँकी राजगद्दी पर बैठा तब उसने उन कुलीन ब्राह्मणोंके वंशजोंको बहुतसे गाँव आदि दिये।"

इससे सिद्ध होता है कि आदि-शूर पालवंशी राजा देवपालसे भी पहले हुआ था।

कुछ लोगोंका अनुमान है कि आदिशूर कन्नौजके राजा हर्षवर्धनके समकालीन राजा शशाङ्कसे आठवीं पीढ़ीमें था। यदि यही अनुमान ठीक हो तब भी वह बङ्गालके सेनवंशी राजाओंसे बहुत पहले हो चुका था। पण्डित गौरीशङ्करजीका अनुमान है कि कन्नौजसे कुलीन ब्राह्मणोंको बङ्गालमें लाकर बसानेवाला आदिशूर, शायद कन्नौजका राजा भोजदेव हो, जिसका दूसरा नाम आदि-वाराह था। वाराह और शूकर ये दोनों पर्यायवाची शब्द है। अतएव आदिवाराहका आदिशूकर और शूकरका प्राकृत आदिके संसर्गसे शूर हो गया होगा। अत सम्भव है कि आदिवाराह और आदिशूर एक ही पुरुषके नाम हों।

यह भी अनुमान होता है कि कन्नौजके राजा भोजदेव, महेन्द्रपाल, महीपाल आदि, और बङ्गालके पालवंशी एक ही वंशके हो, क्योंकि एक तो ये दोनों सूर्यवंशी थे, दूसरे, जब राठोड राजा इन्द्रराज तीसरेने महीपाल (क्षितिपाल) से कन्नौजका राज्य छीन लिया तब

(१) J Bm A S, 1896, P 21

बङ्गालके पालवंशी राजा धर्मपालने इन्द्रराजसे कन्नौज छीन कर फिरसे महीपालको ही वहाँका राजा बना दिया ।

डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र और जनरल कनिङ्गहाम, सामन्तसेनको वीरसेनका पुत्र या उत्तराधिकारी अनुमान करते हैं । परन्तु हेमन्तसेनके पुत्र विजयसेनके लेखमें लिखा है—

क्षोणीन्द्रैर्वीरसेनप्रभृतिभिरभित कीर्तिमद्भिर्बभूवे ।

न्तस्मिन्सेनान्ववाये अनिकुलशिरोदामसामन्तसेनः ॥

अर्थात् उस वंशमें वीरसेन आदि राजा हुए और उसी सेन-वंशमें सामन्तसेन उत्पन्न हुआ ।

इससे वीरसेन और सामन्तसेनके बीच दूसरे राजाओंका होना सिद्ध होता है ।

सम्भव है, ईसवी सनकी ग्यारहवीं शताब्दीके उत्तरार्ध (विक्रम-संवत्की बारहवीं शताब्दीके पूर्वार्ध) में सामन्तसेन हुआ हो ।

उसके पुत्रका नाम हेमन्तसेन था ।

२-हेमन्तसेन ।

यह सामन्तसेनका पुत्र था और उसीके पीछे राज्यका अधिकारी हुआ । इसकी रानीका नाम यशोदेवी था, जिससे विजयसेनका जन्म हुआ ।

सामन्तसेन और हेमन्तसेन, ये दोनों साधारण राजा थे । इनका अधिकार केवल बङ्गालके पूर्वके कुछ प्रदेश पर ही था । ये पालवंशियोंके सामन्त ही हों तो आश्चर्य नहीं ।

३-विजयसेन ।

यह हेमन्तसेनका पुत्र और उत्तराधिकारी था । अरिराज, वृषभशङ्कर

(१) Ep Ind Vol I, P 307

और गौडेश्वर इसके उपनाम थे। दानसागरमें इसे वीरेन्द्रका राजा लिखा है[1]। इससे प्रतीत होता है कि सेनवंशमें यह पहला प्रतापी राजा था।

इसके समयका एक शिलालेख देवपाडामें मिला है। उसमें लिखा है कि इसने नान्य और वीर नामक राजाओंको बन्दी बनाया तथा गौड, कामरूप और कलिङ्गके राजाओं पर विजय प्राप्त किया।

विन्सैंट स्मिथने ११११ से ११५८ ईसवी तक इसका राज्य होना माना है।

पूर्वोक्त 'नान्य' बहुत करके नेपालका राजा 'नान्यदेव' ही होगा। वह विक्रम-संवत् ११५४ (शक-संवत् १०१९) में विद्यमान थाँ। नेपालमें मिली हुई वंशावलियोंमें नेपाली संवत् ९, अर्थात् शक-संवत् ८११, में नान्यदेवका नेपाल विजय करना लिखा है। परन्तु यह समय नेपालमें मिली हुई प्राचीन लिखित पुस्तकोंसे नहीं मिलता।

नेपाली संवत्के विषयमें नेपालकी वंशावलीमें लिखा है कि दूसरे ठाकुरी-वंशके राजा अभयमल्लके पुत्र जयदेवमल्लने नेवारी (नेपाली) संवत् प्रचलित किया था। इस संवत्का आरंभ शक संवत् ८०२ (ईसवी सन् ८८० और विक्रम-संवत् ९३७) में हुआ था। जयदेवमल्ल कान्तिपुर और ललित-पट्टनका राजा था। नेपाल संवत ९ अर्थात् शक-संवत ८११, श्रावण-शुक्र-सप्तमी, के दिन कर्णाटकके नान्यदेवने नेपाल विजय करके जयदेवमल्ल और उसके छोटे भाई आनन्दमल्लको जो भाटगाँव आदि सात नगरोंका स्वामी था, तिरहुतकी तरफ भगा दिया था।

इससे प्रकट होता है कि नेपाल-संवत्का और शक-संवत्का अन्तर ८०२ (विक्रम-संवत्का ९३७) है। इसी वंशावलीमें आगे यह भी

(१) J Bm A. S, 1896, P. 20 (२) Ep. Ind, I, P. 309 (३) Ep Ind, Vol 1, P 313, note 57. (४) Ep Ind, Vol 1 P. 313, note 57 (५) Ind Ant., Vol. XIII, P. 514

लिखा है कि नेपाल-संवत् ४४४, अर्थात् शक-संवत् १२४५, में सूर्यवंशी हरिसिंहदेवने नेपाल पर विजय प्राप्त किया। इससे नेपाली संवत् और शकसंवत्का अन्तर ८०१ (विक्रम-संवत्का ९३६) आता है।

डाक्टर ब्रामलेके आधार पर प्रिन्सेप साहबने लिखा है कि नेवर (नेपाल) संवत् आक्टोबर (कार्तिक) में प्रारम्भ हुआ और उसका ९५१ वॉं वर्ष ईसवी सन १८३१ में समाप्त हुआ थौ। इससे नेपाली संवत्का और ईसवी सनका अन्तर ८८० आता है। डाक्टर कीलहार्नने भी नेपालमें प्राप्त हुए लेखों और पुस्तकोंके आधार पर, गणित करके, यह सिद्ध किया है कि नेपाली संवत्का आरम्भ २० आक्टोबर ८७९ ईसवी (विक्रम-संवत् ९३६, कार्तिक शुक्ल १) को हुआ था।

विजयसेनके समयमें गौड-देशका राजा महीपाल (दूसरा), शूरपाल या रामपालमें से कोई होगा। इनके समयमें पाल राज्यका बहुतसा भाग दूसरोंने दबा लिया था। अत: सम्भव है, विजयसेनने भी उससे गौड-देश छीन कर अपनी उपाधि गौडेश्वर रक्खी हो।[3]

इसके पुत्रका नाम बल्लालसेन था।

४ बल्लालसेन।

यह विजयसेनका पुत्र और उत्तराधिकारी था। इस वंशमें यह सबसे प्रतापी और विद्वान् हुआ, जिससे इसका नाम अब तक प्रसिद्ध है। महाराजाधिराज और निश्शङ्कशङ्कर इसकी उपाधियॉं थीं। वि० स० ११७० (ई० स० १११९) में इसने मिथिला पर विजय प्राप्त किया। उसी समय इसके पुत्र लक्ष्मणसेनके जन्मकी सूचना इसको मिली।

(१) प्रिन्सेप्स एन्टिक्विटीज, यूजफुल टेबल्स, भाग २, पृ० १६६ (२) Ind Ant Vol XVII, P 246 (३) अबुल्फजलने बल्लालके पिता इसी विजयसेनसे इनकी वंशावली लिखी है परन्तु विजयसेनकी जगह उसने सुखसेन लिखा है।

उसकी यादगारमें वि०सं० ११७६ (ई०स० १११९=श०सं० १०४१) में इसने, अपने पुत्र लक्ष्मणसेनके नामका संवत् प्रचलित किया। तिरहुतमें इस संवतका आरम्भ माघ शुक्ल १ से माना जाता है।

इस संवत्के समयके विषयमें भिन्न भिन्न प्रकारके प्रमाण एक दूसरेसे विरूद्ध मिलते हैं। वे ये हैं—

(क) तिरहुतके राजा शिवसिंहदेवके दानपत्रमें लक्ष्मणसेन सं०२९३ श्रावण शुक्ल ७, गुरुवार, लिख कर साथ ही—" सन् ८०१, संवत् १४५५, शाके १३२१ " लिखा है।

(ख) डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्रके मतानुसार ई०स० ११०६ (वि०-सं० ११६२, श०स० १०२७) के जनवरी (माघशुक्ल १) से उसका प्रारम्भ हुआ। 'बङ्गालका इतिहास' नामक पुस्तकके लेखक, मुन्शी शिवनन्दनसहायका, भी यही मत है।

(ग) मिथिलाके पञ्चाङ्गोंके अनुसार लक्ष्मणसेन-संवत्का आरम्भ शक संवत् १०२६ से १०३१ के बीचके किसी वर्षसे होना सिद्ध होता है। परन्तु इससे निश्चित समयका ज्ञान नहीं होता।

(घ) अबुलफजलके लेखानुसार इस संवत्का आरम्भ शक-संवत् १०४१ में हुआ था।

(ङ) स्मृति-तत्त्वामृत नामक हस्त-लिखित पुस्तकके अन्तमें लिखे संवत्के अनुसार अबुलफजलका पूर्वोक्त मत ही पुष्ट होता है।

उपर्युक्त शिवसिंहके लेख और पञ्चाङ्गों आदिके आधार पर डाक्टर कीलहार्नने गणित किया तो मालूम हुआ कि यदि शक-संवत् १०२८ मृगशिर-शुक्ल १, को इसका प्रारम्भ माना जाय तो पूर्वोक्त ६

(१) J B A S, Vol. 47, Part I, p 398 (२) Book of Indian Eras, p 76-79 (३) J. B A S, Vol 57. part I, p 1-2. (४) Ind Anti Vol. XIX, p 5, 6

तिथियोंमेंसे ५ के वार ठीक ठीक मिलते है और यदि गतकलियुग संवत् १०४१, कार्तिक-शुक्ला १ को इस संवत्का पहला दिन माना जाय तो छहों तिथियोंके वार मिल जाते हैं। परन्तु अभीतक इसके आरम्भका पूरा निश्चय नहीं हुआ।

ऐसा भी कहते है कि जिस समय बल्लालसेनने मिथिला पर चढ़ाई की उसी समय, पीछेसे, उसके मरनेकी खबर फैल गई तथा उन्हीं दिनों उसके पुत्र लक्ष्मणसेनका जन्म हुआ। अत लोगोंने बल्लालसेनको मरा समझ कर उसके नवजात बालक लक्ष्मणको गद्दी पर बिठा दिया और उसी दिनसे यह संवत् चला।

विक्रम-संवत् १२३५ (शक-संवत् ११००) में लक्ष्मणसेन गद्दी पर बैठा। अतएव यह संवत् अवश्य ही लक्ष्मणसेनके जन्मसे ही चला होगा।

बल्लालने पालवंशी राजा महीपाल दूसरेको कैद करनेवाले कैवर्तोंको अपने अधीन कर लिया था। कहा जाता है कि उसने अपने राज्यके पाँच विभाग किये थे—१—राढ़, (पश्चिम बङ्गाल), २—वरेन्द्र (उत्तरी बङ्गाल), बागडी, (गंगाके मुहानेके बीचका देश) ४—वङ्ग (पूर्व बंगाल) और ५—मिथिला।

पहलेसे ही वङ्ग-देशमें बौद्ध-धर्मका बहुत जोर था। अतएव धीरे धीरे वहाँके ब्राह्मण भी अपना कर्म छोड कर व्यापार आदि कार्योंमें लग गये थे और वैदिक धर्म नष्टप्राय हो गया था। यह दशा देख कर पूर्वोलिखित राजा आदिशूरने वैदिक धर्मके उद्धारके लिए कन्नौजसे उच्चकुलके ब्राह्मणों और कायस्थोंको लाकर बङ्गालमें बसाया। उनके वंशके लोग अब तक कुलीन कहलाते है। आदिशूरके बाद इस देश पर बौद्धधर्मावलम्बी पालवंशियोंका अधिकार हो जानेसे वहाँ फिर वैदिक-धर्मकी

(१) वङ्ग भारत, द्वितीय खण्ड, पृ० १४० और J Bm A S 1896 p 26.

उन्नति रुक गई। परन्तु उनके राज्यकी समाप्तिके साथ ही साथ बौद्ध धर्मका लोप और वैदिक धर्मकी उन्नतिका प्रारम्भ हो गया तथा वर्णाश्रम-व्यवस्थासे रहित बौद्ध लोग वैदिक धर्मावलम्बियोंमें मिलने लगे। इस समय बल्लालसेनने वर्णव्यवस्थाका नया प्रबन्ध किया और आदिशूर द्वारा लाये गये कुलीन ब्राह्मणोंका बहुत सन्मान किया।

बल्लालसेन-चरितमें लिखा है—

"बल्लालसेनने एक महायज्ञ किया। उसमें चारों वर्णोंके पुरुष निमन्त्रित किये गये। बहुतसे मिश्रित वर्णके लोग भी बुलाये गये। भोजन-पान इत्यादिसे योग्यतानुसार उनका सन्मान भी किया गया। उस समय, अपनेको वैश्य समझनेवाले सोनार बनिये अपने लिए कोई विशेष प्रबन्ध न देख कर असन्तुष्ट हो गये। इस पर क्रुद्ध होकर राजाने उन्हें सच्छूद्रों (अन्त्यजोंसे ऊपरके दरजेवाले शूद्रों) में रहनेकी आज्ञा दी, जिससे वे लोग वहाँसे चले गये। तब बल्लालसेनने जातिमें उनका दरजा घटा दिया और यह आज्ञा दी कि यदि कोई ब्राह्मण इनको पढावेगा या इनके यहाँ कोई कर्म करावेगा तो वह जातिसे बहिष्कृत कर दिया जायगा। साथ ही उन सोनार-बनियोंके यज्ञोपवीत उतरवा लेनेका भी हुक्म दिया। इससे असन्तुष्ट होकर बहुतसे बनिये उसके राज्यसे बाहर चले गये। परन्तु जो वहीं रहे उनके यज्ञोपवीत उतरवा लिये गये। उन दिनों वहाँ पर ब्राह्मण लोग दास-दासियोंका व्यापार किया करते थे। यही बनिये उनको रुपया कर्ज़ दिया करते थे। परन्तु पूर्वोक्त घटनाके बाद उन बनियेंने ब्राह्मणोंको धन देना बन्द कर दिया। फलतः उनका व्यापार भी बन्द हो गया। तब सेवक न मिलने लगे। लोगोंको बड़ा कष्ट होने लगा। उसे दूर करनेके लिए बल्लालसेनने आज्ञा दी कि आजसे कैवर्त (नाव चलानेवाले और मछली मारनेवाले अर्थात् मल्लाह और मछुए) लोग सच्छूद्रोंमें गिने जायँ और उनको सेवक रख कर, उनके

हाथसे जल आदि न पीनेका पुराना रिवाज उठा दिया जाय। इस आज्ञाके निकलने पर उच्च वर्णके लोगोंने कैवर्तोंके साथ परहेज़ करना छोड दिया।

कैवर्तोंकी प्रतिष्ठा-वृद्धिका एक कारण और भी था। बल्लालसेनका पुत्र लक्ष्मणसेन अपनी सौतेली माँसे असन्तुष्ट होकर भाग गया था। उस समय इन्हीं कैवर्तोंने उसका पता लगानेमें सहायता दी थी। ये लोग बडे बहादुर थे। उत्तरी बङ्गालमें ये लोग बहुत रहते थे। इससे उनके उपद्रव आदि करनेका भी सन्देह बना रहता था। परन्तु पूर्वोक्त आज्ञा प्रचलित होने पर ये लोग नौकरीके लिए इधर उधर बिखर गये। इन्होंने पालवंशी महीपालको कैद किया था।

बल्लालसेनने उनके मुखिया महेशको महामण्डलेश्वरकी उपाधि दी थी और अपने सम्बन्धियों सहित उसे दक्षिणघाट (मण्डलघाट) भेज दिया था।

कैवर्तोंकी इस पदवृद्धिको देख कर मालियों, कुम्भकारों और लुहारोंने भी अपना दरजा बढानेके लिए राजासे प्रार्थना की। इस पर राजाने उन्हें भी सच्छूद्रोंमें गिननेकी आज्ञा दे दी। उसने स्वयं भी अपने एक नाईको ठाकुर बनाया।"

सोनार-बनियोंके साथ किये गये बरतावके विषयमें भी लिखा है कि ये लोग ब्राह्मणोंका अपमान किया करते थे। उनका मुखिया बल्लालके शत्रु मगधके पालवंशी राजाका सहायक था। मुखियाने अपनी पुत्रीका विवाह भी पाल राजासे किया था।

उपर्युक्त वृत्तान्त बल्लाल-चरितके कर्ता अनन्त-भट्टने शरणदत्तके ग्रन्थसे उद्धृत किया है। यह ग्रन्थ बल्लालसेनके समयमें ही बना था। अतः उसका लिखा वर्णन झूठ नहीं हो सकता।

वल्लालसेन अपनी ही इच्छाके अनुसार वर्ण-व्यवस्थाके नियम बनाया करता था। यह भी इससे स्पष्ट प्रतीत होता है।

आनन्द-भट्टने यह भी लिखा है कि बल्लालसेन बौद्धों (तान्त्रिक बौद्धों) का अनुयायी था। वह १२ वर्षकी नटियों और चाण्डालिनियोंका पूजन किया करता था। परन्तु अन्तमें वदरिकाश्रम-निवासी एक साधुके उपदेशसे वह शैव हो गया था। उसने यह भी लिखा है कि ग्वाले, तम्बोली, कसेरे, ताँती (कपडे बुननेवाले), तेली, गन्धी, वैद्य और शाङ्खिक (शङ्खकी चूडियाँ बनानेवाले) ये सब सच्छूद्र हैं और सब सच्छूद्रोंमें कायस्थ श्रेष्ठ हैं[1]।

सिंहगिरिके आधार पर, अनन्त-भट्टने यह भी लिखा है कि सूर्यमण्डलसे शाक द्वीपमें गिरे हुए मग जातिके लोग ब्राह्मण हैं[2]।

इतिहासवेत्ताओंका अनुमान है कि ये लोग पहले ईरानकी तरफ रहते थे। वहाँ ये आचार्यका काम किया करते थे। वहींसे ये इस देशमें आये। ये स्वयं भी अपनेको शाक द्वीप—शकोंके द्वीपके—ब्राह्मण कहते हैं। ये फलितज्योतिषके विद्वान् थे। अनुमान है कि भारतमें फलितज्योतिषका प्रचार इन्हीं लोगोंके द्वारा हुआ होगा। क्योंकि वैदिक ज्योतिषमें फलित नहीं है।

५५० ईसवीके निकटकी लिखी हुई एक प्राचीन संस्कृत-पुस्तक नेपालमें मिली है। उसमें लिखा है—

ब्राह्मणानां मगानां च समत्व जायते कलौ।

अर्थात् कलियुगमें ब्राह्मणोंका और मग लोगोंका दरजा बराबर हो जायगा। इससे सिद्ध है कि उक्त पुस्तकके रचना-काल (विक्रम-संवत् ६०७) में ब्राह्मण मगोंसे श्रेष्ठ गिने जाते थे।

(१) J Bm A S Pro, 1901, January
(२) J Bm. A S Pro, 1901 P. 75
(३) J Bm A S Pro, 1902, P. 3.

अलबेरुनीने लिखा है कि अब तक हिन्दुस्तानमें बहुतसे जरतुश्तके अनुयायी हैं। उनको मग कहते हैं[1]। मग ही भारतमें सूर्यके पुजारी हैं।

शक-संवत् १०५९ (विक्रम-संवत् ११९४) में मगजातिके शाकद्वीपी ब्राह्मण गङ्गाधरने एक तालाब बनवाया था। उसकी प्रशस्ति गोविन्दपुरमें (गया जिलेके नवादा विभागमें) मिली है। उसमें लिखा है कि तीन लोकके रत्नरूप अरुण (सूर्यके सारथि) के निवाससे शाकद्वीप पवित्र है। यहाँके ब्राह्मण मग कहाते है। ये सूर्यसे उत्पन्न हुए है। इन्हें श्रीकृष्णका पुत्र शाम्ब[2] इस देशमें लाया था। इससे भी ज्ञात होता है कि मग लोग शाक-द्वीपसे ही भारतमें आये हैं। यह गङ्गाधर मगधके राजा रुद्रमानका मन्त्री और उत्तम कवि था। उसने अद्वैतशतक आदि ग्रन्थ बनाये हैं।

पूर्व-कथित बल्लालचरित शक-संवत् १४३२ (विक्रमसवत् १५६७) में आनन्द-भट्टने बनाया। उसने उसे नवद्वीपके राजा बुद्धिमतको अर्पण किया। आनन्दभट्ट बल्लालके आश्रित अनन्त-भट्टका वंशज था, और उक्त नवद्वीपके राजाकी सभामें रहता था। आनन्द-भट्टने यह ग्रन्थ निम्नलिखित तीन पुस्तकोंके आधार पर लिखा है।

१—बल्लालसेनको शैव बनानेवाले (बदरिकाश्रमवासी) साधु सिंहगिरि-रचित व्यासपुराण।

२—कवि शरणदत्तका बनाया बल्लालचरित।

३—कालिदास नन्दीकी जयमङ्गलगाथा।

साधु सिंहगिरि तो बल्लालसेनका गुरु ही था। परन्तु पिछले दोनों, शरणदत्त और कालिदास नन्दी, भी उसके समकालीन ही होंगे, क्योंकि

(१) Albernnis' India, English translation, Vol I, P. 21

(२) इसकी माताका नाम जाम्बवती था।

(३) *Ep. Ind*, *Vol. II*, p 333

शक-संवत् ११२७ (विक्रमसंवत् १२६२) में लक्ष्मण-सेनके महामाण्डलिक, बटुदासके पुत्र, श्रीधरदास, ने सदुक्तिकर्णामृत नामक ग्रन्थ सङ्ग्रह किया था। उसमें इन दोनोंके रचित पद्य भी दिये गये हैं। इस ग्रन्थमें बङ्गालके कोई ४००० से अधिक कवियोंके श्लोक सङ्ग्रह किये गये हैं। अतएव यह ग्रन्थ इन कवियोंके समयका निर्णय करनेके लिए बहुत उपयोगी है। इस ग्रन्थके कर्ताका पिता बटुदास लक्ष्मणसेनका प्रीतिपात्र और सलाहकार सामन्त थो।

बल्लालसेन विद्वानोंका आश्रयदाता ही नहीं, स्वयं भी विद्वान था। शक-संवत् १०९१ (विक्रम-संवत् १२२६) में उसने दान-सागर नामक पुस्तक समाप्त की और इसके एक वर्ष पहले, शक-संवत् १०९० (वि० स० १२२५) में अद्भुतसागर नामक ग्रन्थ बनाना प्रारम्भ किया था। परन्तु इसे समाप्त न कर सका। बल्लालसेनकी मृत्युके विषयमें इस ग्रन्थमें लिखा है—

शक-संवत् १०९० (विक्रम-संवत् १२२५) में बल्लालसेनने इस ग्रन्थका प्रारम्भ किया और इसके समाप्त होनेके पहले ही उसने अपने पुत्र लक्ष्मणसेनको राज्य सौंप दिया। साथ ही इस पुस्तकके समाप्त करनेकी आज्ञा भी दे दी। इतना काम करके गङ्गा और यमुनाके सङ्गममें प्रवेश करके अपनी रानीसहित उसने प्राण-त्याग किया। इस घटनाके बाद लक्ष्मणसेनने अद्भुतसागर समाप्त करवाया।

बल्लालसेनकी गङ्गा-प्रवेशवाली घटना-शक-संवत् ११००, विक्रम-संवत् १२-५ या ईसवी सन् ११७८ के इधर उधर होनी चाहिए; क्योंकि लक्ष्मणसेनका महामण्डलिक श्रीधरदास, अपने सदुक्तिकर्णामृत ग्रन्थकी समाप्तिका समय शक-संवत् ११२७ (वि० स० १२६२=ईसवी

(१) J Bm A S Pro, 1901, p 75

-मत् १२०५) लिखता है । उसमें यह भी पाया जाता है कि यह संवत् लक्ष्मणसेनके राज्यका सत्ताईसवाँ वर्ष है ।

लक्ष्मणसेनका जन्म शक-संवत् १०४१ (वि० स० ११७६) में हुआ था । उस समय उसका पिता बल्लालसेन मिथिला विजय कर चुका था। अतएव यह स्पष्ट है कि उस समयके पूर्व ही वह (बल्लालसेन) राज्यका अधिकारी हो चुका था । अर्थात् बल्लालसेनने ५९ वर्षसे अधिक राज्य किया ।

यदि लक्ष्मणसेनके जन्मके समय बल्लालसेनकी अवस्था २० वर्षकी ही मानी जाय तो भी गङ्गा-प्रवेशके समय वह ८० वर्षके लगभग था । ऐसी अवस्थामें यदि अपने पुत्रको राज्य सौंप कर उसने जल-समाधि ली हो तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं । क्योंकि प्राचीन समयसे ऐसा ही होता चला आया है ।

बहुतसे विद्वानोंने बल्लालसेनके देहान्त और लक्ष्मणसेनके राज्याभिषेक-के समयसे लक्ष्मणसेन संवत्का चलना अनुमान करके जो बल्लालसेनका राजत्वकाल स्थिर किया है वह सम्भव नहीं । यदि वे दानसागर, अद्भुतसागर और सूक्तिकर्णामृत नामक ग्रन्थोंको देखते तो उसकी मृत्युके समयमें उन्हें सन्देह न होता । मिस्टर ब्रिसेपने अबुलफजलके लेखके आधार पर ईसवी सन् १०६६ से ११११६ तक ५० वर्ष बल्लालसेनका राज्य करना लिखा है । परन्तु जनरल कनिङ्हामने १०५० ईसवी से १०७३ ईसवी तक और डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्रने ईसवी सन् १०५६ से ११०६ तक अनुमान किया है । परन्तु ये समय ठीक नहीं जान पड़ते । मित्र महोदयने दानसागरकी रचनाके समयका यह श्लोक उद्धृत किया है--"पूर्णे शशिनवदशमिते शकाब्दे"।

(१) Notes on Sanskrit Mss, Vol III, 141.

परन्तु इसका अर्थ करनेमें १०९१ की जगह, भूलसे, १०१९ रख दिया गया है। बस इसी एक भूलसे आगे बराबर भूल होती चली गई है।

पुराने पद्योंमें बल्लालसेनका जन्म शक-संवत् ११२४ (विक्रम-संवत १२५९) में होना लिखा है। वह भी ठीक नहीं है। विन्सेंट स्मिथ साहबने बल्लालका समय ११५८ से ११७० ईसवी तक लिखा है।

५–लक्ष्मणसेन।

यह बल्लालसेनका पुत्र था और उसके बाद राज्यका स्वामी हुआ। इसकी निम्नलिखित उपाधियाँ मिलती हैं[1]।

अश्वपति, गजपति, नरपति, राजत्रयाधिपति, परमेश्वर, परमभट्टारक, महाराजाधिराज अरिराज-मदनशङ्कर और गौडेश्वर।

यह सूर्य और विष्णुका उपासक था। स्वयं विद्वानोंको आश्रय देनेवाला, दानी, प्रजापालक और कवि था। इसके बनाये हुए श्लोक सदुक्तिकर्णामृत, शार्ङ्गधरपद्धति आदिमें मिलते हैं। श्रीधरदास, उमापतिधर, जयदेव, हलायुध, शरण, गोवर्धनाचार्य और धोयी आदि विद्वानोंमेंसे कुछ तो इसके पिताके और कुछ इसके समयमें विद्यमान थे।

इसने अपने नामसे लक्ष्मणवती नगरी बसाई। लोग उसे पीछेसे लखनौती कहने लगे। इसकी राजधानी नदिया थी। ईसवी सन ११९९ (विक्रम सं० १२५६) में जब इसकी अवस्था ८० वर्षकी थी मुहम्मद बख्तियार खिलजीने नदिया इससे छीन लिया।

तबकाते नासिरीमें लक्ष्मणसेनके जन्मका वृत्तान्त इस प्रकार लिखा है[2]—

(१) J Bm. A S, 1896, p 13

(२) J Bm A S, 1865, p 135, 136 and Elliot's History of India, Vol II, p 307

अपने पिताकी मृत्युके समय राय लखमनिया (लक्ष्मणसेन) माताके गर्भमें था। अतएव उस समय राजमुकुट उसकी माँके पेट पर रक्खा गया। उसके जन्म-समय ज्योतिषियोंने कहा कि यदि इस समय बालकका जन्म हुआ तो वह राज्य न कर सकेगा। परन्तु यदि दो घण्टे बाद जन्म होगा तो वह ८० वर्ष राज्य करेगा। यह सुनकर उसकी माँने आज्ञा दी कि जब तक वह शुभ समय न आवे तब तक मुझे सिर नीचे और पैर ऊपर करके लटका दो। इस आज्ञाका पालन किया गया और जब वह समय आया तब उसे दासियोंने फिर ठीक तौर पर सुला दिया, जिससे उसी समय लखमनियाका जन्म हुआ। परन्तु इस कारणसे उत्पन्न हुई प्रसववीड़ासे उसकी माताकी मृत्यु हो गई। जन्मते ही लखमनिया राज्यसिंहासन पर बिठला दिया गया। उसने ८० वर्ष राज्य किया।

हम बल्लालसेनके वृत्तान्तमें लिख चुके हैं कि जिस समय बल्लालसेन मिथिला-विजयको गया था उसी समय पीछेसे उसके मरनेकी झूठी खबर फैल गई थी। उसीके आधार पर तबकाते नासिरीके कर्त्ताने लक्ष्मणसेनके जन्मके पहले ही उसके पिताका मरना लिख दिया होगा। परन्तु वास्तवमें लक्ष्मण-सेन जब ५९ वर्षका हुआ तब उसके पिताका देहान्त होना पाया जाता है।

आगे चल कर उक्त तवारीखमें यह भी लिखा है—

राय लखमनियाकी राजधानी नदिया थी। वह बड़ा राजा था। उसने ८० वर्ष तक राज्य किया। हिन्दुस्तानके सब राजा उसके वंशको श्रेष्ठ समझते थे और वह उनमें खलीफ़ाके समान माना जाता था।

जिस समय मुहम्मद बख्तियार खिलजी द्वारा बिहार (मगधके पालवंशी राज्य) के विजय होनेकी खबर लक्ष्मणसेनके राज्यमें फैली उस समय राज्यके बहुतसे ज्योतिषियों, विद्वानों और मन्त्रियोंने राजासे

निवेदन किया कि महाराज, प्राचीन पुस्तकोंमें भविष्यद्वाणी लिखी है कि यह देश तुर्कोंके अधिकारमें चला जायगा। तथा, अनुमानसे भी प्रतीत होता है कि वह समय अब निकट है; क्योंकि बिहार पर उनका अधिकार हो चुका है। सम्भवतः अगले वर्ष इस राज्य पर भी धावा होगा। अतएव उचित है कि इनके दुःखसे बचनेके लिए अन्य लोगों सहित आप कहीं अन्यत्र चले जायँ।

इस पर राजाने पूछा कि क्या उन पुस्तकोंमें उस पुरुषके कुछ लक्षण भी लिखे हैं जो इस देशको विजय करेगा? विद्वानोंने उत्तर दिया—हाँ, वह पुरुष आजानुबाहु (खड़ा होने पर जिसकी उँगलियाँ घुटनों तक पहुँचती हों) होगा। यह सुन कर राजाने अपने गुप्तचरों द्वारा मालूम करवाया तो बख्तियार खिलजीको वैसा ही पाया। इस पर बहुतसे ब्राह्मण आदि उस देशको छोड़ कर सङ्कनात (जगन्नाथ), बङ्ग (पूर्वी बङ्गाल), और कामरूद (कामरूप–आसाम) की तरफ चले गये। तथापि राजाने देश छोड़ना उचित न समझा।

इस घटनाके दूसरे वर्ष मुहम्मद बख्तियार खिलजीने बिहारसे ससैन्य कूच किया और ८० सवारों सहित आगे बढ़ कर अचानक नादियाकी तरफ धावा किया। परन्तु नदिया शहरमें पहुँच कर उसने किसीसे कुछ-छेड़-छाड़ न की। सीधा राज-महलकी तरफ चला। इससे लोगोंने उसे घोड़ोंका व्यापारी समझा। जब वह राज-महलके पास पहुँच गया तब उसने एकदम हमला किया और बहुतसे लोगोंको, जो उसके सामने आये, मार गिराया।

राजा उस समय भोजन कर रहा था। वह इस गोलमालको सुनकर महलके पिछले रास्तेसे नङ्गे पैर निकल भागा और सीधा सङ्कनात (जगन्नाथ) की तरफ चला गया। वहीं पर उसकी मृत्यु हुई। इधर राजाके भागते ही बख्तियारकी बाकी फौज भी वहाँ आ पहुँची और

राजाका खज़ाना आदि लूटना प्रारम्भ किया। बख्तियारने देश पर कब्ज़ा कर लिया और नदियाको नष्ट करके लखनौतीको अपनी राजधानी बनाया। उसके आसपासके प्रदेशों पर भी अधिकार करके उसने अपने नामका ख़ुतबा पढ़वाया और सिक्का चलाया। यहाँकी लूटका बहुत बड़ा भाग उसने सुलतान कुतबुद्दीनको भेज दिया।

इस घटनासे प्रतीत होता है कि लक्ष्मणसेनके अधिकारी या तो बख्तियारसे मिल गये थे या बड़े ही कायर थे; क्योंकि भविष्यद्वाणीका भय दिखला कर विना लड़े ही वे लोग लक्ष्मणसेनके राज्यको बख्तियारके हाथमें सौंपना चाहते थे। परन्तु जब राजा उनके उक्त कथनसे न घबराया तब बहुतसे तो उसी समय उसे छोड़ कर चले गये। तथा, जो रहे उन्होंने भी समय पर कुछ न किया। यदि यह अनुमान ठीक न हो तो इस बातका समझना कठिन है कि केवल ८० सवारों सहित आये हुए बख्तियारसे भी उन्होंने जमकर लोहा क्यों न लिया।

बख्तियार लक्ष्मणके समग्र राज्यको न ले सका। वह केवल लखनौतीके आसपासके कुछ प्रदेशों पर ही अधिकार कर पाया। क्योंकि इस घटनाके ६० वर्ष बाद तक पूर्वी बङ्गाल पर लक्ष्मणके वंशजोंका ही अधिकार था।

यह बात तबकाते नासिरीसे मालूम होती है।

उक्त तवारीख़में मुसलमानोंके इस विजयका संवत् नहीं लिखा। तथापि उस पुस्तकसे यह घटना हिजरी सन् ५९३ (ई० स० ११९७) और हिजरी सन् ६०२ (ई०स० १२०५) के बीचकी मालूम होती है।

हम पहले ही लिख चुके हैं कि लक्ष्मणसेनके जन्मसे उसके नामका संवत् चलाया गया था तथा ८० वर्षकी अवस्थामें वह बख्तियार द्वारा हराया गया था। इसलिये यह घटना ई०स० ११९९ में हुई होगी।

(१) J. Bm. A S. 1896, p 27 and Elliot s History of India, Vol. II, p. 307-9.

मिस्टर रावर्टी अपने तबकाते नासिरीके अँगरेजी-अनुवादकी टिप्पणीमें लिखते हैं कि ई०स० ११९४ (हिजरी सन् ५९०) में यह घटना हुई होगी। ई० थामस साहब हिजरी सन् ५९९ (ई० स० १२०२—३) इसका होना अनुमान करते हैं। परन्तु मिस्टर ब्लाकमैनने विशेष खोजसे निश्चित किया है कि यह घटना ई० स० ११९८ और ११९९ के बीचकी है[1]। यह समय पण्डित गौरीशङ्करजीके अनुमानसे भी मिलता है।

दन्तकथाओंसे जाना जाता है कि जगन्नाथकी तरफसे वापस आकर लक्ष्मणसेन विक्रमपुरमें रहा थो।

सदुक्तिकर्णामृतके कर्ताने शक-सवत् ११२७ (विक्रम-सवत् १२६२, ई०स०१२०५) में भी लक्ष्मणसेनको राजा लिखा है। इससे सिद्ध होता है कि उस समय तक भी वह विद्यमान था। सम्भव है उस समय वह सोनारगाँवमें राज्य करता हो।

बख्तियार खिलजीके आक्रमणके समय लक्ष्मणसेनको राज्य करते हुए २१ वर्ष हो चुके थे। उस समय उसकी अवस्था ८० वर्षकी थी। उसके राज्यके भिन्न भिन्न प्रदेशोंमें उसके पुत्र अधिकारी नियत हो चुके थे।

उसका देहान्त विक्रम-सवत् १२६२ (ई०स० १२०५) के बाद हुआ होगा। जनरल कनिङ्गहामके मतानुसार उसकी मृत्यु १२०६ ईसवीमें हुई[2]।

विन्सेन्ट स्मिथ साहबने लक्ष्मणसेनका समय ११७० से १२०० ईसवी तक लिखा है। उसके राज्यके तीसरे वर्षका एक ताम्रपत्र मिला है। उसमें उसके तीन पुत्र होनेका उल्लेख है—माधवसेन, केशवसेन,

---

(१) J Bm A S' 1875, p 275 77 (२) J Bm A S, 1878 P 399 (३) A S B, Vol XV, P 167

विश्वरूपसेन । जरनल आव् दि बाम्बे एशियाटिक सोसाइटीमें इस ताम्रपत्रको सातवें वर्षका लिखा है । यह गलतीसे छप गया है । क्योंकि लेखके फोटोमें अङ्क तीन स्पष्ट प्रतीत होता है ।

तबकाते नासिरीके कर्ताने लखनौती-राज्यके विषयमें लिखा है—

यह प्रदेश गङ्गाके दोनों तरफ फैला हुआ है । पश्चिमी प्रदेश राल (राढ़) कहलाता है । इसीमें लखनौती नगर है । पूर्व तरफके प्रदेशको वरिन्द (वरेन्द्र) कहते हैं।

आगे चल कर, अलीमर्दानके द्वारा बख्तियारके मारे जानेके बादके वृत्तान्तमें, वही ग्रन्थकर्ता लिखता है कि अलीमर्दानने दिवकोट जाकर राजकार्य सँभाला और लखनौतीके सारे प्रदेश पर अधिकार कर लियां । इससे प्रतीत होता कि मुहम्मद बख्तियार खिलजी समग्र सेनराज्यको अपने अधिकार-मुक्त न कर सका था ।

अबुलफ़जलने लक्ष्मणसेनका केवल सात वर्ष राज्य करना लिखा है, परन्तु यह ठीक नहीं ।

उमापतिधर ।

इस कविकी प्रशंसा जयदेवने अपने गीतगोविन्दमें की है—“ वाचः पल्लवयत्युमापतिधरः ”—इससे प्रकट होता है कि या तो यह कवि जयदेवका समकालीन था या उसके कुछ पहले हो चुका था । गीतगोविन्दकी टीकासे ज्ञात होता है कि उक्त श्लोकमें वर्णित उमापतिधर, जयदेव, शरण, गोवर्धन और धोयी लक्ष्मणसेनकी सभाके रत्न थे ।

वैष्णवतोषिणीमें (यह भागवतकी भावार्थदीपिका नामक टीकाकी टीका है) लिखा है—“ श्रीजयदेवसहचरेण महाराजलक्ष्मणसेनमन्त्रिवरेण उमापतिधरेण ” अर्थात् जयदेवके मित्र और लक्ष्मणसेनके मन्त्री उमापतिधरने । इससे इन दोनोंकी समकालीनता प्रकट होती है ।

(१) Raverty's Tabkatenasiri, P. 588. (२) Ravertys's Tabkatenasiri, P. 578. (३) क्षत्रियपत्रिका, खण्ड १२, सख्या ५, ६, पृ० ८२.

काव्यमालामें छपी हुई आर्या-सप्तशतीके पहले पृष्ठके नोट न० १ में एक श्लोक है—

> गोवर्धनश्च शरणो जयदेव उमापतिः ।
> कविराजश्च रत्नानि समितौ लक्ष्मणस्य च ॥

इससे भी प्रतीत होता है कि उमापति लक्ष्मणकी सभामें विद्यमान था। परन्तु लक्ष्मणसेनके दादा विजयसेनने एक शिवमन्दिर बनवाया था। उसकी प्रशस्तिका कर्ता यही उमापतिधर था। इससे जाना जाता है कि यह कवि विजयसेनके राज्यसे लेकर वल्लालसेनके कुमारपद तक जीवित रहा होगा। तथा, 'लक्ष्मणसेन जन्मते ही राज्यसिंहासन पर बिठलाया गया था,' इस जनश्रुतिके आधार पर ही इस कविका उसके राज्य-समयमें भी विद्यमान होना लिख दिया गया हो तो आश्चर्य नहीं।

इस कविका कोई ग्रन्थ इस समय नहीं मिलता। केवल इसके रचे हुए कुछ श्लोक वैष्णवतोषिणी और पद्यावलि आदिमें मिलते हैं।

शरण।

इसका नाम भी गीतगोविन्दके पूर्वोदाहृत श्लोकमें मिलता है। कहते हैं, यह भी लक्ष्मणसेनकी सभाका कवि था। सम्भवतः वल्लालसेन-चरित (बल्लालचरित) का कर्त्ता शरणदत्त और यह शरण एक ही होगा। यह वल्लालसेनके समयमें भी रहा हो तो आश्चर्य नहीं।

गोवर्धन।

आचार्य गोवर्धन, नीलाम्बरका पुत्र, लक्ष्मणसेनका समकालीन था। इसने ७०० आर्या-छन्दोंका आर्यासप्तशति नामक ग्रन्थ बनाया। इसने उसमें सेनवंशके राजाकी प्रशंसा की है। परन्तु उसका नाम नहीं दिया। उसीमें इसने अपने पिताका नाम नीलाम्बर लिखा है।

इस ग्रन्थकी टीकामें लिखा है कि 'सेनकुलतिलकभूपति' से सेतु-काव्य-के रचयिता प्रवरसेनका तात्पर्य है। परन्तु यह ठीक नहीं है। शक-संवत्

१७०२ विक्रम-संवत् १८३७ में अनन्त पण्डितने यह टीका बनाई थी। उस समय, शायद, वह सेनवंशी राजाओंके इतिहाससे अनभिज्ञ रहा होगा। नहीं तो गोवर्धनके आश्रयदाता बल्लालसेनके स्थान पर वह प्रवर-सेनका नाम कभी न लिखता।

जयदेव।

यह गीतगोविन्दका कर्ता था। इसके पिताका नाम भोजदेव और माताका वामा (रामा) देवी था। इसकी स्त्रीका नाम पद्मावती था। यह बङ्गालके केन्दुबिल्व (केन्दुली) नामक गाँवका रहनेवाला था। वह गाँव उस समय वीरभूमि जिलेमें था।

इस कविकी कविता बहुत ही मधुर होती थी। स्वयं कविने अपने मुँहसे अपनी कविताकी प्रशंसामें लिखा है—

शृणुत साधु मधुरं विबुधा विबुधालयतोपि दुरापम्।

अर्थात् हे पण्डितो! स्वर्गमें भी दुर्लभ, ऐसी अच्छी और मीठी मेरी कविता सुनो। इसका यह कथन वास्तवमें ठीक है।

हलायुध।

यह वत्सगोत्रके धनञ्जय नामक ब्राह्मणका पुत्र था। बल्लालसेनके समय क्रमसे राजपण्डित, मन्त्री और धर्माधिकारीके पदों पर यह रहा था। इसके बनाये हुए ये ग्रन्थ मिलते हैं।— ब्राह्मणसर्वस्व, पण्डितसर्वस्व, मीमांससर्वस्व, वैष्णवसर्वस्व, शैवसर्वस्व, द्विजानयन आदि। इन सबमें ब्राह्मणसर्वस्व मुख्य है। इसके दो भाई और थे। उनमेंसे बड़े भाई पशुपतिने पशुपति-पद्धति नामका श्राद्धविषयक ग्रन्थ बनाया और दूसरे भाई ईशानने आह्निकपद्धति नामक पुस्तक लिखी।

श्रीधरदास।

यह लक्ष्मणसेनके प्रीतिपात्र सामन्त बटुदासका पुत्र था। यह स्वयं भी लक्ष्मणसेनका माण्डलिक था। इसने शक-संवत् ११२७ (लक्ष्मण-

सेनके संवत् २७) में सदुक्तिकर्णामृत नामका ग्रन्थ संग्रह किया। उसमें ४४६ कवियोंकी कविताओंका संग्रह है।

६-माधवसेन (?)।

यह लक्ष्मणसेनका बड़ा पुत्र था। अबुलफ़ज़लने लिखा है कि लक्ष्मणसेनके पीछे उसके पुत्र माधवसेनने १० वर्ष और उसके बाद केशवसेनने १५ वर्ष राज्य किया। मिस्टर एटकिन्सनने लिखा है कि अल्मोड़ा (जिला कमाऊँके) पास एक योगेश्वरका मन्दिर है। उसमें माधवसेनका एक ताम्रपत्र रक्खा हुआ है,[1] परन्तु वह अब तक छपा नहीं। इससे उसका ठीक वृत्तान्त कुछ भी मालूम नहीं होता। यदि उक्त ताम्रपत्र वास्तवमें ही माधवसेनका हो तो उससे अबुलफ़ज़लके लेखकी पुष्टि होती है। परन्तु अबुलफ़ज़लका लिखा बल्लालसेन और लक्ष्मणसेनका समय ठीक नहीं है। इस लिए हम उसीके लिखे माधवसेन और केशवसेनके राज्य-समय पर भी विश्वास नहीं कर सकते।

७-केशवसेन (?)।

यह माधवसेनका छोटा भाई था। हरिमिश्र घटककी[2] बनाई कारिकाओंमें माधवसेनका नाम नहीं है। उनमें लिखा है कि लक्ष्मणसेनके बाद उसका पुत्र केशवसेन, यवनोंके भयसे, गौड-राज्य छोड कर, अन्यत्र चला गया। एडुमिश्रने केशवका किसी अन्य राजाके पास जाकर रहना लिखा है। परन्तु उक्त कारिकामें उस राजाका नाम नहीं दिया गया।

८-विश्वरूपसेन।

यह भी माधवसेन और केशवसेनका भाई था। इसका एक ताम्रपत्र मिला है। उसमें लक्ष्मणसेनके पीछे उसके पुत्र विश्वरूपसेनका राजा

(१) Kumaun p 516.

(२) घटक बङ्गालमें उन ब्राह्मणोंको कहते हैं जो तमाम कुलीनोंके वर-कन्याओंका सम्बन्ध कराया करते हैं।

होना लिखा है। पर माधवसेन और केशवसेनके नाम नहीं लिखे। सम्भव है, माधवसेन और केशवसेन, अपने पिताके समयमें ही भिन्न भिन्न प्रदेशोंके शासक नियत कर दिये गये हों। इसीसे अबुलफजलने उनका राज्य करना लिख दिया हो। और यदि वास्तवमें इन्होंने राज्य किया भी होगा तो बहुत ही अल्प समय तक।

पूर्वोक्त ताम्रपत्रमें विश्वरूपसेनको लक्ष्मणसेनका उत्तराधिकारी, प्रतापी राजा और यवनोंका जीतनेवाला, लिखा है। उसमें उसकी निम्न-लिखित उपाधियाँ दी हुई हैं—

अश्वपति, गजपति, नरपति, राजत्रयाधिपति, परमेश्वर, परमभट्टारक, महाराजाधिराज, अरिराज-वृषभाङ्कशङ्कर और गौडेश्वर।

इससे प्रकट होता है कि यह स्वतन्त्र और प्रतापी राजा था। सम्भव है, लक्ष्मणसेनके पीछे उसके बचे हुए राज्यका स्वामी यही हुआ हो। तबकाते नासिरीमें लिखा है—

"जिस समय ससैन्य बख्तियार खिलजी कामरूद (कामरूप) और तिरहुतकी तरफ गया उस समय उसने मुहम्मद शेरां और उसके भाईको फौज देकर लखनौर (राढ) और जाजनगर (उत्तरी उत्कल) की तरफ भेजा। परन्तु उसके जीतेजी लखनौतीका सारा इलाका उसके अधीन न हुआ।" अतएव, सम्भव है, इस चढाईमें मुहम्मद शेरां हार गया हो, क्योंकि विश्वरूपसेनके ताम्रपत्रमें उसे यवनोंका विजेता लिखा है। शायद उस लेखका तात्पर्य इसी विजयसे है। यदि यह बात ठीक हो तो लक्ष्मणसेनके बाद वङ्गदेशका राजा यही हुआ होगा और माधवसेन तथा केशवसेन विक्रमपुरके राजा न होंगे, किन्तु केवल भिन्न भिन्न प्रदेशोंके ही शासक रहे होंगे।

यद्यपि अबुलफजलने विश्वसेनका नाम नहीं लिखा तथापि उसका १४ वर्षसे अधिक राज्य करना पाया जाता है।

१ उसके दो ताम्रपत्र मिले हैं—पहला उसके राज्यके तीसरे वर्षका दूसरा चौदहवें वर्षका।

अबुलफज़लने, इसकी जगह, सदासेनका १८ वर्ष राज्य करना लिखा है।

९–दनौजमाधव।

अबुलफजलने सदासेनके पीछे नोजाका राजा होना लिखा है। घटकोंकी कारिकाओंमें केशवसेनके बाद दनुजमाधव (दनुजमर्दन या दनौजा माधव) का नाम दिया है। तारीख फीरोजशाहीमें इसीका नाम दनुजराय लिखा है। ये तीनों नाम सम्भवतः एक ही पुरुषके हैं।

ऊपर लिखा जा चुका है कि अबुलफजलने इसको नोजा लिखा है। अतएव या तो अबुलफजलने ही इसमें गलती की होगी या उसकी रचित *आईने अकबरीके अनुवादकने।*

घटकोंकी कारिकाओंसे इसका प्रतापी होना सिद्ध होता है। उनमें यह भी लिखा है कि लक्ष्मणसेनसे सम्मानित बहुतसे ब्राह्मण इसके पास आये थे, जिनका द्रव्यादिसे बहुत कुछ सन्मान इसने किया था।

इसने कायस्थोंकी कुलीनता बनी रखनेके लिए, घटक आदिक नियुक्त करके, उत्तम प्रबन्ध किया था। विक्रमपुरको छोडकर चन्द्रद्वीप (बाकला) में इसने अपनी राजधानी कायम की। इसके विक्रमपुर छोडनेका कारण यवनोंका भय ही मालम होता है।

लखनौतीका हाकिम मुगीसुद्दीन तुगरल, दिल्लीश्वरसे बगावत करके, वहाँका स्वतन्त्र स्वामी बन बैठा। तब देहलीके बादशाह बल्बनने उस पर चढ़ाई की। उसकी खबर पाने ही तुगरल लखनौती छोड कर भाग गया। बादशाहने उसका पीछा किया। उस समय रास्तेमें (सुनारगाँवमें)

(१) J B A S Vol VII p 43 (२) J B A S, Vol LXV, Part I p 9

दनुजराय बादशाहसे जा मिला। वहाँ पर इन दोनोंमें यह सन्धि हुई कि दनुजराय तुगरलको जलमार्गसे न भागने दें।

यह घटना १२८० ईसवी (विक्रमी संवत् १३३७) के करीब हुई थी। इसलिए उस समय तक दनुजरायका जीवित होना और स्वतन्त्र राजा होना पाया जाता है।

डाक्टर वाइजका अनुमान है कि यह बल्लालसेनका पौत्र था। परन्तु इसका लक्ष्मणसेनका पौत्र होना अधिक सम्भव है। यह विश्वरूपसेनका पुत्र भी हो सकता है। परन्तु अब तक इस विषयका कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिला।

जनरल कनिङ्गहामका अनुमान है कि यह भूइहार ब्राह्मण था। परन्तु घटकोंकी कारिकाओंमें और अबुलफजलकी आईने अकबरीमें इसको सेनवंशी लिखा है।

अन्य राजा।

घटकोंकी कारिकाओंसे पाया जाता है कि दनुजरायके पीछे रामवल्लभराय, कृष्णवल्लभराय, हरिवल्लभराय और जयदेवराय चन्द्रद्वीपके राजा हुए। जयदेवके कोई पुत्र न था। इसलिए उसका राज्य उसकी कन्याके पुत्र (दौहित्र) को मिला।

समाप्ति।

इस समय बङ्गालमें मुसलमानोंका राज्य उत्तरोत्तर वृद्धि कर रहा था। इस लिए विक्रमपुरकी सेनवंशी शाखावाला चन्द्रद्वीपका राज्य जयदेवरायके साथ ही अस्त हो गया।

---

(१) Elliot's History, Vol III, p 116 (२) J. B A S, 1874 p 83

उसके दो ताम्रपत्र मिले हैं—पहला उसके राज्यके तीसरे वर्षका दूसरा चौदहवें वर्षका।

अबुलफज़लने, इसकी जगह, सदासेनका १८ वर्ष राज्य करना लिखा है।

९–दनौजमाधव।

अबुलफज़लने सदासेनके पीछे नोजाका राजा होना लिखा है। घटकोंकी कारिकाओंमें केशवसेनके बाद दनुजमाधव (दनुजमर्दन या दनौजा माधव) का नाम दिया है। तारीख फीरोजशाहीमें इसीका नाम दनुजराय लिखा है। ये तीनो नाम सम्भवतः एक ही पुरुषके हैं।

ऊपर लिखा जा चुका है कि अबुलफजलने इसको नोजा लिखा है। अतएव या तो अबुलफजलने ही इसमें गलती की होगी या उसकी रचित आईने अकबरीके अनुवादकने।

घटकोंकी कारिकाओंसे इसका प्रतापी होना सिद्ध होता है। उनमें यह भी लिखा है कि लक्ष्मणसेनसे सम्मानित बहुतसे ब्राह्मण इसके पास आये थे, जिनका द्रव्यादिसे बहुत कुछ सन्मान इसने किया था।

इसने कायस्थोंकी कुलीनता बनी रखनेके लिए, घटक आदिक नियुक्त करके, उत्तम प्रबन्ध किया था। विक्रमपुरको छोडकर चन्द्रद्वीप (बाकला) में इसने अपनी राजधानी कायम की। इसके विक्रमपुर छोडनेका कारण यवनोंका भय ही मालूम होता है।

लखनौतीका हाकिम मुगीसुद्दीन तुगरल, दिल्लीश्वरसे बगावत करके, वहाका स्वतन्त्र स्वामी बन बैठा। तब देहलीके बादशाह बलबनने उस पर चढ़ाई की। उसकी खबर पाते ही तुगरल लखनौती छोड कर भाग गया। बादशाहने उसका पीछा किया। उस समय रास्तेमें (सुनारगाँवमें)

(१) J B A S Vol VII p 43 (२) J B A S, Vol LXV, Part I p 9

दनुजराय बादशाहसे जा मिला । वहाँ पर इन दोनोंमें यह सन्धि हुई कि दनुजराय तुगरलको जलमार्गसे न भागने दें ।

यह घटना १२८० ईसवी (विक्रमी संवत् १३३७) के करीब हुई थी। इसलिए उस समय तक दनुजरायका जीवित होना और स्वतन्त्र राजा होना पाया जाता है ।

डाक्टर वाइजका अनुमान है कि यह बल्लालसेनका पौत्र था । परंतु इसका लक्ष्मणसेनका पौत्र होना अधिक सम्भव है। यह विश्वरूपसेनका पुत्र भी हो सकता है। परन्तु अब तक इस विषयका कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिला।

जनरल कनिङ्गहामका अनुमान है कि यह भूइहार ब्राह्मण था। परन्तु घटकोंकी कारिकाओंमें और अबुलफज़लकी आईने अकबरीमें इसको सेनवंशी लिखा है।

अन्य राजा ।

घटकोंकी कारिकाओंसे पाया जाता है कि दनुजरायके पीछे रामवल्लभराय, कृष्णवल्लभराय, हरिवल्लभराय और जयदेवराय चन्द्रद्वीपके राजा हुए। जयदेवके कोई पुत्र न था। इसलिए उसका राज्य उसकी कन्याके पुत्र (दौहित्र) को मिला ।

समाप्ति ।

इस समय बङ्गालमें मुसलमानोंका राज्य उत्तरोत्तर वृद्धि कर रहा था । इस लिए विक्रमपुरकी सेनवंशी शाखावाला चन्द्रद्वीपका राज्य जयदेवरायके साथ ही अस्त हो गया ।

---

(१) Elliot's History, Vol. III, p. 116. (२) J. B. A. S., 1874 p. 83.

सेन-वंशी राजाओंकी वंशावली।

नंबर	नाम	परस्परका सम्बन्ध	ज्ञात समय	समकालीन राजा
	वीरसेनके वंशमें			
१	सामन्तसेन			
२	हेमन्तसेन	नं० १ का पुत्र		नेपालका राजा नान्यदेव
३	विजयसेन	नं० २ का पुत्र		
४	बल्लालसेन	नं० ३ का पुत्र	शक-संवत् १०४१, १०९०, १०९१, ११००	
५	लक्ष्मणसेन	नं० ४ का पुत्र	शक-संवत् ११००, ११२७	
६	माधवसेन	नं० ५ का पुत्र		
७	केशवसेन	नं० ५ का पुत्र		
८	विश्वरूपसेन	नं० ५ का पुत्र		
९	दनुजमाधव			
	रामवल्लभराय		विक्रमी संवत् १३३७	देहलीका बादशाह बलबन
	कृष्णवल्लभराय			
	हरिवल्लभराय			
	जयदेवराय			

चौहान-वंश।

उत्पत्ति।

यद्यपि आजकल चौहानवंशी क्षत्रिय अपनेको अग्निवंशी मानते हैं और अपनी उत्पत्ति परमारोंकी ही तरह वशिष्ठके अग्निकुंडसे बतलाते हैं, तथापि वि० सं० १०३० से १६०० (ई० स० ९७३ से १५४३) तकके इनके शिलालेखोंमें कहीं भी इसका उल्लेख नहीं है।

प्रसिद्ध इतिहासलेखक जेम्स टॉड साहबको हाँसीके किलेसे वि० सं० १२२५ (ई० स० ११६७) का एक शिलालेख मिला था। यह चौहान राजा पृथ्वीराज द्वितीयके समयका था। इस लेखमें इनको चन्द्र-वंशी लिखा था।

आबूपर्वत परके अचलेश्वर महादेवके मन्दिरमें वि० सं० १३७७ (ई० स० १३२०) का एक शिलालेख लगा है। यह देवड़ा (चौहान) राव लुंभाके समयका है। इसमें लिखा है:—

" सूर्य और चन्द्रवंशके अस्त हो जाने पर, जब संसारमें उत्पात कायम हुआ, तब वत्सऋषिने ध्यान किया। उस समय वत्सऋषिके ध्यान, और चन्द्रमाके योगसे एक पुरुष उत्पन्न हुआ... ।"

उपर्युक्त लेखसे भी इनका चन्द्रवंशी होना ही सिद्ध होता है।

कर्नल टॉड साहबने भी अपने राजस्थानमें चौहानोंको चन्द्रवंशी, वत्सगोत्री और सामवेदको माननेवाले लिखा है।

वीसलदेव चतुर्थके समयका एक लेख अजमेरके अजायबघरमें रक्खा हुआ है। इसमें चौहानोंको सूर्यवंशी लिखा है।

ग्वालियरके तँवरवंशी राजा वीरमके कृपापात्र नयचन्द्रसूरिने

(१) Chronicals of the Pathan Kings of Delhi.

'हम्मीर महाकाव्य' नामक काव्य बनाया था। यह नयचन्द्र जैनसाधु था और इसने उक्त काव्यकी रचना वि० सं० १४६० (ई० स० १४०३) के करीब की थी। उसमें लिखा है:—

"पुष्कर क्षेत्रमें यज्ञ प्रारम्भ करते समय राक्षसों द्वारा होनेवाले विघ्नोंकी आशङ्कासे ब्रह्माने सूर्यका ध्यान किया। इस पर यज्ञके रक्षार्थ सूर्यमण्डलसे उतर कर एक वीर आपहुँचा। जब उपर्युक्त यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हो गया, तब ब्रह्माकी कृपासे वह वीर चाहमान नामसे प्रसिद्ध होकर राज्य करने लगा।"

पृथ्वीराज-विजय नामक काव्यमें भी इनको सूर्यवंशी ही लिखा है।

मेवाड़राज्यमें बीजोल्या नामक गाँवके पासकी एक चट्टान पर वि० सं० १२२६ (ई० स० ११७०) का एक लेख खुदा हुआ है। यह चौहान सोमेश्वरके समयका है। इसमें इनको वत्सगोत्री लिखा है।

मारवाड़राज्यमें जसवन्तपुरा गाँवसे १० मील उत्तरकी तरफ एक पहाड़ीके ढलावमें 'सुंधा माता' नामक देवीका मन्दिर है। उसमेंके वि० सं० १३१९ (ई० स० १२६२) के चौहान चाचिगदेवके लेखमें भी चौहानोंको वत्सगोत्री लिखा है।—उसमेंका वह श्लोक यहाँ उद्धृत किया जाता है:—

> श्रीमद्वत्समहर्षिहर्षनयनोद्भूतातुपूरप्रभा
> पूर्वोर्वीधरमौलिमुख्यशिखरालङ्कारतिग्मद्युति ।
> पृथ्वी त्रातुमपास्तदैत्यतिमिर श्रीचाहमान पुरा
> वीरःक्षीरसमुद्रसोदरयशोराशिप्रकाशोऽभवत् ॥ ४ ॥

उपर्युक्त लेखोंसे स्पष्ट प्रकट होता है कि उस समय,तक ये अपनेको अग्निवंशी या वाशिष्ठगोत्री नहीं मानते थे।

पहले पहल इनके *अग्निवंशी होनेका उल्लेख* 'पृथ्वीराजरासा' *नामक* भाषाके काव्यमें मिलता है। यह काव्य वि० स० १६०० (ई० स०

१५४३) के करीब लिखा गया था। परन्तु इसमें ऐतिहासिक सत्य बहुत ही थोडा है।

अजमेरका चौहानराजा अर्णोराज बडा प्रतापी था। उसीके नामके अपभ्रंश 'अनल' के आधारपर उसके वंशज अनलोत कहलाने लगे होंगे और इसीसे पृथ्वीराजरासा नामक काव्यके कर्ताने उन्हें अग्निवंशी समझ लिया होगा। तथा जिस प्रकार अपनेको अग्निवंशी माननेवाले परमार वशिष्ठगोत्री समझे जाते हैं उसी प्रकार इनको भी अग्निवंशी मानकर वशिष्ठगोत्री लिख दिया होगा।

राज्य।

चौहानोंका राज्य पहले पहल अहिच्छत्रपुरमें था। उस समय यह देश उत्तरी पांचाल देशकी राजधानी समझा जाता था। बरेलीसे २० मील पश्चिमकी तरफ रामनगरके पास अबतक इसके भग्नावशेष विद्यमान हैं।

वि० सं० ६९७ (ई० स० ६४०) के करीब प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएन्त्संग इस नगरमें रहा था। उसने लिखा है —

" अहिच्छत्रपुरका राज्य करीब ३००० लीके घेरेमें है[1]। इस नगरमे बौद्धोंके १० संघाराम हैं। इनमें १००० भिक्षु रहते हैं। यहाँ पर विधर्मियों (ब्राह्मणों) के भी ९ मन्दिर हैं। इनमें भी ३०० पुजारी रहते है। यहांके निवासी सत्यप्रिय और अच्छे स्वभावके हैं। इस नगरके बाहर एक तालाब है। इसका नाम नागसर है।"

उपर्युक्त अहिच्छत्रपुरसे ही ये लोग शाकम्भरी (सांभर–मारवाड) में आये और इस नगरको उन्होंने अपनी राजधानी बनाया। इसीसे इनकी उपाधि शाकम्भरीश्वर हो गई। यहाँ पर इनके अधीनका सब देश उस

(१) पाँच लीका एक मील होता था।

समय सपादलक्षके नामसे प्रसिद्ध था। इसीका अपभ्रंश 'सवालक' शब्द अबतक अजमेर, नागोर और सांभरके लिये यहाँ पर प्रचलित है। सपादलक्ष शब्दका अर्थ सवालाख है। अतः सम्भव है कि उस समय इनके अधीन इतने ग्राम हों।

इसके बाद इन्होंने अजमेर बसाकर वहाँपर अपनी राजधानी कायम की। तथा इन्हींकी एक शाखाने नाडोल (मारवाड़में) पर अपना अधिकार जमाया। इसी शाखाके वंशज अबतक बूँदी, कोटा और सिरोही राज्यके अधिपति हैं।

१–चाहमान।

इस वंशका सबसे पहला नाम यही मिलता है।

इसके विषयमें जो कुछ लिखा मिलता है वह हम पहले ही इनकी उत्पत्तिके लेखमें लिख चुके हैं।

२–वासुदेव।

यह चाहमानका वंशज था।

अहिच्छत्रपुरसे आकर इसने शाकंभरी (सांभर–मारवाड़ राज्यमें) की झीलपर अधिकार कर लिया था। इसीसे इसके वंशज शाकम्भरीश्वर कहलाये[1]।

प्रबन्धकोशके अन्तकी वंशावलीमें इसका समय संवत् ६०८ लिखा है। अतः यदि उक्त संवत्को शक संवत् मान लिया जाय तो उसमें १३५ जोड़ देनेसे वि० सं० ७४३ में इसका विद्यमान होना सिद्ध होता है।

३–सामन्तदेव।

यह वासुदेवका पुत्र और उत्तराधिकारी था।

(१) पृथ्वीराजविजय, सर्ग ३।

४–जयराज (जयपाल)।

यह सामन्तदेवका, पुत्र था और उसके बाद राज्यका स्वामी हुआ। अणहिलवाड़ा (पाटण) के पुस्तक-भंडारसे मिली हुई 'चतुर्विंशति-प्रबन्ध' नामक हस्तलिखित पुस्तकमें इसका नाम अजयराज लिखा है।

इसकी उपाधि 'चक्री' थी। यह शायद वृद्धावस्थामें वानप्रस्थ हो गया था और इसने अपना आश्रम अजमेरके पासके पर्वतकी तराईमें बनाया था। यह स्थान अबतक इसीके नामसे प्रसिद्ध है। प्रतिवर्ष भाद्रपद शुक्ला ६ के दिन इस स्थानपर मेला लगता है और उस दिन अजमेर-नगरवासी अपने नगरके प्रथम ही प्रथम बसानेवाले इस अजयपाल बाबाकी पूजा करते हैं।

यह विक्रम संवत्की छठी शताब्दीके अन्तमें या सातवीं शताब्दीके आरम्भमें विद्यमान था।

५–विग्रहराज (प्रथम)।

यह जयराजका पुत्र और उत्तराधिकारी था।

६–चन्द्रराज (प्रथम)।

यह विग्रहराजका पुत्र था और उसके पीछे राज्यका स्वामी हुआ।

७–गोपेन्द्रराज।

यह चन्द्रराजका भाई और उत्तराधिकारी था। पूर्वोल्लिखित चतुर्विंशति-प्रबन्धमें इसका नाम गोविन्दराज लिखा है।

इस वंशका सबसे प्रथम राजा यही था; जिसने मुसलमानोंसे युद्ध कर सुलतान बेग वरिसको पकड़ लिया था। परन्तु इतिहासमें इस नामका कोई सुलतान नहीं मिलता है। अतः सम्भव है कि यह कोई सेनापति होगा। क्योंकि इसके पूर्व ही मुसलमानोंने सिन्धके कुछ भाग

पर अधिकार कर लिया था और उधरसे राजपूताने पर भी मुसलमानोंके आक्रमण आरम्भ हो गये थे।

८-दुर्लभराज।

यह गोपेन्द्रराजका उत्तराधिकारी था। इसको 'दूलाराय' भी कहते थे।

पृथ्वीराज-विजयमें लिखा है कि यह गौडोंसे लडा था।

इसी समय पहले पहल अजमेर पर मुसलमानोंका आक्रमण हुआ था और उसी युद्धमें यह अपने ७ वर्षके पुत्रसहित मारा गया था। सम्भवतः यह आक्रमण वि० सं० ७८१ और ७८३ (ई० स० ७२४ और ७२६) के बीच सिंधके सेनानायक अब्दुल रहमानके पुत्र जुनैदके समय हुआ होगा।

९-गूवक (प्रथम)।

यह दुर्लभराजके पीछे गद्दीपर बैठा। यद्यपि 'पृथ्वीराज-विजय' में इसका नाम नहीं लिखा है, तथापि बींजोल्यासे और हर्षनाथके मन्दिरसे मिले हुए लेखोंमें इसका नाम विद्यमान है।

इसने अपनी वीरताके कारण नागावलोक नामक राजाकी सभामें 'वीर' की पदवी प्राप्त की थी। यह नागावलोक वि० सं० ८१३ (ई० स० ७५६) के निकट विद्यमान था। क्योंकि वि० सं० ८१३ का चौहान भर्तृवृद्ध द्वितीयका एक ताम्रपत्र मिला है। यह भर्तृवृद्ध भरूकच्छ (भडोच-गुजरात) का स्वामी था। इसके उक्त ताम्रपत्रमें इसको नागावलोकका सामन्त लिखा है। इससे सिद्ध होता है कि गूवक भी वि० सं० ८१३ (ई० स० ७५६) के करीब विद्यमान था।

१०-चन्द्रराज (द्वितीय)।

यह गूवकका पुत्र और उत्तराधिकारी था।

११–गूवक (द्वितीय)।

यह चन्द्रराज द्वितीयका पुत्र था और उसके पीछे गद्दीपर बैठा।

१२–चन्दनराज।

यह गूवक द्वितीयका पुत्र था और उसके पीछे उसके राज्यका स्वामी हुआ।

पूर्वोक्त हर्षनाथके लेखसे पता चलता है कि इसने 'तँवरावती' (देहलीके पास) पर हमला कर वहाँके तँवरवंशी राजा रुद्रेणको मार डाला।

१३–वाक्पतिराज।

यह चन्दनराजका पुत्र और उत्तराधिकारी था।

इसको बप्पराज भी कहते थे। इसने विन्ध्याचलतक अपने राज्यका विस्तार कर लिया था।

हर्षनाथके लेखसे पता चलता है कि तन्त्रपालने इसपर हमला किया था। परन्तु उसे हारकर भागना पडा। यद्यपि उक्त तन्त्रपालका पता नहीं लगता है, तथापि सम्भवतः यह कोई तँवर-वंशी होगा।

वाक्पतिराजने पुष्करमें शायद एक मन्दिर बनवाया था।

इसके तीन पुत्र थे–सिंहराज, लक्ष्मणराज और वत्सराज। इनमेंसे सिंहराज तो इसका उत्तराधिकारी हुआ और लक्ष्मणराजने नाडोल (मारवाड़)में अपना अलग ही राज्य स्थापित किया।

१४–सिंहराज।

यह वाक्पतिराजका बडा पुत्र और उत्तराधिकारी था।

यह राजा बड़ा वीर और दानी था। लवण नामक राजाकी सहायतासे तँवरोंने इसपर हमला किया। परन्तु उन्हें हारकर भागना पड़ा। इसी राजाने वि० सं० १०१३ (ई० स० ९५६) में हर्षनाथका मन्दिर

चनवाकर उसपर सुवर्णका कलश चढ़वाया और उसके निर्वाहार्थ ४ गाँव दान दिये। इसकी वीरताके विषयमें हम्मीर-महाकाव्यमें लिखा है कि, इसकी युद्धयात्राके समय कर्णाट, लाट (माही और नर्मदाके बीचका प्रदेश), चोल (मद्रास), गुजरात और अङ्ग (पश्चिमी बंगाल) के राजा तक घबरा जाते थे। इसने अनेक वार मुसलमानोंसे युद्ध किया था। एक वार इसने हातिम नामक मुसलमान सेनापतिको मारकर उसके हाथी छीन लिये थे[1]।

प्रबन्धकोशकी वंशावलीसे पता चलता है कि इसने अजमेरसे २५ मील दूर जेठाणक स्थानपर मुसलमान सेनापति हाजीउद्दीनको हराया था।

इसने नासिरुद्दीनको हराकर उसके १२०० घोड़े छीन लिये थे। यह नासिरुद्दीन सम्भवतः सुबक्तगीनकी उपाधि थी। वि० सं० १०२० (ई० स० ९६३) के पूर्वतक इसने कई वार भारत पर चढाइयाँ की थीं।

इसके तीन पुत्र थे–विग्रहराज, दुर्लभराज, और गोविन्दराज।

१५–विग्रहराज (द्वितीय)।

यह सिंहराजका बडा पुत्र और उत्तराधिकारी था। इसने अपने पिताके राज्यको दृढ कर उसकी वृद्धि की।

फौर्ब्स साहबकृत रासमालासे प्रकट होता है कि इसने गुजरात (अणहिलपाटण) के राजा मूलराज पर चढ़ाई कर उसे कंथकोट (कच्छ) के किलेकी तरफ भगा दिया और अन्तमें उससे अपनी अधीनता स्वीकार करवाई। यद्यपि गुजरातके राजाकी हार होनेके कारण गुजरातके कवि इस विषयमें मौन हैं, तथापि मेरुतुङ्गरचित प्रबन्ध-चिन्तामणिमें इसका विस्तृत विवरण मिलता है।

(१) हम्मीर-महाकाव्य, सर्ग १।

हम्मीर-महाकाव्यमें लिखा है कि, विग्रहराजने चढ़ाई कर मूलराजको मार डाला । परन्तु यह बात सत्य प्रतीत नहीं होती ।

पृथ्वीराजरासेमें जो वीसलदेवकी गुजरातके चालुकरायपरकी चढ़ाईका वर्णन है वह भी इसी विग्रहराजकी इस चढ़ाईसे ही तात्पर्य रखती है ।

इसके समयका वि० सं० १०३० (ई० स० ९७३) का एक शिलालेख हर्षनाथके मन्दिरसे मिला है । इसका वर्णन हम ऊपर कई जगह कर चुके हैं। इससे भी प्रकट होता है कि यह बड़ा प्रतापी राजा था ।

१६–दुर्लभराज (द्वितीय) ।

यह सिंहराजका पुत्र और अपने बडे भाई विग्रहराज द्वितीयका उत्तराधिकारी था ।

१७–गोविन्दराज ।

यह शायद सिंहराजका पुत्र और दुर्लभराजका छोटा भाई था और उसके पीछे राज्यका स्वामी हुआ । इसको गंदुराज भी कहते थे ।

१८–वाक्पतिराज (द्वितीय) ।

यह गोविन्दराजका पुत्र और उत्तराधिकारी था ।

१९–वीर्यराम ।

यह वाक्पतिराजका पुत्र था और उसके पीछे गद्दीपर बैठा । इसने मालवेके प्रसिद्ध परमार राजा भोज पर चढाई की थी। परंतु उसमें यह मारा गया ।

शायद इसीके समय सुलतान महमूद गजनीने गढ बीटली (अजमेर) पर हमला किया था और जखमी होकर यहाँसे उसे ई० स० १०२४ में अनहिलवाड़ेको लौटना पड़ा था ।

(१) पृथ्वीराज-विजय, सर्ग ५ ।

२०–चामुण्डराज।

यह वीर्यरामका छोटाभाई और उत्तराधिकारी था। यद्यपि पृथ्वीराज-विजयमें इसके राजा होनेका उल्लेख नहीं है, तथापि बीजोल्याके लेख, हम्मीरमहाकाव्य और प्रबन्धकोशकी वंशावलीसे इसका राजा होना सिद्ध है।

पृथ्वीराज-विजयसे यह भी विदित होता है कि नरवरमें इसने एक विष्णुमन्दिर बनवाया था।

इसने हाजिमुद्दीनको बन्दी बनाया।

२१–दुर्लभराज (तृतीय)।

यह चामुण्डराजका उत्तराधिकारी था। इसको दूसल भी कहते थे। यद्यपि बीजोल्याके लेखमें चामुण्टराजके उत्तराधिकारीका नाम सिंहट लिखा है, तथापि अन्य वंशावलियोंमें उक्त नामके न मिलनेके कारण सम्भव है कि यह सिंहभट शब्दका अपभ्रंश हो और विशेषणकी तरह काममें लाया गया हो।

पृथ्वीराज विजयमें लिखा है कि इसने मालवेके राजा उदयादित्य-की सहायतामें घुड़सवार सेना लेकर गुजरात पर चढाई की और वहाँके सोलंकी राजा कर्णको मार डाला।

यह दुर्लभ मेवाड़के रावल बैरिसिंघसे लड़ते समय मारा गया था।

हम्मीर-महाकाव्यमें दुर्लभके उत्तराधिकारीका नाम दूसल लिखा है। परन्तु यह ठीक नहीं है, क्यों कि यह तो इसीका दूसरा नाम था और वास्तवमें देखा जाय तो यह इसीके नामका प्राकृत रूपान्तर मात्र है। इसी काव्यमें दूसलका गुजरातके राजा कर्णको मारना लिखा है। परन्तु गुजरातके लेखकोंने इस विषयमें कुछ नहीं लिखा है। केवल हेमचन्द्रने अपने द्व्याश्रयकाव्यमें इतना लिखा है कि, कर्णने विष्णुके ध्यानमें लीन

होकर यह शरीर छोड़ दिया। उपर्युक्त कर्णका राज्यकाल वि० सं० ११२० से ११५० (ई० स० १०६३ से १०९३) तक था। अतः दुर्लभ राज्यका भी उक्त समयके मध्य विद्यमान होना सिद्ध होता है।

प्रबन्धकोशके अन्तकी वंशावलीमें लिखा है कि दूसल (दुर्लभराज) गुजरातके राजा कर्णको पकड़ कर अजमेरमें ले आया। परन्तु यह बात सत्य प्रतीत नहीं होती।

२२–वीसलदेव (तृतीय)।

यह दुर्लभराजका छोटा भाई और उत्तराधिकारी था। इसका दूसरा नाम विग्रहराज (तृतीय) भी था।

वीसल-देवरासा नामक भाषाके काव्यमें इसकी रानी राजदेवीको मालवेके परमार राजा भोजकी पुत्री लिखा है और साथ ही उसमें इन दोनोंका बहुतसा कपोलकल्पित वृत्तान्त भी दिया है। अतः यह पुस्तक ऐतिहासिकोंके विशेष कामकी नहीं है। हम पहले ही लिख चुके है कि राजा भोज वीर्यरामका समकालीन था। इसलिए वीसलदेवके समय मालवेपर उदयादित्यके उत्तराधिकारी लक्ष्मदेव या उसके छोटेभाई नरवर्मदेवका राज्य होगा।

फरिश्ताने लिखा है कि वीलदेव (वीसलदेव) ने हिन्दूराजाओंको अपनी तरफ मिलाकर मोदुदके सूबेदारोंको हॉसी, थानेश्वर और नगरकोटसे भगा दिया था। इस युद्धमें गुजरातके राजाने इसका साथ नहीं दिया, इसलिए इसने गुजरात पर चढ़ाई कर वहॉके राजाको हराया और अपनी इस विजयकी यादगारमें वीसलपुर नामक नगर बसाया। यह नगर अब तक विद्यमान है।

प्रबन्धकोशके अन्तमें दी हुई वंशावलीमें लिखा कि वीसलदेवने एक पतिव्रता ब्राह्मणीका सतीत्व नष्ट किया था। इसीके शापसे यह कुष्ठसे पीड़ित होकर मृत्युको प्राप्त हुआ।

पृथ्वीराजरासेमें वीसलदेव द्वारा गौरी नामक एक वैश्य-कन्याका 'सतीत्व नष्ट करना और उसके शापसे इसका बुढा राक्षस होना लिखा है।

यद्यपि इस वंशमें वीसलदेव नामके चार राजा हुए हैं, तथापि पृथ्वीराजरासाके कर्ताने उन सबको एक ही खयालकर इन चारोंका वृत्तान्त एक ही स्थानपर लिख दिया है। इससे बडी गड़बड़ हो गई है।

इसके समयका एक लेख मिला है। यह राजपूताना-म्यूजियम, (अजायबघर) अजमेरमें रक्खा है। इसमें इनको सूर्यवंशी लिखा है।

२३–पृथ्वीराज (प्रथम)।

यह वीसलदेवका पुत्र और उत्तराधिकारी था।

प्रसिद्ध जैनसाधु अभयदेव (मलधारी) के उपदेशसे रणस्तम्भपुर (रणथमोर) में इसने एक जैन मन्दिर पर सुवर्णका कलश चढ़वाया था।

इसकी रानीका नाम रासल्लदेवि था।

२४–अजयदेव।

यह पृथ्वीराजका पुत्र और उत्तराधिकारी था। इसका दूसरा नाम अजयराज था।

पृथ्वीराज-विजयमें लिखा है कि वर्तमान (अजयमेरु) अजमेर इसीने बसाया था। इसने चाचिक, सिन्धुल और यशोराजको युद्धमें हराकर मारा और मालवेके राजाके सेनापति सल्हणको युद्धमें पकड़ लिया तथा उसे ऊँटपर बाँधकर अजमेरमें ले आया और वहाँपर कैद कर रक्खा। इसने मुसलमानोंको भी अच्छी तरहसे हराया था।

अजमेर नगरके बसाये जानेके विषयमें भिन्न भिन्न पुस्तकोंमें भिन्न भिन्न मत मिलते हैं —

(१) Pro Petterson's 4 th report, P 87

कुछ विद्वान् इसे महाभारतके पूर्वका बसा हुआ मानते हैं[१]।

कनिंगहाम साहबका अनुमान है कि यह मानिकरायके पूर्वज अजयराजका बसाया हुआ है[२]। उनके मतानुसार मानिकराय वि० सं० ८७६ से ८८२ (ई० स० ८१९–८२५) के मध्य विद्यमान थे।

जेम्स टॉड साहबने अपने राजस्थान नामक इतिहासमें लिखा है कि–"अजमेर नगर अजयपालने बसाया था। यह अजयपाल चौहानराजा वीसलदेवके बेटे पुष्करकी बकरियाँ चराया करता था।" उसीमें उन्होंने वीसलदेवका समय वि० सं १०७८ से ११४२ माना है[३]।

चौहानोंके कुछ भाटोंका कहना है कि अजमेरका किला और आनासागर तालाब दोनों ही वीसलदेवके पुत्र आनाजीने बनवाये थे[४]।

राजपूताना गजटियरसे प्रकट होता है कि पहले पहल यह नगर ई० स० १४५ में चौहान अनहलके पुत्र अजने बसाया था[५]।

जर्मन विद्वान् लासन साहबका मत है कि अजमेरका असली नाम अजामीढ होगा और ई० स० १५० के निकटके टालेमी नामक लेखकने जो अपनी पुस्तकमें 'गगास्मिर' नाम लिखा है वह सम्भवतः अजमेरका ही बोधक होगा[६]।

हम्मीर-महाकाव्यसे विदित होता है कि यह नगर इस वंशके चौथे राजा जयपाल (अजयपाल) ने बसाया था। शत्रुओंके सैन्य-चक्रको जीत लेनेके कारण इसकी उपाधि चक्री थी।

प्रबन्ध-कोशके अन्तकी वंशावलीमें भी उक्त अजयपालको ही अजमेरके किलेका बनवानेवाला लिखा है।

---

(१) Cun, A S R, Vol. II, P 252, (२) Cun, A S R, Vol II, P. 253, (३) Tod's Rajsthan, Vol II, P. 663, (४) Cun, A S R. Vol, II. P. 252, (५) R G, Vol II, P. 14, (६) Indische, A S, Vol. III, P. 151,

तारीख फरिश्तासे हिजरी सन् ६३ (ई० स० ६८३–वि० स० ७४०), ३७७ (ई० स० ९८७–वि० स० १०४५) और ३९९ (ई० स० १००९–वि० स० १०६६) में अजमेरका विद्यमान होना सिद्ध होता है । उसमें यह भी लिखा है कि हि० स० ४१५ के रमजान (ई० स० १०२४ के दिसंबर) महीनेमें महमूद गोरी मुलतान पहुँचा और वहाँसे सोमनाथ जाते हुए उसने मार्गमें अजमेरको फतह किया ।

बहुतसे विद्वान् हम्मीर महाकाव्य, प्रबन्धकोश और तारीख फरिश्ता आदिके वि० सं० १४५० के बादमें लिखे हुए होनेसे उन पर विश्वास नहीं करते । उनका कहना है कि एक तो १२ वीं शताब्दिके पूर्वका एक भी लेख या शिल्पकलाका काम यहाँ पर नहीं मिलता है, दूसरे फरिश्ताके पहलेके किसी भी मुसलमान-लेखकने इसका नाम नहीं दिया है और तीसरा वि० सं० १२४७ (ई० स० ११९०) के करीब बने हुए पृथ्वीराज-विजय नामक काव्यमे पृथ्वीराजके पुत्र अजयदेवको अजमेरका बनानेवाला लिखा है ।

अजमेरके आसपाससे इसके चाँदी और ताँबेके सिक्के मिलते हैं । इन पर सीधी तरफ लक्ष्मीकी मूर्ति बनी होती है । परन्तु इसका आकार बहुत भद्दा होता है । और उलटी तरफ 'श्रीअजयदेव' लिखा होता है । चौहान राजा सोमेश्वरके समयके वि० सं० १२२८ (ई० स० ११७१) के[1] लेखसे विदित होता है कि अजयदेवके उपर्युक्त द्रम्म (चांदीके सिक्के) उस समय तक प्रचलित थे ।

इसी प्रकारके ऐसे भी चाँदीके सिक्के मिलते हैं, जिन पर सीधी तरफ लक्ष्मीकी मूर्ति बनी होती है और उलटी तरफ 'श्रीअजयपालदेव'

(१) यह लेख धोड़गाँवके शिवमन्दिरमें लगा है । यह गाँव मेवाड़ राज्यके जहाजपुर जिलेमें है ।

लिखा होता है । जनरल कनिंगहामका अनुमान है कि शायद ये सिक्के अजयपाल नामक तँवरवंशी राजाके होंगे ।

जयदेवकी रानीका नाम सोमलदेवी था । इसको सोमलेखा भी कहते थे । पृथ्वीराजविजयमें लिखा है कि इसको सिक्के ढलवानेका बड़ा शौक था । चौहानोंके अधीनके देशसे इसके भी चाँदी और ताँबेके सिक्के मिलते हैं इन पर उलटी तरफ ' श्रीसोमलदेवि ' या ' श्रीसोमल-देवी ' लिखा होता है । और सीधी तरफ ' गधिये ' सिक्कोंपरके गधेके खुरके आकारका बिगडा हुआ राजाका चेहरा बना होता है । किसी किसी पर इसकी जगह सवारका आकार बना रहता है । जनरल कनिंगहाम साहबने इनपरके लेखको ' सोमलदेव ' पढकर इनको कि-सी अन्य राजाके सिक्के समझ लिये थे । परन्तु इण्डियन म्यूजियमके सिक्कोंकी कैटलॉग (सूची) में उन्होंने जो उक्त सिक्कोंके चित्र दिये हैं उनमेंसे दो सिक्कोंमें सोमलदेवि पढा जाता है ।

रापसन साहब इन सिक्कोंको दक्षिण कोशल (रत्नपुर) के हैहय (कलचुरी) राजा जाजल्लदेवकी रानीके अनुमान करते हैं, क्योंकि उसका नाम भी सोमलदेवी थी । परन्तु ये सिक्के वहाँ पर नहीं मिलते हैं । इनके मिलनेका स्थान अजमेरके आसपासका प्रदेश है । अतः रापसन साहबका अनुमान ठीक प्रतीत नहीं होता ।

इसका समय वि० सं० ११६५ (ई० स० ११०८) के आस पास होगा ।

२५–अर्णोराज ।

यह अजयराजका पुत्र और उत्तराधिकारी था ।

इसको आनाक, आनलदेव और आनाजी भी कहते थे । इसके तीन रानियाँ थीं । पहली मारवाड़की सुधवा, दूसरी गुजरातके सोलंकी राजा

(१) C I. M, Pl VI, 10-11,
(२) J, R A S, A. D 1900, P 121.

सिद्धराज जयसिंहकी कन्या काचनदेवी और तीसरी सोलंकी राजा कुमारपालकी बहन देवल देवी। इनमेंसे पहली रानीसे इसके दो पुत्र हुए। जगदेव और वीसलदेव (विग्रहराज) तथा दूसरी रानीसे एक, पुत्र सोमेश्वर हुआ।

अर्णोराजने अजमेरमें ' आना सागर ' नामक तालाब बनवाया।

सिद्धराज जयसिंहने अर्णोराजपर हमला किया था। परन्तु अन्तमें उसे अपनी कन्या काचनदेवीका विवाह अर्णोराजके साथकर मैत्री करनी पड़ी। सिद्धराजकी मृत्युके बाद अर्णोराजने गुजरातपर चढ़ाई की, परन्तु इसमें इसे सफलता नहीं हुई। इसका बदला लेनेके लिए वि० स० १२०७ (ई० स ११५०) के आसपास गुजरातके राजा कुमारपालने पीछा इसके राज्य पर हमला किया और इस युद्धमें अर्णोराजको हार माननी पड़ी। यद्यपि इस विषयका वृत्तान्त चौहानोंके लेखों आदिमें नहीं मिलता है, तथापि गुजरातके ऐतिहासिक ग्रन्थोंमें इसका वर्णन दिया हुआ है।

प्रबन्ध चिन्तामणिमें लिखा है —

" कुमारपाल स्वेच्छानुसार राज्यप्रबन्ध करता था। इससे उसके बहुतसे उच्च कर्मचारी उससे अप्रसन्न हो गये। उनमेंसे अमात्य वाग्भटका छोटाभाई आहड (चाहड या आरभट), जिसको सिद्ध राज जयसिंह अपने पुत्रके समान समझता था, कुमारपालको छोड कर सपादलक्षके चौहानराजा आनाकके पास चला गया और मौका पाकर उसको गुजरात पर चढा ले गया। जब इस चढ़ाईका हाल कुमारपालको मालूम हुआ तब उसने भी सेना लेकर उसका सामना किया। परन्तु आहडने उसके सैनिकोंको धनदकर पहले ही अपनी तरफ मिला लिया था। इससे कुमारपालकी आज्ञाके बिना ही व लोग पीठ दिखाकर भागने लगे। अपनी सैन्यकी यह दशा देख कुमारपालको

बहुत क्रोध चढ़ आया और चौहान राजा आनाकसे स्वयं भिड़ जानेके लिये उसने अपने महावतको आज्ञा दी कि मेरे हाथीको आनाकके हाथीके निकट ले चल । इस प्रकार जब कुमारपालका हाथी निकट पहुँचा तब उसे मारनेके लिये आहड़ स्वयं अपने हाथी परसे उसके हाथी पर कूदनेके लिये उछला । परन्तु महावतके हाथीको पीछेकी तरफ हटा लेनेके कारण बीचहीमें पृथ्वीपर गिर पड़ा और तत्काल वहीं पर मारा गया । अन्तमें आनाक भी कुमारपालके बाणसे घायल हो गया और विजयी कुमारपालने उसके हाथी घोड़े छीन लिये । ”

जिनमण्डनरचित कुमारपाल-प्रबन्धमें लिखा है:—“ शाकम्भरीका अर्णोराज अपनी स्त्री देवलदेवीके साथ चौपड़ खेलते समय उसका उपहास किया करता था । इससे क्रुद्ध होकर एक दिन उसने इसे अपने भाई कुमारपालका भय दिखलाया । इस पर अर्णोराजने उसे लात मारकर वहाँसे निकाल दिया । तब देवलदेवी अपने भाई कुमारपालके पास चली गई और उसने उससे सब हाल कह सुनाया । इस पर क्रोधित हो कुमारपालने इसपर चढ़ाई की । उस समय अर्णोराजने आरभट (यह वही आहड़ था जो कुमारपालको छोड़ कर इसके पास आ रहा था) द्वारा रिशवत देकर कुमारपालके सामन्तोंको अपनी तरफ मिला लिया । परन्तु युद्धमें कुमारपाल शीघ्रतासे अपने हाथी परसे अर्णोराजके हाथी पर कूद पड़ा और उसे नीचे गिराकर उसकी छाती पर चढ़ बैठा । बादमें उसे तीन दिन तक लकड़ीके पिंजरेमें बंद रखकर पीछा राज्य पर बिठला दिया । ”

हेमचन्द्रने अपने द्व्याश्रय काव्यमें लिखा है:—

“ कुमारपालके राज्याधिकारी होने पर उत्तरके राजा आनने उसपर चढ़ाई की । यह खबर सुन कुमारपाल भी अपने सामन्तोंके साथ इस पर चढ़ दौड़ा । मार्गमें आबूके पास चन्द्रावतीका परमार राजा विक्रम-

सिंह भी इससे आ मिला। आगे बढने पर चौहानों और सोलंकियोंके बीच युद्ध हुआ। इस युद्धमें कुमारपालने लोहेके तीरसे अन्नको आहत-कर हाथी परसे नीचे गिरा दिया और उसके हाथी घोड़े छीन लिये। इस पर अन्नने अपनी वहन जल्हणाका विवाह कुमारपालसे कर आपसमें मैत्री कर ली।"

इस युद्धमें पूर्वोक्त परमार विक्रमसिंह अर्णोराजसे मिल गया था, इस लिये उसे कैदकर चन्द्रावतीका राज्य कुमारपालने उसके भतीजे यशोधवलको दे दिया था।

कीर्तिकौमुदीमें इस युद्धका सिद्धराज जयसिंहके समय होना लिखा है। यह ठीक नहीं है।

यद्यपि उपर्युक्त ग्रन्थोंमें इस युद्धका वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण है, तथापि इतना तो स्पष्ट ही है कि इस युद्धमें कुमारपालकी विजय हुई थी।

वि० स० १२०७ (ई० स० ११५०) का एक लेख चित्तौडके किले-मेंके समिद्धेश्वरके मन्दिरमें लगा है। उसमें लिखा है कि शाकम्भरीके राजाको जीत और सपादलक्ष देशको मर्दन कर जब कुमारपाल शालिपुर-गाँवमें पहुँचा तब अपनी सेनाको वहीं छोड वह स्वय चित्रकूट (चित्तौड़) की शोभा देखनेको यहाँ आया। यह लेख उसीका खुद-वाया हुआ है।

वि० स० १२०७ और १२०८ (ई० स० ११५० और ११५१) के बीच यह अपने बडे पुत्र जगदेवके हाथसे मारा गया।

२६–जगदेव।

यह अर्णोराजका बड़ा पुत्र था और उसको मारकर राज्यका स्वामी हुआ।

यद्यपि पृथ्वीराजविजयमें और बीजोल्याके लेखमें जगदेवका नाम नहीं लिखा है, तथापि पृथ्वीराज-विजयसे प्रकट होता है कि, " सुध-

चाके बड़े पुत्रने अपने पिताकी वैसी ही सेवा की जैसी कि परशुरामने अपनी माताकी की थी । तथा वह अपने पीछे बुझी हुई बत्तीकी तरह दुर्गन्ध छोड गया । ” इससे सिद्ध होता है कि जगदेव अपने पिताकी हत्या कर अपने पीछे बड़ा भारी अपयश छोड़ गया था ।

बीजोल्याके लेखमें लिखा है कि–“अर्णोराजके पीछे उसका पुत्र विग्रह राज्यका अधिकारी हुआ और उसके पीछे उसके बड़े भाईका पुत्र पृथ्वीराज राज्यका स्वामी हुआ । ” इससे प्रकट होता है कि उक्त लेखके लेखकको भी उक्त वृत्तान्त मालूम था । इसी लिये उसने पृथ्वीराजको विग्रहराजके बडे भाईका पुत्र ही लिखा है । परन्तु पृथ्वीराजके पितृघाती पिताका नाम लिखना उचित नहीं समझा ।

एक बात यह भी विचारणीय है कि जब विग्रहराजके बडे भाईका पुत्र विद्यमान था तब फिर विग्रहराजको राज्याधिकार कैसे मिला । इससे अनुमान होता है कि पिताकी हत्या करनेके कारण सब लोग जगदेवसे अप्रसन्न हो गये होंगे और उन्होंने उसे राज्यसे हटा उसके छोटे भाई विग्रहराजको राज्यका स्वामी बना दिया होगा ।

हम्मीर-महाकाव्यसे और प्रबन्धकोशके अन्तकी वंशावलीसे जगदेवका राजा होना सिद्ध होता है ।

उपर्युक्त सब बातों पर विचार करनेसे अनुमान होता है कि यह बहुत ही थोड़े समय तक राज्य कर सका होगा, क्यों कि शीघ्र ही इसके छोटे भाई विग्रहराजने इससे राज्य छीन लिया था ।

२७-विग्रहराज (बीसलदेव) चतुर्थ ।

यह अर्णोराजका पुत्र और जगदेवका छोटा भाई था, तथा अपने बड़े भाईके जीतेजी उससे राज्य छीनकर गद्दीपर बैठा ।

यह बड़ा प्रतापी, वीर और विद्वान् राजा था । बीजोल्याके लेखसे ज्ञात होता है कि इसने नाडोल और पालीको नष्ट किया तथा जालोर और

दिल्लीपर विजय प्राप्त की। इससे अनुमान होता है कि इसके और नाडोल-वाली शाखाके चौहानोंके बीच कुछ वैमनस्य हो गया था।

उक्त घटना अश्वराज (आसराज) या उसके पुत्र आल्हणके समय हुई होगी, क्यों कि इन्होंने गुजरातके राजा कुमारपालकी अधीनता स्वीकार कर ली थी।

देहलीकी प्रसिद्ध फीरोजशाहकी लाटपर वि० स० १२२० (ई० स० ११६३) वैशाखशुक्ला १५ का इसका लेख खुदा है। उसमें लिखा है कि—

" इसने तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे विन्ध्याचलसे हिमालयतकके देशोंको विजयकर उनसे कर वसूल किया और आर्यावर्तमें मुसलमानोंको भगाकर एक बार फिर भारतको आर्यभूमि बना दिया। इसने मुसलमानोंको अटकपार निकाल देनेकी अपने उत्तराधिकारियोंको वसीयतकी थी।" यह लेख पूर्वोक्त फीरोजशाहकी लाटपर अशोककी धर्माज्ञाओंके नीचे खुदा हुआ है। हम उसमके श्लोक यहाँ उद्धत कर देते हैं—

आविन्ध्यादाहिमाद्रेर्विरचितविजयस्तीर्थयात्राप्रसङ्गा-
दुद्ग्रीवेषु प्रहर्ता नृपतिषु विनमत्कन्धरेषु प्रपन्न ।
आर्यावर्तं यथार्थं पुनरपि कृतवान्म्लेच्छविच्छेदनाभि-
र्देव शाकम्भरीन्द्रो जगति विजयते वीसल क्षोणिपाल ॥
ब्रूते सम्प्रति चाहुवाणतिलक शाकम्भरीभूपति
श्रीमान् विग्रहराज एष विजयी सन्तानजानात्मजान् ।
अस्माभि करदं व्यधायि हिमवद्विन्ध्यान्तराल भुव
शेष स्वीकरणायमास्तु भवतामुद्योगशून्यं मन ॥

धाराके परमार राजा भोजकी बनवाई ' सरस्वती-कण्ठाभरण ' नामक पाठशालाके समान अजमेरमें इसने भी एक पाठशाला बनवाई थी और उसमें अपने बनाये हुए 'हरकेलि' नाटक और अपने सभापण्डित सोमेश्वरके

रचे 'ललित-विग्रहराज' नाटकको शिलाओंपर खुदवाकर रखवाया था। उक्त सोमेश्वररचित 'ललित-विग्रहराज'का जो अंश मिला है उसमें विग्रहराजकी मुसलमानोंके साथकी लड़ाईका वर्णन है। इससे प्रकट होता है कि इसकी सेनामें १००० हाथी, १००००० सवार और १०००००० पैदल सिपाही थे।

इसकी बनाई उपर्युक्त पाठशाला आजकल अजमेरमें 'ढाई दिनका झोंपडा' नामसे प्रसिद्ध है। वि० स० १२५० (ई० स० ११९३) मे शहाबुद्दीन गोरीने इस पाठशालाको नष्ट कर डाला और वि०स० १२५६ (११९९) में यह मसजिदमें परिणत कर दी गई। तथा शम्सुद्दीन अल्तमशके समय उसके आगे कुरानकी आयतें खुदे बडे बडे महाराब बनवाये गये।

इसका बनाया हरकेलि नामक नाटक वि० स० १२१० (ई० स० ११५३) की माघ शुक्ला ५ को समाप्त हुआ था। हम पहले ही लिख चुके हैं कि इसने हरकेलि नाटक और ललितविग्रहराज नाटक दोनोंको शिलाओंपर खुदवाकर उक्त पाठशालामें रखवाया था। उनमेंसे ढाई दिनके झोंपडेमें खुदाईके समय ५ शिलायें प्राप्त हुई थीं। ये आजकल लखनऊके अजायबघरमें रक्खी हैं।

ख्यातोंमें प्रसिद्धि है कि बहुतसे हिन्दू राजाओंने मिलकर बीसलदेवकी अधीनतामें मुसलमानोंसे युद्धकर उन्हें परास्त किया था। सम्भवत: यह घटना इसीके समयकी प्रतीत होती है। परन्तु यह युद्ध किस बादशाहके साथ हुआ था, इसका उल्लेख कहीं नहीं मिलता है। हिजरी सन ५४७ (वि० स० १२१०-ई० स० ११५३) के करीब बादशाह खुसरोको भाग कर लाहोरकी तरफ आना पडा और हि० स० ५५५ (वि० सं० १२१७-ई० स० ११६०) में उसका देहान्त हो जानेपर उसका पुत्र खुसरो मलिक पंजाबका राजा हुआ। अत संभव है कि

उपर्युक्त युद्ध इन दोनोंमेंसे किसी एकके साथ हुआ होगा, क्योंकि ये लोग अक्सर इधर उधर हमले किया करते थे।

वीसलपुर गाँव और अजमेरके पासका वीसलसर (बीसल्या) तालाव भी इसीकी यादगारें हैं।

इसके समयके ६ लेख मिले हैं। पहला वि० स० ११११ का है। यह भूतेश्वरके मन्दिरके एक स्तम्भपर खुदा है। यह मन्दिर मेवाड (जहाजपुर जिले) के लोहरी गाँवसे आध मीलके फासिले पर है।

दूसरा और तीसरा वि० स० १२२० (ई० स० ११६३) का है। चौथा विना सवत्का है। ये तीनों लेख देहलीकी फीरोजशाहकी लाट पर अशोककी आज्ञाओंके नीचे खुदे हैं। पाँचवाँ और छठा लेख भी विना सवत्का है। ये दोनों ढाई दिनके झोंपडेकी दीवारपर खुदे हैं।

इसके मन्त्रीका नाम राजपुत्र सल्लक्षणपाल था।

टौड साहबने पृथ्वीराजरासेके आधारपर सब वीसलदेव (विग्रहराज) नामक राजाओंको एक ही व्यक्ति मानकर उपर्युक्त वि० स० १२२० के लेखका सवत् ११२० पढा था। परन्तु यह ठीक नहीं है। उन्होंने पूर्वोक्त फीरोजशाहकी लाट परके ऊपर वर्णन किये वीसलदेवके तीसरे लेखके विषयमें लिखा है कि इसके द्वितीय श्लोकमें पृथ्वीराजका वर्णन है। परन्तु यह भी उनका भ्रम ही है। उक्त लाट परके लेखमें वीसलदेवके *पिताका नाम आनल्लदेव लिखा है।*

२८-अमरगांगेय।

यह विग्रहराज (वीसल) चतुर्थका पुत्र और उत्तराधिकारी था।

पृथ्वीराज विजयमें विग्रहराजके पीछे उसके पुत्रका उत्तराधिकारी होना और उसके बाद पिताको मारनेवाले पूर्वोक्त जगद्देवके पुत्र पृथ्वीभटका राज्यपर बैठना लिखा है। परन्तु उसमें विग्रहराजके पुत्र अमरगांगयका नाम नहीं दिया है।

प्रबन्धकोशके अन्तकी वंशावलीमें वीसलदेवके पीछे अमरगांगेयका और उसके बाद पेथड़देवका अधिकारी होना लिखा है ।

अबुलफजल वील (बीसलके) बाद अमरंगूका राजा होना बतलाता है ।

भाटोंकी ख्यातोंमें वीसलदेवके पीछे अमरदेव या गंगदेवका अधिकारी होना लिखा है ।

हम्मीर महाकाव्यमें वीसलदेवके पीछे जयपालका और उसके बाद गंगपालका नाम लिखा है । परन्तु यह ठीक प्रतीत नहीं होता । बीजोल्याके लेखमें इसका नाम नहीं है ।

उपर्युक्त लेखोंपर विचार करनेसे अनुमान होता है कि अमर गांगेय बहुत ही थोड़े दिन राज्य करने पाया होगा और पूर्वोक्त जगद्देवके पुत्र पृथ्वीराज द्वितीयने इससे शीघ्र ही राज्य छीन लिया होगा । इसीसे पृथ्वीराज-विजयमें और बीजोल्याके लेखमें इसका नाम नहीं दिया है ।

२९–पृथ्वीराज (द्वितीय) ।

यह जगद्देवका पुत्र और विग्रहराजका भतीजा था । इसने अपने चचेरे भाई अमरगांगेयसे राज्य छीन लिया । वि० सं० १२२५ की ज्येष्ठ कृष्णा १२ का एक लेख रूठी रानीके मन्दिरमें लगा है । यह मन्दिर मेवाड राज्यके जहाजपुरसे ७ मील परके धोड़ गाँवमें है । इसमें इसको अपने बाहुबलसे शाकम्भरीका राज्य प्राप्त करनेवाला लिखा है । इससे भी पूर्वोक्त बातकी ही पुष्टि होती है ।

पृथ्वी, पेथडदेव, पृथ्वीभट आदि इसके उपनाम थे ।

यह बड़ा दानी और वीर राजा था । इसने अनेक गाँव और बहुतसा सुवर्ण दान किया था, तथा वस्तुपाल नामक राजाको युद्धमें परास्त कर उसका हाथी छीन लिया था ।

इसकी रानीका नाम सुहवदेवी था। इसीने सुहवेश्वरका मन्दिर बनवाया था, जो रूठी रानीके मन्दिरके नामसे प्रसिद्ध है। इसी मन्दिरके पासके इनेनपाषाणके महल भी रूठी रानीके महल कहलाते हैं। इसने धोड़ गाँवके नित्यप्रमोदितदेवके मन्दिरके लिये भी कई खेत दिये थे। इस लिये यह मन्दिर भी रूठी रानीके मन्दिरके नामसे प्रसिद्ध है।

पृथ्वीराजने मुसलमानोंको भी युद्धमें परास्त किया था और हांसीके किलेमें एक भवन बनवाया था। यह वि० सं० १८५८ (ई० स० १८०१) में नष्ट कर दिया गया।

इसके समयके चार लेख मिले हैं। पहला वि० सं० १२२४ (ई० स० ११६७) की माघ शुक्ला ७ का है। दूसरा और तीसरा वि० सं० १२२५ (ई० स० ११६८) का है तथा चौथा वि० सं० १२२६ (ई० स० ११६९) का है।

इनमेंका वि० सं० १२२४ का लेख कर्नल टॉड साहबने भारतके राज-प्रतिनिधि लार्ड हेस्टिंग्जको भेट किया था। परन्तु अब इसका कुछ भी पता नहीं चलता। टॉड साहबने इसे शहाबुद्दीन गोरीके शत्रु प्रसिद्ध चौहानराजा पृथ्वीराजका मान लिया था। परन्तु उस समय सोमेश्वरके पुत्र पृथ्वीराजका होना बिलकुल असम्भव ही है।

इसके मामाका नाम कर्ण लिखा मिलता है।

३०–सोमेश्वर।

पृथ्वीराज-द्वितीयके बाद उसके मन्त्रियोंने सोमेश्वरको उसका उत्तराधिकारी बनाया। यह अर्णोराजका तृतीय पुत्र और पृथ्वीराज द्वितीयका

(१) धोडगाँवके रूठी रानीके मन्दिरके स्तम्भपर खुदा है।
(२) मेवाड़मे सुहवेश्वरके मन्दिरकी दीवारपर खुदा है।
(३) मेनालमें भावब्रह्मके मठके एक स्तम्भपर खुदा है।

चचा था, तथा राज्य पर बेठनेके पूर्व बहुधा विदेशमें ही रहा करता था। इसने अपने नाना सिद्धराज जयसिंहसे शिक्षा पाई थी।

पृथ्वीराज-विजयसे ज्ञात होता है कि कुमारपालने जब कोंकनके राजापर चढ़ाई की थी तब यह भी उसके साथ था और इसीने कोंकन-के राजाको युद्धमें मारा था। यह घटना सोमेश्वरके राज्यपर बेठनेके पूर्व हुई थी।

इसने चेदी (जबलपुर) के राजा नरसिंहदेवकी कन्यासे विवाह किया था। इसका नाम कर्पूरदेवी था। इससे इसके दो पुत्र हुए— पृथ्वीराज और हरिराज।

यह राजा (सोमेश्वर) बडा वीर और प्रतापी था। बीजोल्याके लेखमें इसकी उपाधि 'प्रतापलङ्केश्वर' लिखी है।

पृथ्वीराजरासा नामक काव्यमें लिखा है "सोमेश्वरका विवाह देह-लीके तँवर राजा अनङ्गपालकी पुत्री कमलासे हुआ था। इसीसे पृथ्वी-राजका जन्म हुआ। तथा इसे (पृथ्वीराजको) इसके नाना देहलीके तँवर राजा अनङ्गपालने गोद ले लिया था।" परन्तु यह बात कपोल-कल्पित ही प्रतीत होती है, क्योंकि विग्रहराज (वीसल) चतुर्थके समय ही देहलीपर चौहानोंका अधिकार हो चुका था। अत चौहान राज्यके उत्तराधिकारीका अपने सामन्तके यहाँ गोद जाना असम्भव ही प्रतीत होता है।

कर्नल टॉड साहबने तँवर अनङ्गपालकी कन्याका नाम रुक्मादेवी लिखा है।

हम्मीर-महाकाव्यमें सोमेश्वरकी रानीका नाम कर्पूरदेवी ही लिखा है और यद्यपि इसमें पृथ्वीराजका सविस्तर वर्णन दिया है, तथापि देहली-के राजा अनंगपालके यहाँ गोद जानेका उल्लेख कहीं नहीं है।

उपर्युक्त बातोंपर विचार करनेसे पृथ्वीराजरासेके लेखपर विश्वास नहीं होता। उसमें यह भी लिखा है कि सोमेश्वर गुजरातके राजा भोलाभीमके हाथसे मारा गया था। परन्तु यह बात भी ठीक प्रतीत नहीं होती, क्योंकि एक तो सोमेश्वरका देहान्त वि० स० १२३६ (ई० स० ११७९) में हुआ था। उस समय भोलाभीम बालक ही था। दूसरा यदि ऐसा हुआ होता तो गुजरातके कवि और लेखक अपने ग्रन्थोंमें इस बातका उल्लेख बडे गौरवके साथ करते, जैसा कि उन्होंने अर्णोराजपरकी कुमारपालकी विजयका किया है।

सोमेश्वरके ताँबेके सिक्के मिले हैं। इनपर एक तरफ सवारकी सूरत बनी होती है और 'श्रीसोमेश्वरदेव' लेख लिखा रहता है, तथा दूसरी तरफ बैलकी तसवीर और 'आसावरी श्रीसामतदेव' लेख खुदा होता है।

'आसावरी' शब्द 'आशापूरीय' का बिगडा हुआ रूप है। इसका अर्थ आशापुरादेवीसे सम्बन्ध रखनेवाला है। यह आशापूरा देवी चौहानों की कुलदेवी थी।

इसके समयके ४ लेख मिले हैं। पहला वि० स० १२२६ (ई० स० ११६९) फाल्गुन कृष्णा ३ का। यह बीजोल्या गाँवके पासकी चट्टान पर खुदा है और इसका ऊपर कई जगह वर्णन आ चुका है। दूसरा वि० स० १२२८ (ई० स० ११७१) ज्येष्ठशुक्ला १० का। तीसरा वि० स० १२२९ (ई० स० ११७२) श्रावणशुक्ला १३ का। ये दोनों धोड गावके पूर्वोक्त रूठीरानीके मन्दिरके स्तम्भोंपर खुदे हैं। चौथा वि० स० १२३४ (ई० स० ११७७) भाद्रपदशुक्ला ४ का है। यह आवल्दा गाँवके बाहरके कुण्डपर पडे हुए स्तम्भपर खुदा है। यह गाँव जहाज-पुरसे ६ कोस पर है।

३१–पृथ्वीराज (तृतीय)।

यह सोमेश्वरका पुत्र और उत्तराधिकारी था । सोमेश्वरके देहान्तके समय इसकी अवस्था छोटी थी । अत: राज्यका प्रबन्ध इसकी माता कर्पूरदेवीने अपने हाथमें ले लिया था और वह अपने मन्त्री कदम्ब वेमकी सहायतासे राज-काज किया करती थी ।

यह पृथ्वीराज बड़ा वीर और प्रतापी राजा था ।

इसने गुजरातके राजाको हराया और वि० सं० १२३९ (ई० स० ११८२) में महोबा (बुंदेलखंड) के चंदेल राजा परमर्दिदेव पर चढ़ाई कर उसे परास्त किया ।

पृथ्वीराजरासाके महोबाखंडसे ज्ञात होता है कि परमर्दिदेवके सेनापति आला और ऊदलने इस युद्धमें बडी वीरता दिखाई और इसी युद्धमें ये दोनों मारे गये । इस विषयके गीत अबतक बुंदेलखण्डके आसपासके प्रदेशमें गाये जाते हैं ।

हम्मीर महाकाव्यमें लिखा ह कि " जिस समय पृथ्वीराज न्यायपूर्वक प्रजाका पालन कर रहा था उस समय शहाबुद्दीन गोरीने पृथ्वीपर अपना अधिकार जमाना प्रारम्भ किया । उसके दु:खसे दुखित हो पश्चिमके सब राजा गोविन्दराजके पुत्र चंद्रराजको अपना मुखिया बना पृथ्वीराजके पास आये और उन्होंने एक हाथी भेटकर सारा वृत्तान्त कह सुनाया । इस पर पृथ्वीराजने उन्हें धीरज दिया और अपनी सेना सजाकर मुलतानकी तरफ प्रयाण किया । इस पर शहाबुद्दीन गोरी इससे लड़नेको सामने आया । भीषण संग्रामके बाद शहाबुद्दीन पकड़ा गया । परन्तु पृथ्वीराजने दयाकर उसे छोड़ दिया । "

तबकाते नासिरीमें लिखा है:—

" सुलतान शहाबुद्दीन सरहिंदका किला फतह कर गजनीको लौट गया और उक्त किला काजी जियाउद्दीनको सौंप गया । रायकोला पिथोरा

(पृथ्वीराज) ने उस किले पर चढ़ाई की । इस पर शहाबुद्दीनको गजनींसे वापिस आना पड़ा । वि० स० १२४७ (ई० स० ११९१) में तिरोरी (कर्नाल जिला) के पास लड़ाई हुई । इस युद्धमें हिन्दुस्तानके सब राजा रायकोला (पृथ्वीराज) की तरफ थे । सुलतानने हाथी पर बैठे हुए दिल्लीके राजा गोविंदराय पर हमला किया और अपने भालेसे उसके दो दाँत तोड़ डाले । इसी समय उक्त राजाने वारकर सुलतानके हाथको जखमी कर दिया । इस घावकी पीडासे सुलतानका घोडे पर ठहरना मुशकिल हो गया । इस पर मुसलमानी सेना भाग खडी हुई । सुलतान भी घोडेसे गिरने ही वाला था कि इतनेमें एक बहादुर खिलजी सिपाही लपक कर बादशाहके घोडे पर चढ बैठा और घोडेको भगाकर बादशाहको रणक्षेत्रसे निकाल ले गया । यह हालत देख राजपूतोंने मुसलमानोंकी फौजका पीछा किया और भटिंडानामक नगरको जा घेरा । तेरह महीनेके घेरेके बाद उसपर राजपूतोंका कब्जा हुआ ।"[1]

तारीख फरिश्तामें लिखा है.—

"सुलतान मुहम्मद गोरी (शहाबुद्दीन गोरी) ने हिजरी सन ५८७ (वि० स० १२४७–ई० स० ११९१) में फिर हिन्दुस्तान पर चढ़ाई की और अजमेरकी तरफ जाते हुए भटिंडे पर कब्जा कर लिया । तथा उसकी हिफाजतके लिये एक हजारसे अधिक सवार और करीब उतने ही पैदल सिपाही देकर मलिक जियाउद्दीन तुजकीको वहाँ पर नियत कर दिया । वापिस लौटते समय सुना कि अजमेरका राजा पिथोराय (पृथ्वीराज) और उसका भाई दिल्लीश्वर चावडराय (गोविंदराय) हिन्दुस्तानके दूसरे राजाओंके साथ दो लाख सवार और तीन हजार हाथी लेकर भटिंडाकी तरफ आ रहा है । यह सुन वह स्वयं भटिंडेसे आगे बढ सरस्वतीके तट परके नराइन गाँवके पास

(१) History of Indid, by Elliot, Vol II, P 295-96

पहुँचा । यह गाँव थानेश्वरसे १८ मील और दिल्लीसे ८० मीलपर तिरोरी नामसे प्रसिद्ध है । यहाँपर दोनों सेनाओंकी मुठभेड़ हुई । पहले ही हमलेमें सुलतानकी फ़ौजने पीठ दिखाई । परन्तु सुलतान बचे हुए थोड़ेसे आदमियोंके साथ युद्धमें डटा रहा । इस अवसर पर चामुंडरायने सुलतानकी तरफ अपना हाथी चलाया । यह देख सुलतानने चामुण्डरायके मुखपर भाला मारा जिससे उसके कई दाँत टूट गये । इसपर क्रुद्ध हो दिल्लीश्वरने भी सुलतानके हाथ पर इस जोरसे तीर मारा कि वह मूर्छित हो गया । परन्तु उसके घोड़े परसे गिरनेके पूर्व ही एक मुसलमान सिपाही उसके घोड़ेपर चढ़ गया और उसे ले रणक्षेत्रसे निकल भागा । राजपूतोंने ४० मील तक उसकी सेनाका पीछा किया । इस प्रकार युद्धमें हारकर बादशाह लाहौर होता हुआ गोर पहुँचा । वहाँपर उसने; जो सर्दार युद्धमें उसे छोड़कर भाग गये थे उनके मुखपर जौसे भरे हुए तोबरे लटकवाकर सारे शहरमें फिरवाया । वहाँसे सुलतान गजनीको चला गया । उसके चले जानेके बाद हिन्दू राजाओंने भटिंडेपर घेरा डाला और १३ महीनेतक घेरे रहनेके बाद उसे अपने अधिकारमें कर लिया।"[1]

ताजुलम आसिरके आधारपर फरिश्ताने लिखा है कि "सुलतान घायल होकर घोड़ेसे गिर पड़ा और दिनभर मुर्दोंके साथ रणक्षेत्रमें पड़ा रहा । जब अँधेरा हुआ तब उसके अंगरक्षकोंके एक दलने वहाँ पहुँच कर उसे तलाश करना आरम्भ किया और मिल जाने पर वह अपने कैंपमें पहुँचाया गया।"[2]

पृथ्वीराज-विजयमें लिखा है कि, इस पराजयसे सुलतानको इतना खेद हुआ कि उसने उत्तमोत्तम वस्त्रोंका पहनना और अन्तःपुरमें आरामकी नींद सोना छोड़ दिया ।

(१) Brigg's Farishta Vol. I, P. 171-173.

(२) नवलकिशोर प्रेसकी छपी फरिश्ताके इतिहासकी पुस्तक, पृ० ५७ ।

हम्मीर-महाकाव्यमें लिखा है कि "शहाबुद्दीनने अपनी पराजयका बदला लेनेके लिये पृथ्वीराज पर सात बार चढ़ाई की और सातों बार उसे हारना पड़ा। इस पर उसने घटैक (?) देशके राजाको अपनी तरफ मिलाया और उसकी सहायतासे अचानक दिल्लीपर हमला कर अधिकार कर लिया। जब यह खबर पृथ्वीराजको मिली तब पहले अनेक बार हरानेके कारण उसने उसकी विशेष परवाह न की और गर्वसे थोड़ीसी सेना लेकर ही उसपर चढ़ाई कर दी। यद्यपि पृथ्वीराजके साथ इस समय थोड़ीसी सेना थी, तथापि सुलतान, जो कि अनेक वार इसकी वीरताका लोहा मान चुका था, घबरा गया और उसने रातके समय ही बहुतसा धन देकर पृथ्वीराजके फौजी अस्तबलके दारोगा और बाजेवालोंको अपनी तरफ मिला लिया। जब प्रातःकाल हुआ तब दोनों तरफसे घमासान युद्ध प्रारम्भ हुआ। परन्तु विश्वासघाती दारोगा पृथ्वीराजकी सवारीके लिये नाट्यारम्भ घोड़ा ले आया। यह घोड़ा रणभेरीकी आवाज़ सुनते ही नाचने लगा। इस पर पृथ्वीराजका लक्ष भी उसकी तरफ जालगा। इतनेहीमें शत्रुओंने मौका पाकर उसे घेर लिया। यह हालत देख पृथ्वीराज उस घोड़े परसे कूद पड़ा और तलवार लेकर शत्रुओंपर झपटा। इस अवस्थामें भी अकेला वह बहुत देर तक मुसलमानोंसे लड़ता रहा। परन्तु अन्तमें एक यवन सैनिकने पीछेसे उसके गलेमें धनुष डालकर उसे गिरा दिया। बस इसका गिरना था कि दूसरे यवनोंने उसे चटपट बाँध लिया। इस प्रकार बंदी हो जानेपर पृथ्वीराजने *अपमानित हो जीनेसे मरना ही* अच्छा समझा और खाना पीना छोड़ दिया। इसी अवसर पर उदयराज भी आ पहुँचा। इसको पृथ्वीराजने पहले ही सुलतानके अधीन देशपर हमला करनेको भेजा था। उदयराजके आते ही बादशाह डरकर नगरमें घुस गया। उदयराजको अपने स्वामी पृथ्वीराजके इस प्रकार

बंदी हो जानेका अत्यधिक खेद हुआ और इसने स्वामीको इस अवस्थामें छोड़ जाना अपने गौड़ वंशके लिये कलङ्करूप समझा, इसलिये नगर (दिल्ली) को घेरकर यह पूरे एक मास तक लड़ता रहा। एक दिन किसीने बादशाहसे निवेदन किया कि पृथ्वीराजने आपको युद्धमें बन्दी बनाकर अनेक बार छोड़ दिया था। अतः आपको भी चाहिए कि कमसे कम एक बार तो उसे भी छोड़ दें। इस पर बादशाह बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने कहा कि यदि तुम्हारे जैसे मन्त्री हों तो राज्य ही नष्ट हो जाय। अन्तमें सुलताननने पृथ्वीराजको किलेमें भेज दिया। वहीं पर उसका देहान्त हुआ। जब यह खबर उदयराजको मिली तब उसने भी युद्धमें लड़कर वीरगति प्राप्त की, तथा पृथ्वीराजके छोटे भाई हरिराजने अपने बड़े भाईका क्रिया-कर्म किया।"

जामिउल हिकायतमें लिखा है:—

"जब मुहम्मदसाम (शहाबुद्दीन गोरी) दूसरी बार कोला (पृथ्वी-राज) से लड़ने चला तब उसे खबर मिली कि शत्रुने हाथियोंको अलग एक पंक्तिमें खड़े किये हैं। इससे युद्ध समय घोड़े चमक जायँगे। यह खबर सुन उसने अपने सैनिकोंको आज्ञा दी कि जिस समय हमारी सेना पृथ्वीराजकी सेनाके पासके पड़ाव पर पहुँचे उस समयसे प्रत्येक खेमेके सामने रातभर खूब आग जलाई जाय ताकि शत्रुओंको हमारी गतिविधिका पता न लगे और वे समझें कि हमारा पड़ाव उसी स्थान पर है। इस प्रकार अपनी सेनाके एक भागको समझाकर वह अपनी सेनाके दूसरे भाग सहित दूसरी तरफको चल पड़ा। परन्तु उधर हिन्दू सेनाने दूर खेमोंमें आग जलती देख समझ लिया कि बादशाहका पड़ाव वहीं है और उधर रातभर चलकर बादशाह पृथ्वीराजकी सेनाके पिछले भागके पास आ पहुँचा। तथा प्रातःकाल होते ही इसकी सेनाने हमलाकर पृथ्वीराजकी सेनाके इस भागको काटना शुरू किया। जब वह

सेना पीछे हटने लगी तब पृथ्वीराजने अपनी सेनाका रुख इस तरफ फिराना चाहा। परन्तु शीघ्रतामें उसकी व्यूह-रचना बिगड गई और हाथी भड़क गये। अन्तमें पृथ्वीराज हराया जाकर कैद कर लिया गया।"

ताजुलम आसिरमें लिखा है.—

"हिजरी सन् ५८७ (वि० सं० १२४८-ई० स० ११९१) में सुलतान (शहाबुद्दीन) ने गजनीसे हिन्दुस्तान पर चढाई की और लाहोर पहुँच अपने सर्दार किवामुलमुल्क रूहुद्दीन हमजाको अजमेरके राजाके पास भेजा, तथा उससे कहलवाया कि 'तुम बिना लडे ही सुलतानकी अधीनता स्वीकार कर मुसलमान हो जाओ'। रूहुद्दीनने अजमेर पहुँच सब वृत्तान्त कह सुनाया। परन्तु वहाँके राजाने गर्वसे इसकी कुछ भी परवाह न की। इस पर सुलतानने अजमेरकी तरफ कूच किया। जब यह खबर प्रतापी राजा कोला (पृथ्वीराज) को मिली तब वह भी अपनी असंख्य सेना लेकर सामना करनेको चला। परन्तु युद्धमें मुसलमानोंकी फतह हुई और पृथ्वीराज कैद कर लिया गया। इस युद्धमें करीब एक लाख हिन्दू मारे गये। इस विजयके बाद सुलतानने अजमेर पहुँच वहाँके मन्दिरोंको तुडवाया और उनकी जगह मसजिदें व मदरसे बनवाये। अजमेरका राजा, जो कि सजासे बचकर रिहाई हासिल कर चुका था, मुसलमानोंसे नफरत रखता था। जब उसके साजिश करनेका हाल बादशाहको मालूम हुआ तब उसकी आज्ञासे राजाका सिर काट दिया गया। अन्तमें अजमेरका राज रायपिथोरा (पृथ्वीराज) के पुत्रको सौंप सुलतान दिल्लीकी तरफ चला गया। वहाँके राजाने उसकी अधीनता स्वीकार कर खिराज देनेकी प्रतिज्ञा की। वहाँसे बादशाह गजनीको लौट गया। परन्तु अपनी सेना इन्द्रपत (इन्द्रप्रस्थ) में छोड गया।"

(१) Elliot's, History of India, Vol. II, P 200

(२) Elliot's, History of India, Vol II, P 212 216

आगे चलकर तबकात-ए-नासिरीके कर्ताने लिखा है:—

"दूसरे वर्ष सुलतानने अपने पराजयका बदला लेनेके लिये हिन्दुस्तान पर फिर चढ़ाई की। उस समय उसके साथ १२०००० सवार थे। तराइनके पास युद्ध हुआ, उसमें हिन्दू हार गये। यद्यदि पिथोरा (पृथ्वीराज) हाथीसे उतर और घोड़ेपर सवार हो भाग निकला, तथापि सरस्वतीके निकट पकड़ा जाकर कत्ल कर दिया गया। दिल्लीका गोविंदराज भी लड़ाईमें मारा गया। सुलतानने उसका सिर अपने भालेसे तोड़े हुए उन दो दाँतोंसे पहचान लिया। यह युद्ध हि० स० ५८८ (वि० सं० १२४९-ई० स० ११९२) में हुआ था। इसमें विजयी होने पर अजमेर, सवालककी पहाड़ियाँ, हाँसी, सरस्वती आदि अनेक इलाके सुलतानके अधीन हो गये।"[1]

इसी प्रकार इस हमलेके विषयमें तारीख फरिश्तामें लिखा है:—

"१२०००० सवार लेकर सुलतान गजनीसे हिन्दुस्तानकी तरफ चला और मुलतान होता हुआ लाहौर पहुँचा। वहाँसे उसने कवामुलमुल्क हम्ज़्वीको अजमेर भेजा और पृथ्वीराजसे कहलाया कि या तो तुम मुसलमान हो जाओ, नहीं तो हमसे युद्ध करो। यह सुन पृथ्वीराज आसपासके सब राजाओंको एकत्रित कर ३०००००० सवार, ३००० हाथी और बहुतसे पैदल लेकर सुलतानसे लड़नेको चला। सरस्वतीके तटपर दोनों फौजें एक दूसरेके सामने पड़ाव डालकर ठहर गईं। १५० राजाओंने[2] गंगाजल लेकर कसम खाई कि या तो हम शत्रुओंपर विजय प्राप्त करेंगे या धर्मके लिये युद्धमें अपने प्राण दे देंगे। इसके बाद उन्होंने सुलतानसे कहला भेजा कि या तो तुम लौट जाओ, नहीं तो हमारी असंख्य सेना तुम्हारी सेनाको नष्ट भ्रष्ट कर देगी। इस पर सुलतानने कपट कर उत्तर दिया कि मैं तो अपने भाईका सेनापति मात्र

(१) Elliot's, History of India, Vol. II, P. 296-97,

(२) इनमें सामन्त (सरदार) लोग भी शामिल होंगे।

हूँ, अतः उसको सारा हाल लिखकर उसकी आज्ञा मँगवाता हूँ तबतक आप लड़ाई बंद रक्खें। इस प्रकार राजपूत सेनाको विश्वास देकर आप उनपर अचानक हमला करनेकी तैयारीमें लगा और सूर्योदयके पूर्व ही नदी पार कर उनपर आ टूटा। यह देख हिन्दू भी सँभलकर लड़ने लगे। सुलतानने अपनी फ़ौजके ४ टुकड़े कर उन्हें बारी बारीसे राजपूत सेना पर हमला करने और सामनेसे भाग कर पीछे आती हुई शत्रु-सेनापर पलट कर पीछेसे हमला करनेका आदेश दिया। इस प्रकार दिनभर लड़ाई होती रही और जब हिन्दू थक गये तब सुलतानने अपनी १२००० रक्षित सेना लेकर उनपर हमला किया। इस पर राजपूत फ़ौज हार गई और अनेक अन्य राजाओंके साथ दिल्लीका चामुण्डराय मारा गया तथा अजमेरका राजा पिथोराय (पृथ्वीराज) सरस्वतीके तीरपर पकड़ा जाकर मारा गया। विजयी सुलतान अजमेर पहुँचा और वहाँपर सामना करनेवाले कई हजार नगरवासियोंको मारकर और कर देनेकी शर्तपर पिथोराय (पृथ्वीराज) के पुत्र कोलाको अजमेर सौंप स्वयं दिल्लीकी तरफ चल पड़ा। वहाँ पहुँचने पर दिल्लीके नवीन राजाने उसकी वश्यता स्वीकार की। इसके बाद कुतबुद्दीन एबकको सेनासहित कुहराममें छोड़ सुलतान उत्तरी हिन्दुस्तानके सिवालक पहाड़ोंकी तरफ होता हुआ गजनी चला गया। उसके बाद कुतबुद्दीन ऐबकने चामुण्डरायके उत्तराधिकारियोंसे दिल्ली और मेरठ छीन लिया और हि० स० ५८९ (वि० सं० १२५०—ई०स० ११९३) में दिल्लीको अपनी राजधानी बनायी।"

नवलकिशोरप्रेसकी छपी फरिश्ताकी तवारीखमें उपर्युक्त वृत्तान्त कुछ फेर फारसे लिखा है। उसमें १२०००० सवारोंके स्थानपर १०७००० सवार और चामुण्डरायकी जगह खंडेराय लिखा है।

(१) Brigg's Farishta, Vol. I, P. 173-178.

पृथ्वीराजरासामें लिखा है —

"शहाबुद्दीन गोरी पृथ्वीराजको कैदकर गजनी ले गया और उसकी आँखें फुड़वा कर उसने उसे कैद कर रक्खा। कुछ दिन बाद चदबरदाईने वहाँ पहुँच सुलतानसे पृथ्वीराजके धनुर्विद्या-ज्ञानकी प्रशसा की और उसे उस (पृथ्वीराज) की तीरदाजीकी जाँच करनेको उद्यत किया। इस अवसरपर पृथ्वीराजने चदके संकेतसे ऐसा निशाना साधा कि तीर सुलतानके तालुमें जा लगा और सुलतान मर गया। उसी समय चद एक छुरा लेकर पृथ्वीराजके पास पहुँचा और उन दोनोंने उसीसे अपना अपना गला काट लिया। इस प्रकार वि० सं० ११५८ की माघ शुक्ला ५ को पृथ्वीराजने इस असार संसारसे प्रयाण किया।"

उपर्युक्त तवारीखोंके लेखोंपर विचार करनेसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि पृथ्वीराज वि० स० १२४९ में भारतमें ही मारा गया था और शहाबुद्दीन हि० स० ६०२ (वि० सं० १२६३) में शअबान मासकी २ तारीख—तदनुसार ई० स० १२०६ की १४ मार्च—को लाहोरसे गजनी जाता हुआ मार्गमें गक्खरों द्वारा मारा गया था। अत पृथ्वीराजरासाके उक्त लेखपर विश्वास नहीं हो सकता।

इसने (पृथ्वीराजने) स्वयंवरमें कन्नौजके राजा जयचन्द्रकी कन्या सयोगिताका हरण किया था। इसीलिये कन्नौजके गहरवालों और गुजरातके सोलंकियोंने मिलकर शाहबुद्दीन गोरीको इससे लड़नेको उभारा था। इसने छ बार शहाबुद्दीनको हराया था और दो बार उसे कैद करके भी छोड़ दिया था।

पृथ्वीराज भारतका अन्तिम राजा था। यह बड़ा वीर और पराक्रमी था, परन्तु भारतीय नरेशोंके आपसके ईर्ष्या और द्वेषके कारण इसके

(१) Transactions of the Reyal As Soc of Gre, Bri. & Irdland Vol I, p 147-8.

समयमें दिल्लीके हिन्दू राज्यकी समाप्ति होकर उसपर मुसलमानोंका अधिकार हो गया।

इसके ताँबेके सिक्के मिलते है जिनकी एक तरफ सवारकी मूर्ति और 'श्रीपृर्ध्वीराजदेव' लिखा रहता है तथा दूसरी तरफ बैलकी तसवीर और 'आसावरी श्रीसामतदेव' लिखा होता है। यह सामन्तदेव शायद चौहानोंका खिताब होगा।

कुछ सिक्के ऐसे भी मिले हैं जिनपर एक तरफ पृथ्वीराजका नाम और दूसरी तरफ सुलतान मुहम्मद सामका नाम है। पण्डित गौरीशंकर ओझाका अनुमान है कि ये सिक्के पृथ्वीराजके कैद होने और मारे जानेके बीचके समयके होंगे। इस बातकी पुष्टिमें ताजुलम आसिरका प्रमाण उद्धृत किया जा सकता है। उसमें लिखा है कि—"अजमेरका राजा, जो कि सजासे बचकर रिहाई हासिल कर चुका था मुसलमानोंसे नफरत रखता था। जब उसके साजिश करनेका हाल बादशाहको मालूम हुआ तब उसकी आज्ञासे राजाका सिर काट दिया गया[1]।"

इससे प्रकट होता है कि पृथ्वीराज कैद होनेके बाद भी कुछ दिन जीवित रहा था। सम्भव है कि ये सिक्के उसी समयके हों।

इसके समयके ५ शिलालेख मिले हैं—पहला वि० स० १२३६ (ई० स० ११७९) आषाढ कृष्णा १२ का। यह मेवाड़ (जहाजपुर जिले) के लोहारी गाँवसे मिला है। दूसरा और तीसरा मदनपुर (बुंदेलखंड) से मिला है। इनमेंका एक वि० स० १२३९ (ई० स० ११८२) का है। चौथा वि० स० १२४४ (ई० स० ११८७) के श्रावण मासका है। यह बीसलपुरसे मिला है। और पाँचवाँ वि० स० १२४५ (ई० स० ११८८) की फाल्गुन शुक्ला १२ का है। यह मेवाड (जहाजपुर) के आवलदा गाँवसे मिला है।

(१) यह वृत्तान्त पहले लिखा जा चुका है।

३२-हरिराज।

यह पृथ्वीराजका छोटा भाई था और अपने भतीजे गोविंदराजसे राज्य छीनकर गद्दीपर बैठा था।

ताजुलम आसिरमें लिखा है:—

"रणथंभोरसे किवामुलमुल्क रूहद्दीन (रुक्नुद्दीन) हम्जाने कुतबुद्दीनको खबर दी कि अजमेरके राय (पृथ्वीराज) का भाई हीराज (हरिराज) बागी हो गया है और रणथंभोर लेनेको आ रहा है। तथा पिथोरा (पृथ्वीराज) का बेटा, जो शाही हिफाजतमें है, इस समय संकटमें है। यह खबर पाते ही कुतबुद्दीन रणथंभोरकी तरफ चला। इससे हीराज (हरिराज) को भाग जाना पड़ा। कुतबुद्दीनने रणथभोरमें पिथोरा (पृथ्वीराज) के पुत्रको खिलअत दिया और उसने एवजमें बहुतसा द्रव्य उसकी भेट किया।"

ईलियट साहबने आगे चलकर अनुवादमें लिखा है कि—

"हिजरी सन् ५८९ (ई० स० ११९३-वि० स० १२५०) में अजमेरके राजा हीराजने अभिमानसे बगावतका झंडा खड़ा किया और चतर (जिहतर) ने सेनासहित दिल्लीकी तरफ कूच किया। जब यह हाल खुसरो (कुतबुद्दीन) को मालूम हुआ तब उसने अजमेरपर चढाई की। गरमीकी अधिकताके कारण रात्रिमें यात्रा करनी पड़ती थी। खुसरोके आगमनका वृत्तान्त सुन चतर भाग कर अजमेरके किलेमें चला गया और वहीं पर जल मरा। इसपर कुतबुद्दीनने उस किलेपर अधिकार कर लिया और अजमेरपर कब्जा कर वहाँके मन्दिर आदि तुड़वा डाले। अन्तमें कुतबुद्दीन दिल्लीको लौट गया।"

तारीख फरिश्तामें लिखा है:—

(१) E H I Vol II, p 219-220,

(२) Elliot's History of India, Vol II, p 225-26.

रणथम्भोरके चौहान ।

१–गोविन्दराज ।

हम्मीर-महाकाव्यमें पृथ्वीराजके पुत्रका नाम गोविन्दराज लिखा है। परन्तु प्रबन्धकोशके अन्तकी वंशावलीमें उसका नाम राजदेव मिलता है और पृथ्वीराजरासा नामक काव्यमें रेणसी दिया है।

हम पहले लिख चुके है कि यह अपने चचा हरिराज द्वारा अजमेरसे निकाला जानेपर रणथंभोरमें जा रहा था। परन्तु जब वहाँसे भी हरिराजने इसको भगाना चाहा तब कुतुबुद्दीनने इसकी मदद कर उलटा हरिराजको ही भगा दिया।

तारीख फरिश्तामें इसका नाम 'कोला' लिखा है।

ताजुलम आसिरसे पता चलता है कि गोविन्दराजके समय चौहानोंकी राजधानी रणथंमोर थी।

२–वाल्हणदेव ।

यह गोविन्दराजका सम्बन्धी था या पुत्र, इस बातका पूरा पता हम्मीर-महाकाव्यसे नहीं चलता है।

इसके समयका एक लेख वि० सं० १२७२ (ई० स० १२१५ की ज्येष्ठ कृष्णा ११ का मगलाणा (मारवाड) गाँवसे मिला है। इससे विदित होता है कि यह सुलतान शम्सुद्दीन अल्तिमशका सामन्त था।

इसके दो पुत्र थे। प्रल्हाददेव और वाग्भट।

३–प्रल्हाददेव ।

यह वाल्हणदेवका बड़ा पुत्र था।

शिकार करते समय सिंहने इसपर आक्रमण कर इसका कंधा चबा डाला था। इसीसे इसकी मृत्यु हुई। मृत्युके समय पुत्रके बालक होनेके

"पृथ्वीराजके रिश्तेदार हेमराज (हरिराज) ने जब पृथ्वीराजके पुत्र कोलाको अजमेरसे निकाल दिया तब उसकी मददमें कुतबुद्दीन ऐबक हि० स० ५९१ (ई० स० ११९४-वि० सं० १२५१) में दिल्लीसे चढा। हेमराजने उसका सामना किया। परन्तु अन्तमें वह मारा गया और अजमेरपर कुतबुद्दीनने मुसलमान हाकिम नियत कर दिया।"

फरिश्ताने चतरका नाम जहतराय लिखा है।

हम्मीर महाकाव्यमें लिखा है.—

"पृथ्वीराजके बाद हरिराज अजमेरका अधिकारी हुआ। उसने गुजरातके राजाकी भेजी हुई सुंदर वेश्याओंके फंदेमें पडकर राज्यकार्य-की तरफ ध्यान देना छोड दिया। इससे राज्यमें गडबड मच गई। यह मौका देख पहलेवाला सुलतान दिल्लीसे अजमेर पर चढ आया। इसपर हरिराज अपने अन्त.पुरकी स्त्रियों सहित जल मरा।"

उपर्युक्त लेखोंपर विचार करनेसे विदित होता है कि यद्यपि शहा-बुद्दीनने पृथ्वीराजके पीछे उसके बालक पुत्रको अजमेरका अधिकारी नियत किया था, तथापि उसके चले जानेपर उसके चचा हरिराजने उससे राज्य छीन लिया। इस पर वह रणथभोरमें जा रहा, परन्तु जब हरिराजने उसे वहाँसे भी निकालनेके इरादेसे रणथभोर पर चढाई की तब शाही फौजने आकर उसकी सहायता की और हरिराजको वापस लौटना पडा। वि० स० १२५० या १२५१ के ज्येष्ठ या, आषाढ मासके आस-पास हरिराजका देहान्त हुआ। उसी समयसे अजमेर चौहानोंके अधि-कारसे निकलकर मुसलमानोंके अधिकारमें चला गया।

---

(१) Brigg's Farishta I

२३ पृथ्वीराज (प्रथम)
२४ अजयदेव
२५ अर्णोराज
२६ जगद्देव
२७ विग्रहराज (चतुर्थ)
३० सोमेश्वर
२९ पृथ्वीराज (द्वितीय)
२८ अमरगांगेय
३१ पृथ्वीराज (तृतीय)
३२ हरिराज
(पृष्ठ २९२)

कारण इसने अपने छोटे भाई वाग्भटको बुलाकर कहा कि वीरनारायणकी देखभालका भार मैं तुम्हें सौंपता हूँ । इसपर कुमारकी दुष्ट प्रकृतिका विचारकर वाग्भटने उत्तर दिया कि होनहार ईश्वरके अधीन है। परन्तु मैंने जिस प्रकार आपकी सेवा की है उसी प्रकार उसकी भी करूँगा।

४-वीरनारायण ।

यह प्रल्हाददेवका पुत्र और उत्तराधिकारी था।

हम्मीर महाकाव्यमें लिखा है:—

"यह आम्रपुरी (आमेर) के कछवाहा राजाकी पुत्रीसे विवाह करने गया। परन्तु सुलतान जलालुद्दीनके हमला करनेके कारण इसे भाग कर रणथमोर आना पड़ा। यद्यपि सुलताननें भी इसका पीछा किया और रणथमोरको घेर लिया, तथापि अन्तमें उसे निराश होकर ही लौटना पड़ा। जब सुलतानने इस तरह अपना काम बनते न देखा तब कपटजाल रचा और दूतद्वारा कहलवाया कि 'मैं तुम्हारी वीरतासे बहुत प्रसन्न हूँ और तुमसे मित्रता करना चाहता हूँ। तथा ईश्वरको साक्षी रखकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं इसमें किसी प्रकारकी गड़बड़ नहीं करूँगा।' इन बातोंपर विश्वासकर वीरनारायण सुलतानके पास जानेको उद्यत हुआ। इस पर वाग्भटने उसे बहुत समझाया कि शत्रुका विश्वास करना किसी प्रकार भी उचित नहीं है, परन्तु इसने एक न मानी। इसपर दुखित हो वाग्भट वहाँसे निकल गया और मालवेमें जा रहा । वीरनारायण भी यथासमय दिल्ली पहुँचा। पहले तो बादशाहने इसका बहुत सन्मान किया, परन्तु अन्तमें विष दिलवाकर मरवा डाला और रणथमोरपर अपना अधिकार कर लिया। इस कामसे निश्चिन्त हो उसने मालवेके राजाको वाग्भटको मार डालनेके लिये राजी किया । जब यह वृत्तान्त वाग्भटको मिला तब उसने पहले ही मालवाधिपतिको मारकर उसके राज्यपर अधिकार कर लिया।

मुसलमानोंसे दुखित हुए बहुतसे राजा इससे आ मिले ।"

यद्यपि उपर्युक्त काव्यका कर्ता वीरनारायणको जलालुद्दीनका समकालीन बतलाता है, तथापि प्रबन्धकोशके अन्तकी वंशावलीमें इसका सुलतान शहाबुद्दीन द्वारा मारा जाना लिखा है ।

वि० सं० १३४७ में जलालुद्दीन खिलजी दिल्लीके तख्तपर बैठा, उस समय रणथंभोर पर हम्मीरका अधिकार था । अतः वीरनारायणके समय दिल्लीका बादशाह शम्सुद्दीन ही था ।

तबकाते नासिरीमें लिखा है —

"हि० स० ६२३ (वि० सं० १२८३–ई० स० १२२६) में सुलतानने रणथभोरके किलेपर चढ़ाई की और कुछ महीनोंमें ही उसपर अधिकार कर लियां । "

फरिश्ता लिखता है कि "हि० स० ६२३ (वि० स० १२८३–ई० स० १२२६) में शम्सुद्दीनने रणथभोरके किलेपर अधिकार कर लियां । "

५–वाग्भटदेव (बाहड़देव) ।

यह प्रल्हाददेवका छोटा भाई था ।

हम्मीर-महाकाव्यमें और रणथभोरके निकटके कुँवालजीके कुंडके लेखमें इसका नाम वाग्भट और प्रबन्धकोशके अन्तकी वंशावलीमें बाहड़देव लिखा है । यह दूसरा नाम भी वाग्भटका ही प्राकृत रूप है ।

हम पहले हम्मीर-महाकाव्यके अनुसार लिख चुके हैं कि जिस समय शम्सुद्दीनने रणथभोरके किले पर अधिकार कर वाग्भटको मरवा डालनेका उपाय किया उसी समय इसने मालवेके राजाको मार वहाँ पर अपना अधिकार जमा लिया ।

(१) Elliot's History of India Vol II, P 324 25

(२) Brigg's Farishta Vol, I, P. 210

प्रबन्धकोशकी वंशावलीमें भी इसे मालवेका विजेता लिखा है।

आगे चलकर हम्मीर-महाकाव्यमें लिखा है कि, "जब सुल्तान खर्परोंसे लड़ रहा था तब वाग्भटने भी सेना एकत्रित कर रणथंभोर पर चढ़ाई की। तीन महीनेतक घिरे रहनेके बाद मुसलमान किला छोड़ भाग गये और किले पर वाग्भटका अधिकार हो गया। इसने १२ वर्ष राज्य किया और इसके बाद इसका पुत्र जैत्रसिंह गद्दी पर बैठा। वाग्भटने मालवेके कितने अंशपर अधिकार किया था, न तो इसीका पता चलता है और न यही पता चलता है कि इसने वहाँके किस राजाको मारा था। परन्तु इतना तो अवश्य कह सकते हैं कि उस समय मालवेके मुख्य भाग (धारा, ग्वालियर आदि) पर परमार देवपाल देवका राज्य था और नरवर पर कछवाहा-वंशके प्रतापी राजा चाहड-देवका अधिकार था, तथा उनके पीछे उनके वंशज वहाँके अधिकारी हुए थे। अतः वाग्भटने यदि मालवेका कुछ भाग लिया भी होगा तो बहुत समय तक वह चौहानोंके अधिकारमें नहीं रहा होगा।

तबकाते नासिरीसे पाया जाता है कि, "शम्सुद्दीनके मरने पर हिन्दुओंने रणथंभोरपर घेरा डाला। उस समय सुल्तान रजिया (बेगम) ने मलिक कुतबुद्दीनको वहाँपर भेजा। परन्तु वहाँ पहुँचकर उसने किलेके अंदरकी मुसलमान फौजको बाहर बुला लिया और किलेको तोड़ दिल्ली लौट गया।" यह घटना हि० स० ६३४ (वि० स० १२९४-ई० स० १२३७) में हुई थी। अतः उसी समय बाहड़देवने रणथंभोर पर अधिकार कर लिया होगा।

फरिश्ताने लिखा है कि, "कुछ स्वतंत्र हिन्दू राजाओंने मिलकर रणथंभोरका किला घेर लिया था। परन्तु रजिया बेगमके भेजे हुए सेना-पति कुतबुद्दीन हसनके पहुँचते ही वे लोग चले गये[1]।"

(१) Birgg's Farishta, Vol. I, P. 219.

फरिश्ताका यह लेख केवल मुसलमानोंकी हारको छिपानेके लिये ही लिखा गया है। क्यों कि तबकाते नासिरी उसी समयकी बनी होनेसे अधिक विश्वासयोग्य है।

तबकाते नासिरीमें आगे चलकर लिखा है कि, "नासिरुद्दीन महमूदशाहके समय हि० सं० ६४६ (वि० सं० १३०६-ई० स० १२४९०) में उलगखां, बड़ी भारी सेनाके साथ, हिन्दुस्तानके सबसे बड़े राजा बाहड़देवके देशको व मेवाड़के पहाड़ी प्रदेशको नष्ट करनेकी इच्छासे, रणथंभोरकी तरफ भेजा गया। वहाँ पहुँच उसने उस देशको नष्ट कर अच्छी तरहसे लूटा। उक्त हिजरी सनके जिलहिज महीनेमें उलगखांके साथका मालिक बहाउद्दीन ऐबक रणथंभोरके किलेके पास मारा गया। उलगखांके सिपाही बहुतसे हिन्दुओंको मार दिल्लीको लौट गये[1]।"

"फिर हि० स० ६५१ (वि० स० १३१०-ई० स० १२५३) में उलगखां नागोर गया और वहाँसे ससैन्य रणथंभोरकी तरफ रवाना हुआ। जब यह वृत्तान्त हिंदुस्तानके सबसे बड़े प्रसिद्ध वीर और कुलीन राजा बाहडदेवने सुना तब इसने उलगखाको हरानेके लिए फौज एकत्रित की। यद्यपि इसकी सेना बहुत बड़ी थी, तथापि बहुतसा सामान आदि[2] छोडकर इसको मुसलमानोंके सामनेसे भागना पड़ा।"

उपर्युक्त बातोंसे विदित होता है कि रणथंभोर पर मुसलमानोंने दो बार हमला किया; जिसमें पहली बार उनको हारना पड़ा और दूसरी बार उनकी विजय हुई। परन्तु पिछली बार भी उलगखां केवल देशको लूटकर ही लौट गया और रणथंभोरपर चोहानोंका अधिकार बना ही रहा।

हम्मीर-महाकाव्यमें इसका १२ वर्ष राज्य करना लिखा है। परन्तु यह ठीक नहीं प्रतीत होता। क्योंकि हि० स० ६३४ (वि० स० १२९४-

(१) Elliot's History of India, Vol. II, 367. (२) Elliot's History of India, Vol. II

ई० सं० १२२७) में इसने मुसलमानोंसे रणथंभोरका किला छीना और हि० स० ६५१ (ई० सं० १३१०-ई० स० १२५२) में यह दूसरी बार उलगखांसे लड़ा। इसीसे इसका १७ वर्ष राज्य करना सिद्ध होता है और सम्भव है कि इसके बाद भी कुछ समय तक यह जीवित रहा हो।

हम पहले लिख चुके हैं कि इसके समय नरवरपर प्रतापी राजा चाहड़-देवका अधिकार था। यह राजा बड़ा वीर था और इसके पास भी बहुत बड़ी सेना थी। इसने उलगखांको भी हराया था। तबकाते नासि-रीकी पुस्तकोंमें लेख-दोषसे कई स्थानोंपर इसके नामकी जगह 'बाहर' नाम भी पढ़ा जाता है। इसीके आधारपर एडवर्ड टॉमस साहबने उपर्युक्त बाहड़ (वाग्भट) देवका और नरवरके चाहड़देवका एक ही होना अनु-मान कर लिया है और जनरल कनिंगहामने भी इसमें अपनी अनुमति जतलाई है। परन्तु नरवरके लेखोंमें उक्त चाहडदेवका नाम स्पष्ट लिखा मिलनेसे उक्त अनुमान ठीक प्रतीत नहीं होता। नरवरके चाहड़देवका पुत्र आसलदेव था जो उसका उत्तराधिकारी हुआ और इस (रणथंभोरके) बाहड (वाग्भट) का पुत्र और उत्तराधिकारी जैत्रसिंह था।

६-जैत्रसिंह।

यह वाग्भट (बाहड़) देवका पुत्र और उत्तराधिकारी था। इसकी रानीका नाम हीरादेवी था। इसीसे हम्मीरका जन्म हुआ था। हम्मीर-महाकाव्यमें लिखा है कि यह वि० सं० १३३९ (ई० स० १२८२) के माघ शुक्लपक्षमें अपने पुत्र हम्मीरको राज्य दे स्वयं वानप्रस्थ हो गया।

इसने रणथंभोरमें अपने नामसे 'जैत्रसागर' नामका एक तालाब बनवाया था।

इसके सुरत्ताण और वीरम नामके दो पुत्र और भी थे।

७–हम्मीर।

यह जैत्रसिंहका पुत्र था और उसके जीतेजी राज्यका स्वामी बना दिया गया।

हम्मीर-महाकाव्यमें इसके गद्दीपर बैठनेका समय वि० सं० १३३९ लिखा है। परन्तु प्रबन्धकोशके अन्तकी वंशावलीसे वि० सं० १३४२ में इसका राज्याधिकारी होना प्रकट होता है।

यह राजा बडा वीर और प्रतापी था। इसकी वीरताका एक श्लोक हम यहाँपर उद्धृत करते हैं —

वयस्या क्रोष्टार प्रतिशृणुत वद्धोऽञ्जलिरियं
किमप्याकांक्षाम क्षरति न यथा वीरचरितम्।
मृतानामस्माकं भवतु परवश्यं वपुरिदं
भवद्भिः कर्त्तव्यौ नहि नहि पराचीनचरणौ॥

अर्थात्—हे शृगालो! युद्धमें मरनेपर मेरा शरीर चाहे पराये के अधीन हो जाय पर तुमसे यही प्रार्थना है कि तुम मरे हुए मेरे शरीरको अगाडीकी तरफ ही खींचकर ले जाना ताकि उस समय भी मेरे पैर पीछेकी तरफ न हों।

इससे पाठक इसकी वीरताका अनुमान कर सकते है। इसका हठ भी बडा मशहूर है। फ्रांस देशके प्रतापी नैपोलियनकी तरह यह भी जिस बातका विचार कर लेता था उसे करके ही छोड़ता था। इसीकी द्योतक, भाषामें निम्नलिखित कहावत प्रसिद्ध है.—

'तिरिया-तेल हमीर-हठ चढ़े न दूजी बार।'

अर्थात्—स्त्रीका विवाहके पूर्वका तैलाभ्यङ्ग और हम्मीरका हठ दूसरी दफा फिर नहीं हो सकता।

हम्मीर-महाकाव्यमें इसका वृत्तान्त इस प्रकार लिखा है —

"दिल्लीश्वर अलाउद्दीनने अपने भाई उलगखासे कहा कि रणथभोरका राजा जैत्रसिंह तो मुझको कर दिया करता था, परन्तु उसका पुत्र हम्मीर नहीं देता है। यद्यपि वह बड़ा वीर है और उसका जीतना कठिन है, तथापि इस समय वह यज्ञकार्यमें लगा हुआ है, अत. यह मौका ठीक है। तुम जाकर उसके देशको विध्वंस करो। यह सुन उलगखा ८०००० सवार लेकर रवाना हुआ और वर्णनासा नदीके तीरपर पडाव डाल आसपासके गॉवोंको जलाने लगा। इसपर हम्मीरके सेनापति भीमसिंह और धर्मसिंहने जाकर उसे परास्त किया। जब युद्धमें विजय प्राप्त कर भीमसिंह रणथभोरकी तरफ चला और सैनिक वीर युद्धमें प्राप्त हुआ लूटका माल अपने अपने घर पहुँचाने चले गये तब मौका देख बची हुई फौजसे उलगखाने भीमसिंहका पीछा किया और उसे मार डाला। इस समय धर्मसिंह पीछे रह गया था। इस बातसे अप्रसन्न हो हम्मीरने उस (धर्मसिंह) की ऑखें निकलवा दीं और उसके स्थानपर अपने भाई भोजको नियत कर दिया। कुछ समय बाद राजाकी अश्वशालाके घोडोंमें बीमारी फैल गई और बहुतसे घोडे मर गये। इसपर राजाको बडी चिन्ता हुई। जब यह वृत्तान्त धर्मसिंहको मालूम हुआ तब उसने हम्मीरसे कहलाया कि यदि मुझे फिर मेरे पूर्व पदपर नियत कर दिया जाय तो जितने घोडे मरे हैं उनसे दुगने घोडे मैं आपकी भेट कर दूगा। यह सुन हम्मीर लालचमें आगया और उसने धर्मसिंहको पीछा अपने पहले स्थानपर नियत कर दिया। धर्मसिंहने भी प्रजाको लूटकर राज्यका खजाना भर दिया। इससे राजा उससे प्रसन्न रहने लगा। एकदिन धर्मसिंहका पक्ष लेकर हम्मीरने अपने भाई भोजका निरादर किया। इसपर वह काशीयात्राका बहाना कर अपने छोटे भाई पीथसिंहको ले दिल्लीके बादशाह अलाउद्दीनके पास चला गया। बादशाहने इसका बड़ा आदर सत्कार कर इसे जागीर दी।

कुछ समय बाद एक दिन दिल्लीश्वरसे भोजने निवेदन किया कि हम्मीरके प्रजाजन धर्मसिंहसे बहुत दुखित हो रहे हैं। यदि ऐसे मोके पर चढाई कर फसल नष्ट कर दी जाय तो प्रजा दुखित हो उसका साथ छोड देगी। यह सुन अलाउद्दीनने एक लाख सवार साथ दे उलगखाको रणथभोरकी तरफ भेजा। जब यह हाल हम्मीरको मौलूम हुआ तब उसने वीरम, महिमसाही, जाजदेव, गर्भरूक, रतिपाल, तीचर, मगोल, रणमल्ल, वेचर आदिको अलग अलग सेना देकर लड़नेको भेजा। इन सबोंने मिलकर उलगखॉकी सेना पर हमला किया। इससे हारकर उसे दिल्लीकी तरफ लौट जाना पडा। इसके बाद हम्मीरकी सेवामें रहनेवाले मुसलमान सरदारोंने भोजकी जागीर पर आक्रमण किया और वे पीथसिंहको पकड कर रणथभोर ले आये। यह वृत्तान्त सुन अलाउद्दीन बहुत ही क्रुद्ध हुआ और उसने अपने अधीनके नरपतियों सहित अपने भाई उलगखाको और नसरतखाको रणथभोर पर आक्रमण करनेको भेजा। इन्होंने वहॉ पहुँच दूत द्वारा हम्मीरसे कहलाया कि यदि तुम एकलाख मुहरें, चार हाथी, और तीनसौ घोडे भेट देकर अपनी कन्याका विवाह सुलतानके साथ कर दो, अथवा बादशाहकी आज्ञाका उल्लघन कर तुम्हारे पास आये हुए चार मगोल सर्दारोंको हमें सौप दो, तो हम लौट जानेको तैयार हैं। परन्तु यदि तुम हमारी बात नहीं मानोगे तो तुम्हारा सारा देश नष्ट भ्रष्ट कर दिया जायगा। यह सुन हम्मीरने क्रुद्ध हो उस दूतको सभासे निकलवा दिया। इस पर भीषण सग्राम हुआ। इस युद्धमें नसरतखा गोलेकी चोटसे मारा गया। यह खबर सुन बादशाह अलाउद्दीन सेनासहित स्वय आपहुँचा। दूसरे दिन दिन तुमुल सग्राम हुआ। इसमें ८५००० मुसलमान मारे गये। यह देख बादशाहने हम्मीरके एक सेनापति रतिपालको रणथभोरके राज्यकी लालच देकर अपनी ओर मिला लिया। रतिपालने सहकारी सेनापति रणमल्लको भी इस जालमें शरीक कर लिया और ये

दोनों अपनी अपनी सेना सहित यवन-सेनामें जा मिले। इसके बाद जब हम्मीरने अपने गोले बारूदके गोदामका निरीक्षण किया तब उसे खाली देख सब परसे उसका विश्वास उठ गया। अतः उसने अपनी शरणमें रहनेवाले यवन सेनापति महिमसाहीसे कहा कि क्षत्रियोंका तो युद्धमें प्राण देना ही धर्म है, परन्तु मेरी सम्मतिमें तुम्हारे समान विदेशियोंका नाहक सकटमें पड़ना उचित नहीं। इस लिये तुमको चाहिये कि किसी सुरक्षित स्थानमें चले जाओ। यह सुन महिमसाही अपने घर की तरफ रवाना हुआ और वहाँ पहुँच कर उसने अपने सब कुटुम्बियोंका वध कर डाला। इसके बाद लौटकर उसने हम्मीरसे निवेदन किया कि मेरे सब कुटुम्बी दूसरे स्थानपर चले जानेको तैयार है परन्तु यह स्थान छोड़नेके पूर्व वे सब एकबार आपके दर्शनके अभिलाषी हैं। आशा है, आप स्वय वहाँ चलकर उनकी इच्छा पूर्ण करेंगे। यह सुन हम्मीर अपने भाई वीरम सहित महिमसाहीके घर पर गया। परन्तु ज्यों ही वहाँ पहुँच उसने उक्त यवनसेनापतिके परिवारवालोंकी वह दशा देखी त्यों ही सहसा उस अपने गलेसे लगा लिया। अन्तमें हम्मीरने भी अन्तिम आक्रमण करनेका निश्चय कर अपनी रगदेवी आदि रानियों और पुत्री देवलदेवीको अग्निदेवके अर्पण कर किलेके द्वार खोल दिये और ससैन्य बाहर निकल शाही फौजपर आक्रमण कर दिया। कुछ समय तक युद्ध होता रहा। परन्तु अन्तमें महिमसाही, परमार क्षेत्रसिंह, वीरम आदि सेनापति मारे गये और हम्मीर भी क्षतविक्षत हो गया। यह दशा देख मुसल्मानों द्वारा अपने जीवित पकड़े जानेके भयसे स्वय ही उसने अपना गला काट परलोकका रास्ता लिया। यह घटना श्रावण शुक्ला ६ को हुई थी।"

उपर्युक्त वृत्तान्त फारसी तवारीखोंसे मिलता हुआ होनेसे बहुत कुछ सत्य है। परन्तु इसमें हम्मीरके पिता जैत्रसिंहका अलाउद्दीनको कर देना लिखा है वह ठीक प्रतीत नहीं होता, क्यों कि वि० सं० १३५३

(ई० स० १२९६) में अलाउद्दीन खिलजी गद्दीपर बैठा था। परन्तु हम्मीर उसके पूर्व ही राज्यका स्वामी हो चुका था।

इसी उपर्युक्त वृत्तान्तमें हम्मीरके भाईका नाम भोज लिखा गया है। वह शायद जैत्रसिंहका दासीपुत्र होगा। क्यों कि हम्मीर-महाकाव्यके नवें सर्गके १५४ वें श्लोकमें लिखा है कि पाण्डुके भ्राता विदुरकी तरह भोज हम्मीरका छोटा भाई था।

मिथिलाके राजा (देवीसिंहके पुत्र) शिवसिंहदेवकी सभामें विद्यापति नामक एक पण्डित था। उसने पुरुष-परीक्षा नामक पुस्तक बनाई थी। वह वि० सं० १४५६ (ई० स० १३९९) में विद्यमान था। अतः उसका समय हम्मीरके समयसे १०० वर्षके करीब ही आता है। उक्त पुस्तककी दूसरी कथामें लिखा है:—

" एक बार दिल्लीका सुलतान अलाउद्दीन अपने सेनापति महिमसाही पर बहुत क्रुद्ध हुआ। यह देख भयभीत महिमसाही रणथंभोरके राजा हम्मीरदेवकी शरणमें जा रहा। इस पर अलाउद्दीनने बडी भारी सेना ले उस किलेको घेर लिया। हम्मीरने भी युद्धका जवाब युद्धसे ही देना उचित समझा। एक दिनके युद्धके अनन्तर बादशाहने दूतद्वारा हम्मीरसे कहलाया कि तुम मेरे अपराधी महिमसाहीको मुझे दे दो, नहीं तो, कल तुम्हें भी उसीके साथ यमसदनकी यात्रा करनी पड़ेगी। इसके उत्तरमें दूतसे हम्मीरने केवल इतना ही कहा कि इसका जवाब हम तुम्हारे स्वामीको जवाबसे न देकर तलवारसे ही देंगे। अनन्तर करीब तीन वर्ष तक युद्ध होता रहा। इसमें सुलतानकी आधी सेना नष्ट हो गई। यह हाल देख उसने लौट जानेका विचार किया। परन्तु इसी समय रायमल्ल और रामपाल नामके हम्मीरके दो सेनापति अलाउद्दीनसे मिल गये और उन्होंने किलेमें खाद्य पदार्थोंके समाप्त हो जानेकी सूचना उसे दे दी। तथा यह भी विश्वास दिलाया कि दो तीन दिनमें ही हम

किले पर आपका अधिकार करवा देंगे। जब यह सूचना हम्मीरको मिली तब उसने अपने कुटुम्बकी औरतोंको अग्निदेवके अर्पण कर दिया और उधरसे निश्चिन्त हो वह सेनासहित सुलतान पर टूट पड़ा। तथा भीषण संग्रामके बाद वीरगतिको प्राप्त हुआ।"

अमीर खुसरोने तारीख अलाई नामकी पुस्तक लिखी है। इसका दूसरा नाम खजाइनुल फतूह भी है। इसके रचयिता खुसरोका जन्म हि० स० ६५१ (वि० स० १३१०–ई० स० १२५३) में और देहान्त हि० स० ७२५ (वि० स० १३८२–ई० स० १३२५) में हुआ था। उसमें लिखा है —

"सुलतान अलाउद्दीनने रणथम्भोरको घेर लिया। हिन्दू प्रत्येक वर्जमेंसे अग्निवर्षा करने लगे। यह देख मुसलमानोंने अपने बचावके लिये रेतसे भरे बोराका पुल बनाया और मजनीकोंसे किले पर मिट्टीके गोले फेंकना आरम्भ किया। बहुतसे नवीन बनाये हुए मुसल्मान यवन-सेनाको छोड़ हम्मीरकी सेनासे जा मिले। रजबसे जिल्काद महीने तक (वि० स० १३५८ के चैत्रसे श्रावण–ई० स० १३०१ मार्चसे जुलाई) तक सुलतानकी सेना किलेके नीचे डटी रही। परन्तु अन्तमें किलेमें यहाँ तक रसदकी कमी हुई कि चावलकी कीमत सोनेसे भी दुगुनी हो गई। यह हालत देख हम्मीरदेवने एक पहाड़ी पर आग जलाकर अपनी स्त्रियों आदिको उसमें जला दिया और शाही फौज पर आक्रमण कर वीरगति प्राप्त की। यह घटना हि० स० ७०० के ३ जिल्काद (वि० स० १३५८ श्रावणशुक्ला ५) की है। इसके बाद इस किलेपर मुसलमानोंका अधिकार हो गया और वहाँके वाहडदेव आदिके बनवाये हुए देवमन्दिर तोड़ डाले गये।"[1]

(१) E H I, Vol III P 75-76

अमीर खुसरो अपने रचे हुए 'आशिक' नामक काव्यमें लिखता है "रणथंभोरका राजा पिथुराय (हम्मीर) पिथोरा (पृथ्वीराज) का वंशज था। उसके पास १००५० अरबी घोड़े और हाथियोंके सिवाय सिपाही आदि भी बहुत थे। सुलतान अलाउद्दीनने उसके किलेको घेर कर मंजनीकोंसे पत्थर बरसाने आरम्भ किये। इससे किलेके मोरचे चूर चूर होकर गिरने लगे और किला पत्थरोंसे भर गया। इसी प्रकार एक महीनेके घोर युद्धके बाद किलेपर अलाउद्दीनका अधिकार हो गया और उसने उसे उलगखाके अधीन कर दिया।"

ऊपर जो किलेका एक महीनेमें फतह होना लिखा है, सो इसका तात्पर्य शायद सुलतानके स्वय वहाँ पहुचनेके एक महीने बादसे होगा।

फीरोजशाह तुगलकके समय जियाउद्दीन बर्नीने तारीख फीरोजशाही नामक पुस्तक लिखी थी। उसका रचनाकाल ई० स० १३५७ है। उसमें लिखा है:—

"दिल्लीके रायपिथोराके पोते हम्मीरदेवसे रणथभोरका किला छीननेका विचार कर अलाउद्दीनने उलगखा और नसरतखाको उसपर चढ़ाई करनेकी आज्ञा दी। उन्होंने जाकर उस किलेको घेर लिया। एक दिन नसरतखा किलेके पास पुश्ता बनवा रहा था। ऐसे समय किलेके अन्दरसे मगरबी द्वारा चलाया हुआ पत्थर उसके आ लगा। इसकी चोटसे दो ही तीन दिनमें वह मर गया। जब यह समाचार सुलतानने सुना तब स्वयं रणथभोर पहुँचा। अन्तमें बड़ी ही कठिनतासे भारी खून-खराबीके बाद सुलतानने किले पर अधिकार किया और हम्मीर देवको तथा गुजरातसे बागी होकर हम्मीरकी शरणमें रहनेवाले नवीन बनाये हुए मुसलमानोंको मार डाला। उलगखा यहाँका अधिकारी बनाया गया।"

(१) E. H I, Vol III, P 549
(२) E H I, Vol III, P. 171-179.

तारीख फरिश्ताम लिखा है —

"हि० स० ६९९ (वि० स० १३५७–ई० स० १३००) म अलाउद्दीनने अपने भाई उलगखाको और मन्त्री नसरतखाको रणथभोर पर आक्रमण करनेको भेजा । नसरतखा किलेके पास मजनीकसे चलाये हुए पत्थरके लगनेसे मारा गया । हम्मीर देवने भी २००००० फौजके साथ किलेसे बाहर आ तुमुल युद्ध किया । इसपर उलगखाको बडी भारी हानि उठाकर लौटना पडा । जब यह खबर सुलतानको मिली तब वह स्वय रणथंभोर पर चढ आया । हिन्दू भी बडी वीरतासे लडने लगे । प्रतिदिन यवन-सेनाका सहार होने लगा । इसी प्रकार लडते हुए एक वर्ष होने पर भी जब सुलतानको विजयकी कुछ भी आशा नहीं दिखाई दी, तब उसने रेतसे भरे बोरोंको तले ऊपर रखवा कर किलेपर चढनेके लिये जीने बनवाये और उसी रास्तसे घुस मुसलमानोंने किलेपर कब्जा कर लिया । हम्मीर सकुटुम्ब मारा गया" । किलेमें पहुँचनेपर सुल तानने मुगलसर्दार अमीर महमदशाहको घायल हालतमें पडा पाया । यह सर्दार बादशाहसे बागी हो हम्मीरदेवके पास आरहा था और इसने किलेकी रक्षामें अपन शरणदाताको अच्छी सहायता दी थी । बादशाहने उससे पूछा कि यदि तुम्हारे घावोंका इलाज करवाया जाय तो तुम कितना एहसान मानोगे । यह सुन यवन वीरने उत्तर दिया कि मै तुम्हें मार तुम्हारे स्थानपर हम्मीरके पुत्रको राज्यका स्वामी बनानेकी कोशिश करूँगा । यह सुन सुलतान बहुत क्रुद्ध हुआ और महमदशाहको हाथीके पैरसे कुचलवा डाला । इस युद्धमें हम्मीरका प्रधान रत्नमल सुलतान-से मिल गया था । परन्तु किला फतह हो जाने पर सुलतानने मित्रों सहित उसे कत्ल करनेकी आज्ञा दी और कहा कि जो आदमी अपन असली स्वामीका ही खैरख्वाह न हुआ वह हमारा कैसे होगा । इसके

बाद सुलतान रणथंभोरका परगना अपने भाई उलफखां (उलगखां) को सौंप कर दिल्ली लौट गया।"

हम पहले हम्मीर-महाकाव्यसे सुलतानकी चढ़ाईका हाल उद्धृत कर चुके हैं। उसमें रणथंभोर पर अलाउद्दीनकी तीन चढ़ाइयोंका वर्णन है। परन्तु फारसी तवारीखोंसे उद्धृत किये हुए वृत्तान्तसे केवल दो बार चढ़ाई होनेका पता चलता है। अतः उक्त तीसरी चढ़ाई अलाउद्दीनकी न होकर जलालुद्दीन फीरोज खिलजीकी होगी। इस बातकी पुष्टि फरिश्ताके निम्न लिखित लेखसे होती है:—

"हि० स० ६९० (वि० स० १३४८–ई० स० १२९१) में सुलतान जलालुद्दीन फीरोज खिलजी रणथंभोरकी तरफ फसाद मिटानेके इरादेसे रवाना हुआ। परन्तु शत्रु रणथंभोरके किलेमें घुस गया। इसपर सुलतानने किलेकी परीक्षा की। पर अन्तमें वह निराश होकर उज्जैनकी तरफ चला गया।"

चन्द्रशेखर वाजपेयी नामक कविने हिन्दीमें हम्मीर-हठ नामक काव्य बनाया था। उस कविका जन्म वि० सं० १८५५ और देहान्त वि० सं० १९३२ में हुआ था। उसके रचे काव्यमें इस प्रकार लिखा है:—

"अलाउद्दीनकी मरहटी बेगमके साथ मीर महिमा नामक मंगोल सर्दारका गुप्त प्रेम हो गया था। जब बादशाहको इसका पता लगा तब मीर महिमा भागकर हम्मीरकी शरणमें चला आया। अलाउद्दीनने दूत भेजकर हम्मीरसे कहलवाया कि उक्त मीरको मेरे पास भेज दो। परन्तु हम्मीरने शरणागतकी रक्षा करना उचित जान उसके देनेसे इनकार कर दिया। इसपर सुलतान बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने हम्मीरपर

(१) Brigg's Farishta, Vol. I, P. 337-344, (२) Brigg's Farista, Vol. I, P. 301.

चढ़ाई कर दी। इस युद्धमें यद्यपि हम्मीर विजयी हुआ, तथापि उसके झुके हुए निशानको किलेकी ओर आता देख रानीने समझा कि राजा युद्धमें मारा गया। अतः उसने अपने प्राण त्याग दिये। जब हम्मीरने यह हाल देखा तब स्वयं भी तलवारसे अपना मस्तक काट डाला।"

परन्तु ऐतिहासिक पुस्तकोंमें लिखे वृत्तान्तसे भिन्न होनेके कारण इस उपर्युक्त लेखपर विश्वास नहीं किया जा सकता।

वि० सं० १८५५ में कवि जोधराजने हम्मीर-रासा नामक हिन्दी भाषाका काव्य बनाया था। यह कवि जातिका गौड़ ब्राह्मण और नीमराणाके राजा चंद्रभानका आश्रित था। इसने उपर्युक्त वृत्तान्तमें मरहटी बेगमके स्थानपर चिमना बेगम लिखा है। तथा वि० सं० ११४१ की कार्तिक वदी १२ रविवारको हम्मीरका जन्म होना माना है। यह काव्य भी ऐतिहासिक दृष्टिसे विशेष उपयोगी नहीं है।

वि० सं० १३४५ का हम्मीरके समयका एक शिलालेख मिला है। यह बूँदी राज्यके कुँवालजीके कुण्डपर लगा है।

(पृष्ठ २७८)
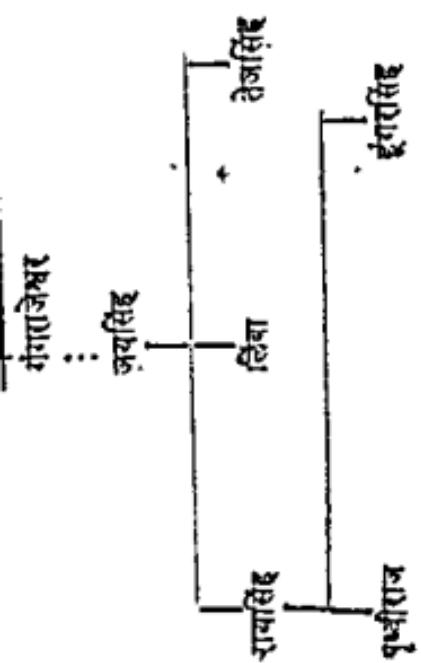
छोटा उदयपुर और बरियाके चौहान।

रणथंमोरपर मुसलमानोंका अधिकार होनेके समय हम्मीरके एक पुत्र भी था। यह बात तारीख फरिश्तासे प्रकट होती है। शायद यह गुजरातकी ओर चला गया होगा।

गुजरातमेंके नानी उमरण गाँवसे वि० स० १५२५ का एक शिलालेख मिला है। यह चौहान जयसिंहदेवके समयका है। इसमें लिखा है:—

"चौहानवशमें पृथ्वीराज आदि बहुतसे राजा हुए और चौहान श्रीहम्मीरदेवके वंशमें क्रमशः राजा रामदेव, चागदेव, चाचिगदेव, सोमदेव, पाल्हणसिंह, जितकर्ण, कुपुरावल, वीरधवल, सवराज (शिवराज), राघवदेव, त्र्यंबकभूप, गंगराजेश्वर और राजाधिराज जयसिंहदेव हुए।"

इस प्रकार उसमें १३ राजाओंके नाम दिये हैं। हम्मीरका देहान्त तारीख अलाईके अनुसार यदि वि० स० १३५८ में मान लें तो वि० स० १५२५ में जयसिंहदेवके समय उस घटनाको हुए १६७ वर्ष हो चुके थे। यदि इन वर्षोंको १३ राजाओंमें बाँटा जाय तो प्रत्येक राजाका राज्यकाल करीब १३ वर्षके आवेगा। सम्भव है उक्त लेखका रामदेव हम्मीरदेवका पुत्र ही हो। इसने रणथंमोरसे गुजरातकी तरफ जाकर पावागढ़के पास चाँपानेर नगर बसाया और वहाँपर अपना राज्य कायम किया। यही नगर बादमें भी इनकी राजधानी रहा।

हि० स० ८८९ की ५ जिल्काद (वि० सं० १५४१= ई० स० १४८४) को गुजरातके बादशाह सुल्तान महमुदशाह (बेगडा) ने चाँपानेरपर चढ़ाई की। उस समय वहाँके चौहान राजा जयसिंहने जिसको पताई रावल भी कहते थे, अपनी रानियों आदिको अग्निमें जलाकर सुलतानके साथ घोर संग्राम किया। परन्तु अन्तमें घायल हो जानेपर कैद

कर लिया गया। जब वह ५–६ महीनेमें ठीक हुआ तब सुलतानने उससे कहा कि यदि वह मुसलमानी धर्म ग्रहण कर ले तो उसे उसका राज्य लौटा दिया जाय। परन्तु उस वीरने राज्यके लोभमें आ धर्म छोड़ना अङ्गीकार नहीं किया। इस पर वह अपने प्रधान डूंगरसी सहित मार डाला गया।

फरिश्तासे पाया जाता है कि ऊपर लिखे समयसे तीन दिन पूर्व ही उक्त किला सुलतानके अधिकारमें आ गया था।

जयसिंहदेवके तीन पुत्र थे—रायसिंह, लिंबा और तेजसिंह। इनमेंसे बड़े पुत्र रायसिंहका तो अपने पिताकी विद्यमानताहीमें देहान्त हो चुका था, दूसरा पुत्र उपर्युक्त घटनाके समय भागकर कहीं चला गया और तीसरा पुत्र मुसलमानों द्वारा पकड़ा जाकर जबरदस्ती मुसलमान बना लिया गया।

मिराते सिकंदरीमें लिखा है:—

"पताई रावल (जयसिंह) के एक पुत्र और दो पुत्रियाँ थीं। पुत्र तो मुसलमान बनाया गया और पुत्रियाँ सुलतानके हरममें भेज दी गईं।"

रायसिंहके दो पुत्र थे। पृथ्वीराज और डूँगरसिंह। इन्होंने नर्मदाके उत्तरी प्रदेशमें जाकर राजपीपला और गोधराके बीचके देश पर अपना अधिकार जमाया और उसे आपसमें बाँट लिया।

पृथ्वीराजने मोहन (छोटा उदयपुर) में और डूंगरसिंहने बरियामें अपना राज्य कायम किया। इन्हीके वंशज अभी तक उक्त देशोंके अधिपति हैं।

सांभरके चौहानोंका नकशा।

संख्या	राजाओंका नाम	परस्परका सम्बन्ध	ज्ञात समय	समकालीन राजा ओर उनके ज्ञात समय
१	चाहमान			
२	वासुदेव	नं० १ के वंशमें		
३	सामन्तदेव	नं० २ का पुत्र		
४	जयराज	नं० ३ का पुत्र		
५	विग्रहराज (पहला)	नं० ४ का पुत्र		
६	चन्द्रराज (पहला)	नं० ५ का पुत्र		
७	गोपेन्द्रराज	नं० ६ का छोटाभाई		
८	दुर्लभ	नं० ७ का उत्तराधिकारी		जुनैद (हि० स० १०५-१२५)
९	गूवक (पहला)	नं० ८ का उत्तराधिकारी		नागावलोक वि० स० ८१३
१०	चन्द्रराज (दूसरा)	नं० ९ का पुत्र		
११	गूवक (दूसरा)	नं० १० का पुत्र		
१२	चन्दनराज	नं० ११ का पुत्र		तोमर रुद्रेण
१३	वाक्पतिराज	नं० १२ का पुत्र		तन्त्रपाल
१४	सिंहराज	नं० १३ का पुत्र		लवण, नासिरुद्दीन
१५	विग्रहराज (दूसरा)	नं० १४ का पुत्र	वि० स० १०३०	चौलुक्य मूलराज वि० स० १०१७ से १०५२
१६	दुर्लभराज (दूसरा)	नं० १५ का छोटाभाई		
१७	गोविन्दराज	नं० १६ का छोटाभाई		
१८	वाक्पतिराज (दूसरा)	नं० १७ का पुत्र		

संख्या	राजाओंका नाम	परस्परका सबन्ध	ज्ञात समय	समकालीन राजा ओर उनके ज्ञात समय
१९	वीर्यराम	नं० १८ का पुत्र		परमार भोज वि०सं० १०७९, १०७८, १०९९ महमूद गजनी ई० स० १०२४
२०	चामुंड	नं० १९ का छोटाभाई		
२१	दुर्लभ (तीसरा)	नं० २० का उत्तराधिकारी		परमार उदयादित्य वि० स० १११६, ११३७, ११४३ चौलुक्य कर्ण वि० सं० ११२० से ११५०
२२	वीसल (तीसरा)	नं० २१ का छोटाभाई		
२३	पृथ्वीराज (पहला)	नं० २२ का पुत्र		
२४	अजयदेव	नं० २३ का पुत्र		
२५	अर्णोराज	नं० २४ का पुत्र	वि० सं० १२०७	चौलुक्य कुमारपाल वि०स०११९९से१२३०विक्रमसिंह
२६	जगद्देव	नं० २५ का पुत्र		
२७	वीसलदेव (विग्रह०चौ०)	नं० २६ का छोटाभाई	वि०सं०१२११, १२२०	
२८	अमरगांगेय	नं० २७ का पुत्र		
२९	पृथ्वीराज (दूसरा)	नं० २६ का पुत्र	वि० सं० १२२४, १२२५, १२२६	
३०	सोमेश्वर	नं० २५ का पुत्र	वि०सं०१२२६, १२२८ १२२९ १२३४	
३१	पृथ्वीराज (तीसरा)	नं० ३० का पुत्र	वि०सं०१२३६, १२३९ १२४४, १२४५	
३२	हरिराज	नं० ३१ का छोटाभाई	वि० स० ५११	चंदेल परमर्दि, शहाबुद्दीन गोरी कुतुबुद्दीन ऐबक

रणथंभोरके चौहानोंका नकशा।

संख्या	राजाओंका नाम	परस्परका संबन्ध	ज्ञातसमय	समकालीन राजा और उनके ज्ञात समय
१	गोविन्दराज	पृथ्वीराज तृतीयका पुत्र		कुतबुद्दीन एबक
२	बाल्हणदेव	नं० १ का उत्तराधिकारी	वि० सं० १२७२	शम्सुद्दीन अल्तमश
३	प्रह्लाददेव	नं० २ का पुत्र		
४	वीरनारायण	नं० ३ का पुत्र		शम्सुद्दीन अल्तमश
५	वाग्भट	नं० ३ का छोटा भाई		नासिरुद्दीन महमूदशाह
६	जैत्रसिंह	नं० ५ का पुत्र		
७	हम्मीर	नं० ६ का पुत्र	वि०सं०१३४५,१३५८	अलाउद्दीन खिलजी

नाडोल और जालोरके चौहान ।

हम पहले वाक्पतिराज (प्रथम) के वर्णनमें लिख चुके हैं कि उसके दूसरे पुत्र लक्ष्मणराजने नाडोल (मारवाड) में अपना अलग राज्य स्थापित किया था ।

१-लक्ष्मण ।

यह वाक्पतिराज प्रथमका दूसरा पुत्र था और इसने साँभरसे आकर नाडोलमें अपना राज्य स्थापित किया ।

वि० स० १०१७ (ई० स० ९६०) में सोलंकी राजा मूलराजने गुजरातके अन्तिम चावड़ा राजा सामन्तसिंहको मारकर उसके राज्य पर अधिकार कर लिया था । सम्भव है उसी अवसरमें लक्ष्मणने भी नाडोल पर अपना कब्जा कर लिया होगा ।

इसका दूसरा नाम राव लाखणसी भी था और इसी नामसे यह राजपूतानेमें अबतक प्रसिद्ध है ।

कर्नल टॉडने अपने राजस्थानमें लिखा है[1] कि नाडोलसे उक्त लाखणसीके दो लेख मिले थे । उनमेंसे एक वि० स० १०२४ का और दूसरा वि० स० १०३९ का था । ये दोनों लेख उन्होंने रायल एशियाटिक सोसाइटीको भेट किये थे । उनमेंसे पिछले लेखमें लिखा था कि—" राव लाखणसी वि० स० १०३९ में पाटण नगरके दरवाजेतक चुंगी वसूल करता था और उस समय मेवाड पर भी उसीका अधिकार था । " परन्तु यह बात सम्भव प्रतीत नहीं होती । क्योंकि एक तो उस समय नाडोलके निकट ही हठूंडी गाँवमें राठोडोंका स्वतंत्र राज्य था और गोडवाडका बहुतसा प्रदेश आबूके परमारोंके अधीन था । इससे प्रकट होता है कि लक्ष्मण एक साधारण राजा था । दूसरा उस समय पाटण (गुजरात)

(१) Pajsthan, Vol. I. P 232

पर चौलुक्य मूलदेवका और मेवाड़पर शक्तिकुमार या उसके पुत्र शुचि-वर्माका अधिकार था । ये दोनों राजा लक्ष्मणसे अधिक प्रतापी थे ।

राजस्थानमें यह भी लिखा है कि "सुबुक्तगीनने नाडोलपर चढ़ाई की थी और शायद नाडोलवालोंने शहाबुद्दीनगोरीकी अधीनता स्वीकार कर ली थी। क्योंकि नाडोलसे मिले हुए सिक्कोंपर एक तरफ राजाका नाम और दूसरी तरफ सुलतानका नाम लिखा होता है ।" परन्तु यह बात भी सिद्ध नहीं होती । क्यों कि न तो सुबुक्तगीन ही लाहौरसे आगे बढ़ा था, न उदयसिंह तक इन्होंने दिल्लीकी अधीनता ही स्वीकार की थी और न अभीतक इनका चलाया हुआ एक भी सिक्का किसीके देखनेमें आया है ।

यद्यपि इसके समयका एक भी लेख अभीतक नहीं मिला है, तथापि नाडोलमेंकी सूरजपोल पर केल्हणके समयका वि० सं० १२२३ का लेख लगा है । इसमें प्रसंगवश लाखणका नाम, और समय वि० सं० १०३९ लिखा हुआ है । उक्त सूरजपोल और नाडोलका किला इसीका बनाया हुआ समझा जाता है । इसका देहान्त वि० सं० १०४० के बाद शीघ्र ही हुआ होगा, क्योंकि सूंधा पहाड़ी परके मन्दिरके लेखमें लिखा है कि इसका पौत्र बलिराज मालवेके प्रसिद्ध राजा वाक्पतिराज द्वितीय (मुंज) का समकालीन था और उक्त परमार राजाका देहान्त वि० सं० १०५० और १०५६ के बीच हुआ था ।

इसके दो पुत्र थे, शोभित और विग्रहराज ।

२–शोभित ।

यह लक्ष्मणका बड़ा पुत्र और उत्तराधिकारी था ।

इसका दूसरा नाम सोहिय भी था । सूंधा पहाड़ी परके लेखमें इसको आबूका जीतनेवाला लिखा है । यथा–" तस्माद्विमाद्रिभवनाथयशोपहारी श्रीशोभितोऽजनि नृपो... "

(१) डायरेक्टर जनरलकी १९०७–८ की रिपोर्ट जिल्द २ पेज २२८,

३-बलिराज ।

यह शोभितका पुत्र और उत्तराधिकारी था ।

सूंधा पहाड़ीके लेसमें लिखा है:—"...ऽस्य तनूद्भवोथ । गाम्भीर्यधैर्य-सद्नं व(ब)लिराजदेवो यो मुञ्जराजव(ब)लमंगमचीकरत्तं ॥ ७ ॥"

अर्थात् बलिराजने मुंजकी सेनाको हराया ।

यह मुंज मालवेका प्रसिद्ध परमार राजा ही होना चाहिये । हथूंडीके लेखसे पता चलता है कि जिस समय मालवेके परमार राजा मुञ्जने मेवाडपर चढाई की थी, उस समय हथूंडीके राठोड-वंशी राजा धवलने मेवाडवालोंकी सहायता की थी । शायद पड़ोसी होनेके कारण इसी युद्धमें बलिराज भी धवलके साथ मेवाडकी सहायतार्थ गया होगा और उपर्युक्त श्लोकका तात्पर्य भी सम्भवत: इसी युद्धसे होगा ।

४-विग्रहपाल ।

यह लक्ष्मणका पुत्र और शोभितका छोटा भाई था । अपने भतीजे बलिराजके पीछे राज्यका स्वामी हुआ । परन्तु उपर्युक्त सूंधा पहाड़ीके लेसमें इसका नाम नहीं है । उसमें बलिराजके बाद उसके भतीजे महीन्दुका और उसके पीछे उसके पुत्र अश्वपाल और पौत्र अहिल्लका होना लिखा है । परन्तु पण्डित गौरीशंकर ओझाने नाडोलसे मिले वि० सं० १२१८ के दो ताम्रपत्रोंसे इसका नाम उद्धृत किया है । ये ताम्रपत्र सूंधा पहाड़ीके लेखसे १०१ वर्ष पूर्वके होनेसे अधिक विश्वास-योग्य हैं ।

५-महेन्द्र (महीन्दु) ।

यह विग्रहपालका पुत्र था ।

उपर्युक्त सूंधाके लेखमें इसका नाम महीन्दु लिखा है और इसे बलिराजका उत्तराधिकारी माना है ।

(१) J. B. As Soc, Vol LXII p 321.

हथूंडीके लेखके ११ वें श्लोकसे विदित होता है कि, जिस समय (चौलुक्य) दुर्लभराजकी सेनाने महेन्द्रको सताया था उस समय राष्ट्रकूट राजा धवलने इसकी सहायता की थी।

प्रोफेसर डी० आर० भाण्डारकरने इस दुर्लभराजको विग्रहराजका भाई और उत्तराधिकारी लिखा है[1]। पर वास्तवमें यह चामुण्डराजका पुत्र और वल्लभराजका छोटा भाई व उत्तराधिकारी था।

द्व्याश्रय काव्यमें लिखा है —

"मारवाड-नाडोलके राजा महेन्द्रने अपनी बहन दुर्लभदेवीके स्वयंवरमें गुजरातके चौलुक्य राजा दुर्लभराजको भी निमन्त्रित किया था। इसपर वह अपने छोटे भाई नागराजसहित स्वयंवरमें आया। यद्यपि वहाँपर अंग काशी आदि अनेक देशोंके राजा एकत्रित हुए थे, तथापि दुर्लभदेवीने गुजरातके राजा दुर्लभराजको ही वरमाला पहनाई। अतः महेन्द्रने अपनी दूसरी बहन लक्ष्मीका विवाह दुर्लभके छोटे भाई नागराजके साथ कर दिया।"

सम्भव है, कविने प्राचीन कवियोंकी शैलीका अनुसरण करके ही स्वयंवरमें अनेक राजाओंके एकत्रित होनेकी कल्पना की होगी।

६—अणहिल्ल।

यह महेन्द्रका पुत्र और उत्तराधिकारी था।

यद्यपि पूर्व लेखानुसार सूंधा पहाडीके लेखमें महीन्दुराज और अणहिल्लके बीचमें अश्वपाल और अहिलके नाम दिये हैं, तथापि रायबहादुर प० गौरीशंकर ओझाने नाडोलके उपर्युक्त ताम्रपत्रके आधारपर महेन्द्रके बाद अणहिल्लका ही होना माना है।

सूंधाके लेखसे प्रकट होता है "अहिलने गुजरातके राजा भीमकी सेनाको हराया।" आगे चलकर उसी लेखमें लिखा है कि "उसके बाद

(१) Ep Ind, Vol XI, p. 68.

उसका चचा अणहिल्ल राजा हुआ। इसने भी उपर्युक्त अनहिलवाडेके भीम-देवको हराया, बलपूर्वक सांभरपर अधिकार कर लिया, भोजके सेनापति (दंडाधीश) को मारा और मुसलमानोंको हराया। ”

वि० सं० १०७८ में राज्याधिकार पाते ही गुजरातके चौलुक्यराजा भीमदेवने विमलशाह नामक वैश्यको धंधुकपर चढ़ाई करनेकी आज्ञा दी थी। उसी समय शायद भीमदेवकी सेनाने नाडोल पर भी आक्रमण किया होगा। परन्तु सुंधाके लेखमें ही आगे चलकर लिखा है:-

> जज्ञे भूभृत्तदनु तनयस्तस्य बा(बा)ल्प्रसादो
> भीमक्ष्माभृच्चरणयुगलीमर्दनव्याजतो य ॥
> कुर्वन्पीडामतिव(ब)लतया मोचयामास कारा-
> गाराद्भूमीपतिमपि तथा कृष्णदेवाभिधान ॥ १८ ॥

अर्थात् अणहिल्लके पुत्र बालप्रसादने भीमके चरणोंको पकडनेके बहानेसे उसे दबाकर कृष्णको उसकी कैदसे छुडवा दिया। परन्तु इससे प्रकट होता है कि बालप्रसाद भीमका सामन्त था और सम्भव है कि अणहिल्लपरके उपर्युक्त आक्रमणके समय ही उसे अन्तमें भीमकी अधीनता स्वीकार करनी पडी हो।

प्रबन्धचिन्तामणिसे ज्ञात होता है कि जिस समय भीम सिन्धकी तरफ व्यस्त था उस समय मालवाधीश भोजके सेनापति कुलचन्द्रने आबूके परमार राजा धंधुककी सहायतार्थ अनहिलवाडेपर चढ़ाई की थी और उस नगरको नष्ट कर विजयपत्र लिखवा लिया था। इसका बदला लेनेके लिये ही भोजके अन्तसमय जब चेदीके कलचुरीवंशी राजा कर्णने मालवेपर चढ़ाई की, तब भीमने भी उसका साथ दिया। अतः सम्भव है कि भीमके सामन्तकी हैसियतसे अणहिल्ल भी उस युद्धमें सम्मिलित हुआ होगा और वहीं उपर्युक्त सेनापतिको मारा होगा।

हि० स० ४१४ (वि० स० १०८०—ई० स० १०२३) में महमूद गजनवीने सोमनाथ पर चढ़ाई की थी। उस समय वह नाडोलके मार्गसे अणहिलवाड़े होता हुआ सोमनाथ पहुँचा होगा। यह बात टॉड कृत राजस्थानसे भी सिद्ध होती है[1]।

नाडोलमें दो शिवमन्दिर हैं। इनमेंसे एक आसलेश्वर (आसापालेश्वर) का और दूसरा अणहिलेश्वरका मन्दिर कहलाता है, अतः पहला सूंधाके लेखके अश्वपालका और दूसरा इस अणहिलका बनवाया हुआ होगा। रायबहादुर पं० गौरीशंकर ओझाका अनुमान है कि यह अश्वपाल शायद् विग्रहराजका ही दूसरा नाम होगा और लेखमें गलतीसे आगे पीछे लिख दिया गया होगा। प्रोफेसर डी० आर० भाण्डारकरने अपने लेखमें सूंधाके लेखके आधार पर महेन्द्रके बाद अश्वपाल, अहिल और अणहिलका क्रमशः राजा होना माना है, परन्तु जब तक और कोई प्रमाण न मिले तब तक इस विषयमें निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता।

अणहिलके दो पुत्र थे—बालप्रसाद और जेन्द्रराज।

७—बालप्रसाद।

यह अणहिलका पुत्र और उत्तराधिकारी था।

इसने भीमदेव प्रथमको मजबूर करके उससे कृष्णदेवको छुटवा दिया था। प्रोफेसर कीलहार्न साहबके मतानुसार इस कृष्णदेवसे आबूके परमार राजा धंधुकके पुत्र कृष्णराज द्वितीयका तात्पर्य है।

नाडोलके एक ताम्रपत्रमें बालप्रसादका नाम नहीं है, परन्तु दूसरे ताम्रपत्रमें और सूंधाके लेखमें इसका नाम दिया है।

८—जेन्द्रराज।

यह अणहिलका पुत्र और अपने बड़े भाई बालप्रसादका उत्तराधिकारी था। सूंधाके लेखमें इसका नाम जिंदुराज लिखा है और उससे

(१) राजस्थान भाग १, पत्र ६५६।

यह भी विदित होता है कि इसने संडेरे (सांडेराव) नामक गाँवमें शत्रुओंको परास्त कर विजय प्राप्त की थी। यह गाँव मारवाड़–गोड़वाड़के वाली परगनेमें है।

मारवाड–सोजत परगनेके आउवा नामक गाँवमें एक कामेश्वर महादेवका मन्दिर है। उसमें वि० सं० ११३२ आश्विनकृष्णा १५ शनिवारका एक लेख लगा है। यह अणहिल्लके पुत्र जिन्द्रपाल (लिन्द्रपाल) के समयका है। यद्यपि इसमें उक्त नामोंके आगे किसी भी प्रकारकी उपाधियाँ नहीं लगी है, तथापि सम्भव है यह इसी जिन्दुराजके समयका हो।

नाडोलके वि० सं० ११९८ के रायपालके लेखमें[1] जिस जेन्द्रराजेश्वर महादेवके मन्दिरका उल्लेख है, वह सम्भवतः इसीके समयमें बनाया गया होगा।

इसके तीन पुत्र थे–पृथ्वीपाल, जोजलदेव और आसराज।

९–पृथ्वीपाल।

यह जेन्द्रराजका बड़ा पुत्र और उत्तराधिकारी था।

सूधाके लेखमें इसको गुजरात (अणहिलवाड़ा) के राजा कर्णकी सेनाका परास्त करनेवाला लिखा है। यह कर्ण चौलुक्य भीमदेव प्रथमका पुत्र था।

पृथ्वीपालने पृथ्वीपालेश्वर महादेवका मन्दिर भी बनवाया था।

१०–जोजलदेव।

यह जेन्द्राजका पुत्र और पृथ्वीपालका छोटा भाई था, तथा उसके पीछे गद्दीपर बैठा।

इसका दूसरा नाम योजक भी लिखा है। सूंधाके लेखमें लिखा है कि

(१) Ep Ind, Vol XI, P 37.

यह बलवान् होनेके कारण अणहिलपुर (अणहिलपाटण–गुजरात) में भी सुखसे रहता था।

इससे प्रकट होता है कि यह उस समय चौलुक्योंके प्रधान सामन्तोंमें था। वि० सं० ११४७ (ई०स० १०९०) के इसके समयके दो लेख मिले है। इनमेसे पहला सादडी और दूसरा नाडोलसे मिला है।

इसने भी नाडोलमें जोजलेश्वर महादेवका मन्दिर बनवाया था।

११–रायपाल।

यद्यपि इसका नाम नाडोलके ताम्रपत्र और सूधाके लेखमें नहीं दिया है, तथापि वि० स० ११९८ श्रावणकृष्णा ८ और वि० सं० १२०० भाद्रपद कृष्णा ८ के इसीके समयके लेखोंमें "महाराजाधिराज श्रीरायपालदेवकल्याणविजयराज्ये" लिखा है। इससे प्रकट होता है कि उस समय नाडोलपर इसका अधिकार था। परन्तु जोजलदेवका और इसका क्या सम्बन्ध था, इस बातका पता उक्त लेखोंसे नहीं लगता। सम्भव हे यह जोजलदेवका पुत्र हो और जिस प्रकार कुँवर कीर्तिपालके ताम्रपत्रमें पृथ्वीपाल और जोजलदेवके नाम छोड दिये हैं उसी प्रकार इसका नाम भी छोड दिया गया हो तो आश्चर्य नहीं।

इसके समयके ३ लेख नाडलाई और नाडोलसे और भी मिले हैं। यथा–वि० सं० ११८९ (ई० स० ११३२) का, वि० सं० ११९५ (ई० सं० ११३८) का और वि०सं० १२०२ (ई०स० ११४५) का।

१२–अश्वराज।

यह जेन्द्रराजका छोटा पुत्र और अपने बड़े भाई जोजलदेवका उत्तराधिकारी था।

(१-२) Ep Ind., Vol XI, p 26—28

सूदाके लेखमें इसका नाम आशाराप लिखा है। उसमें यह भी लिखा है कि मालवेमें इसके खड्गद्वारा की गई सहायतासे प्रसन्न होकर सिद्ध-राज (गुजरातके चौलुक्य जयसिंह) ने इसके लिये सोनेका कलश रक्खा था।

उपर्युक्त घटना मालवेके परमार राजा नरवर्मा या उसके पुत्र यशो-वर्माके समय हुई होगी। क्योंकि अणहिलवाडेके चालुक्य सिद्धराजके और इनके बीच कई वर्षोंतक युद्ध होता रहा था। सम्भव है, उसीमें अश्वराजने भी अपना पराक्रम प्रकाशित किया हो।

इसके समयके तीन लेख मिले हैं।—

पहला वि० सं० ११६७ (ई० स० ११११) चैत्र शुक्ल १ का है। इसमें इसके युवराजका नाम कटुकराज लिखा है।

दूसरा वि० सं० ११७२ (ई० स० १११५) का है। इसमें लिखा है —

> तत्त [नू] अस्ततो भ्रात प्रतापाक्रान्तभूतल ।
> अश्वराज क्रियाधारो [भूप] तिभूभृता वर ॥ ४ ॥
> तत कटुकराजेति त [खु] नो धरणीतले ।
> नने सत्त्यागसौभाग्यविख्यात पुण्याजस्मित ॥ ५ ॥
> तद्भक्तौ पत्तन र [म्य] शमीपाटीति नाम [क] ।
> तत्रास्ति वीरनाथस्य चैत्य स्वर्गसमोपम ॥ ६ ॥

अर्थात् राजा अश्वराजका पुत्र कटुकराज हुआ। उसकी जागीरके सेवडी नामक गाँवमें वीरनाथका मन्दिर है।

उक्त लेखसे प्रकट होता है कि उस समय तक भी अश्वराज ही राजा था और उसने अपने पुत्र कटुकराजके खर्चके लिये उसे कुछ जागीर दे रक्खी थी।

तीसरा वि० सं० १२०० (ई० स० ११४३) का है। इसमें लिखा है —

' [समस्त] राजावलीविराजितमहाराजाधिराजश्रीज [य] सिंह-देवकल्याणविजयराज्ये तत्पा [द] पद्मोपजीवि [नि महा]राजश्री आश्वके " इससे प्रकट होता है कि इस समयके आसपाससे नाडोलके चौहानोंने सोलंकियोंकी अधीनता पूर्णतया स्वीकार कर ली थी । क्यों कि यद्यपि पिछले राजाओंके समयसे ही मारवाडके चौहान अणहिल-वाडेके सोलंकियोंसे कभी लडते और कभी उनकी सहायता करते आये थे, तथापि लेखोंमें पहले पहले उनकी अधीनता इसी उपर्युक्त लखमे स्वीकार की गई है ।

उपर्युक्त लेखोंमेंसे पहला और दूसरा तो सेवाडीसे मिला है, तथा तीसरा वालीसे ।

इसकी मृत्यु वि० स० १२०० में हुई होगी, क्यों कि उसी वर्षका इसके पुत्रका भी लेख मिला है ।

१२–कटुकराज ।

यह अश्वराजका पुत्र था ।

इसके समयका संवत् ३१ का एक लेख मिला है । कटुकराजके पिता अश्वराजने पूर्णतया चौलुक्योंकी अधीनता स्वीकार कर ली थी । अत यह भी सिद्धराज जयसिंहका सामन्त था । इस लिये यदि उक्त सवत ३१ को ' सिंह सवत ' मान लिया जाय, तो उस समय वि० स० १२०० होगा ।

हम पहले रायपालके वर्णनमें दिखला चुके हैं कि उसके लेख वि० स० ११८९ (ई० स० ११३२) से वि० स० १२०२ (ई० स० ११४५) तकके मिले हैं और अश्वराज और उसके पुत्र कटुराजके वि० स० ११६७ (ई० स० १११०) से वि० स० १२०० (ई० स० ११४३) तकके मिले हैं । इन लेखोंको देखकर शंका उत्पन्न होती है कि एक ही समय एक ही स्थानपर एक ही वंशके

समान उपाधिवाले दो राजा कैसे राज्य करते थे । प्रो० डी० आर० माण्डारकरका अनुमान है कि सम्भवतः कुछ समय राज्य करनेके बाद अश्वराज और कटुकराजसे अणहिलवाड़ेका राजा सिद्धराज जयसिंह अप्रसन्न हो गया और इनके स्थानपर उसने इनके कुटुम्बी रायपालको नियत कर दिया होगा। इस रायपालकी स्त्रीका नाम मानलदेवी था। इसके दो पुत्र हुए—रुद्रपाल और अमृतपाल।

उपर्युक्त प्रोफेसर भाण्डारकरको ४ लेख मिले हैं। ये वैजाक (वैजल्लदेव) के हैं। यह कुमारपालका दंडनायक और नाडोलका अधिकारी था।

इससे प्रकट होता है कि जिस समय वि० सं० १२०७ के निकट कुमारपालने सांभरपर हमला किया और अर्णोराजको हराया, उस समय शायद रायपाल जिसको कुमारपालने नाडोलका राजा नियत किया था, अपने वंशकी प्रधानशाखाके राज्यकी रक्षाके लिये शाकंभरीके चौहान राजाकी तरफ हो गया होगा। तथा इसीसे कुमारपालने अश्वराज और कटुकराजकी तरह उसको भी राज्यसे दूर कर दिया होगा।

इसके प्रमाणस्वरूप उपर्युक्त ४ लेख हैं। इनमें पहला वि० सं० १२१० का बाली परगनेके भटूड गाँवसे मिला है, दूसरा वि० सं० १२१३ का सेवाड़ीके महावीरके मन्दिरमें लगा है, तीसरा, वि० स० १२१३ का घाणेरावमें है और चौथा वि० सं० १२१६ का बालीके बहुगुणमाताके मन्दिरमें लगा है। इनसे प्रकट होता है कि वि० सं० १२१० से १२१६ तक नाडोलके आसपास कुमारपालके दण्डनायक विज्जलका अधिकार था।

वि० सं० १२०९ का एक लेख पाली (मारवाड) के सोमेश्वरके मन्दिरमें लगा है। इसमें भी कुमारपालका उल्लेख है।

१४–आल्हणदेव ।

यह अश्वराजका पुत्र और कटुकराजका छोटा भाई था ।

सूंधा माताके मन्दिरके द्वितीय शिला-लेखमें लिखा है कि इसने नाडोलमें महादेवका मन्दिर बनवाया था और हर समय गुर्जराधिपति-को इसकी सहायताकी आवश्यकता पड़ती थी । तथा इसकी सेनाने सौराष्ट्रपर चढ़ाई की थी ।

वि० सं० १२०९ माघ वदि १४ शनिवारका एक लेख किराडूसे मिला है । इसमें लिखा है कि "शाकंभरी (सांभर) के विजेता कुमार-पालके विजयराज्यमें स्वामीकी कृपासे प्राप्त किया है किराडू (किराट-कूप), राड़धड़ा (लाटह्द) और शिव (शिवा) का राज्य जिसने, ऐसा राजा श्रीआल्हणदेव अपने राज्यमें प्रत्येक पक्षकी अष्टमी, एकादशी और चतुर्दशीके दिन जीवहिंसा न करनेकी आज्ञा देता है ।"

उपर्युक्त लेखोंसे प्रकट होता है कि यद्यपि चौलुक्य कुमारपाल इसके पूर्वाधिकारियोंसे अप्रसन्न हो गया था और उनको हटाकर किराडूपर उसने अपने दंडनायक विज्जलदेवको भेज दिया था, तथापि उसने आल्हणदेवसे प्रसन्न होकर उसे उसके वंशपरम्परागत राज्यका अधि-कारी बना दिया था ।

प्रबन्ध-चिन्तामणिमें लिखा है कि कुमारपालने अपने सेनापति उदयनको सौराष्ट्र (सोरठ—काठियावाड़) के मेहर (मेर) राजा सौसर पर हमला करनेको भेजा था । इस युद्धमें कुमारपालका उक्त सेनापति मारा गया और फौजको हारकर लौटना पड़ा ।

कुमारपाल-चरितसे प्रकट होता है कि अन्तमें कुमारपालने उपर्युक्त समर (सौसर) को हराकर उसकी जगह उसके पुत्रको राज्यका स्वामी बनाया । सम्भवतः इस युद्धमें आल्हणने ही खास तौरपर पराक्रम प्रका-शित किया होगा । इसीसे किराडूके लेखमें इसे सौराष्ट्रका विजेता

लिखा है । उपर्युक्त घटना वि० स० १२०५ (ई० स० ११४८) के आसपास हुई होगी । हम पहले विग्रहराज (वीसलदेव) चतुर्थके वर्णनमें लिख चुके हैं कि उसने आल्हणके चोलुक्यराजा कुमारपालका पक्ष लेनेके कारण नाडोल और जालोरपर हमलाकर उन्हें नष्ट किया थो ।

आल्हणकी स्त्रीका नाम अन्नलदेवी था। यह राठोड़ सहुलकी कन्या थी । वि० स० १२२१ (ई० स० ११६४) का इसका एक शिलालेख साडेरावसे मिला है । उस समय इसका पुत्र केल्हण राज्यका अधिकारी था । अन्नलदेवीके तीन पुत्र थे—केल्हण, गजसिंह और कीर्तिपाल ।

वि० स० १२१८ (ई० स० ११६१) श्रावण सुदि १४ का आल्हणका एक ताम्रपत्र भी नाडोलसे मिला है ।

इसने अपने तीसरे पुत्र कीर्तिपालको नाडलाईके पासके १२ गॉव-दिये थे । इसका भी वि० स० १२१८ श्रावण वदि ५ का एक ताम्रपत्र नाडोलसे मिला है ।

हम उपर वि० स० १२०९ के आल्हणदेवके लेखका उल्लेख कर चुके है । उसकी १७ वीं और १८ वीं पंक्तिमें लिखा है:—

" स्वस्तीय महारा[जश्रीआल्हणदेवस्य] श्रीमहाराजपुत्रश्रीकेल्हणदेवमेतत ॥ महाराजपुत्रगजसिंहस्य [म] त । "

इससे अनुमान होता है कि आल्हणदेवके समय उसके दोनों बड़े पुत्र राज्यका कार्य किया करते थे ।

इसके मन्त्रीका नाम सुकर्मा था । यह पोरवाड महाजन धरणीधरका पुत्र था ।

१५—केल्हण ।

यह आल्हणका पुत्र और उत्तराधिकारी था ।

---

(१) बाम्बेग्याफा इन्ड No 154 of Prof Kielhorn's Appendix to Vol V,

सुधा पहाड़ीके लेखसे प्रकट होता है कि इसने भिलिम नामक राजाको हराया, तुरुष्कोंको परास्त किया और सोमेशके मन्दिरमें सोनेका तोरण लगवाया। इस लेखमेंका भिलिम सम्भवतः देवगिरिका यादवराज-भिलिम होगा।

तुरुष्कोंसे मुसलमानोंका तात्पर्य है। तारीख फरिश्तामें लिखा है कि "हिजरी सन् ५७४ (वि० सं० १२३५= ई० स० ११७८) में मुहम्मद गोरी ऊच और मुलतानकी तरफ गया। वहाँसे रेगिस्तानके रास्ते गुजरातकी तरफ चला। उस समय भीमदेवने उसका मार्ग रोककर उसे हराया।" सम्भवतः इसी युद्धमें केल्हण और इसका भाई कीर्तिपाल भी लड़े होंगे। उपर्युक्त सोमेश महादेवका मन्दिर किराडू (मारवाड़) में अबतक विद्यमान है। इसके समयके बहुतसे लेख मारवाडसे मिले हैं। ये वि० सं० १२२१ (ई० सं० ११६४) से वि० सं० १२३६ (ई० स० ११७९) तकके हैं। परन्तु सीरोही राज्यके पालड़ी गाँवसे एक ऐसा लेख मिला है, जिससे वि० सं० १२४९ (ई० स० ११९२) तक इसका होना प्रकट होता है। यह भी चौलुक्योंका सामन्त था।

इसकी रानियोंका नाम महिबलदेवी और चाल्हणदेवी था।

१६—जयतसिंह।

यह केल्हणदेवका पुत्र और उत्तराधिकारी था।

इसके समयके दो शिलालेख मिले है—पहला वि० सं० १२३९ (ई० स० ११८२) का भीनमालसे और दूसरा वि० सं० १२५१ (ई० स० ११९४) का सादड़ीसे। पहले लेखमें इसे 'राज-पुत्र' लिखा है और दूसरेमें 'महाराजाधिराज'।

---

(१) Brigg's Farishta, Vol. I, P. 170

(२) Ep. Ind. Vol XI, P. 73. (३) B. G., Vol. I, P. 474.

तारीख ए फरिश्तामें लिखा है[1] —

"युद्धमें लग हुए घावोंके ठीक हो जाने पर कुतबुद्दीनने नहरवालेको घेरनेवाली फौजका बाली और डोलके रास्ते पीछा किया।" यहाँ पर बालीसे पालीका तात्पर्य समझना चाहिये।

ताजुलम आसिरमें लिखा है[2] —

"जब वह पाली और नाडोलके पास पहुँचा तो वहाँके किले उस खाली मिले, क्योंकि मुसलमानोंको देखते ही वहाँके लोग भाग गये थे।"

इससे अनुमान होता ह कि कुछ समयके लिये उक्त प्रदेश चौहानोंको छोडने पडे थे।

आबूपर्वतपरके अचलेश्वरके मन्दिरसे एक लेख मिला है। उसमें लिखा है कि गुहिल राजा जैत्रसिंहने नाडोलको नष्ट किया और तुरुष्क सेनाको हराया।[3] यह जैत्रसिंह वि० स० १२७० (ई० स० १२१३) से १३०९ (ई० स० १२५२) तक विद्यमान था। इससे प्रकट होता है कि कुतुबुद्दीन जब पूर्वी मारवाड पर अपना अधिकार कर चुका था तब जैत्रसिंहने नाडोल पर हमला कर मुसलमानोंको हराया होगा।

वि० स० १२६५ और १२८३ के दो लेख बाली परगनेक नाणा और बेलार गाँवोंसे मिले हैं।[4] इनसे प्रकट होता है कि उक्त समयके बीच गोडवाड पर वीसधवलदेवक पुत्र धाधलदेवका राज्य था। यद्यपि यह चाहमानवंशी ही था, तथापि प्रो० डी० आर० भाण्डारकरका अनुमान है कि यह केल्हणका वंशज नहीं था। इसके उपर्युक्त वि० स० १२८३ के लेखसे यह भी प्रकट होता है कि यह चौलुक्य अजयपालके पुत्र भीमदेव द्वितीयका सामन्त था।

---

(१) Brgg's Faritets Vol I P 196 (२) Elliot's History of India Vol. II, P 229 30 (३) J B A Soc., Vol. IV, P 48 (४) Prog Rep-Arch Surv Ind. W circle for 1908 p 49-50

नाडोलके चौहानोंका वंशवृक्ष

- १ लक्ष्मण
  - २ शोभित
    - ३ बलिराज
  - ४ विग्रहपाल
    - ५ महेन्द्र
      - अश्वपाल
      - ६ अणहिल्ल
        - ७ बालप्रसाद
        - ८ जेन्द्रराज
          - ९ पृथ्वीपाल
            - रत्नपाल
              - ११ रायपाल
                - सहजपाल(१)
                - रुद्रपाल
                - अमृतपाल
          - १० जोजल्ल
          - १२ आसराज
            - १३ कटुक
              - जयन्तसिंह
            - १४ आल्हण
              - १५ केल्हण
                - १६ जयन्तसिंह
              - गजसिंह
              - कीर्तिपाल (जालोरकी शाखा)
              - विजयसिंह (साँचोरकी शाखा)

(१) जोधपुरसे ६ मील उत्तर मण्डोर नामका पुराना गाँव है। वहाँके किलेकी खुदाईके समय एक लेख खण्ड मिला था। उसमें एक गाँवके दानका वर्णन है। इस गाँवका देनेवाला सहजपाल रायपालका पुत्र, रत्नपालका पौत्र और पृथ्वीपालका प्रपौत्र था। इसीमें रायपालकी स्त्रीका नाम पद्मलदेवी लिखा है। Arch. Sur. of India 1909-10, p. 101,

(जालोरकी शाखा)

- (१) कीर्तिपाल
  - (२) समरसिंह
    - मानवसिंह (सीरोहीकी शा०)
      - प्रताप
        - बीजड
          - लूणिग
            - तेजसिंह
              - कान्हडदेव
            - तिहुणाक
          - (लुंभा)
          - लक्ष्मण
          - लूणवर्मा
    - (३) उदयसिंह
      - (४) चाचिग
        - (५) सामन्तसिंह
          - (६) कान्हडदेव
            - वीरमदेव
          - जैसो
          - (७) मालदेव
            - कीर्तिपाल
            - (८) वणवीर
              - (९) रणवीर
        - रूपादेवी
      - चामुण्डराज
      - चाहडसिंह
    - लीलादेवी
  - लखनपाल
  - अभयपाल
  - रुद्रलदेवी

(साँचोरकी शाखा)

- (१) विजयसिंह
  - पद्मसिंह
    - शोभित
      - साल्ह
        - विक्रमसिंह
          - संग्रामसिंह
            - प्रतापसिंह

जालोरके सोनगरा चौहान।

१–कीर्तिपाल।

हम पहले आल्हणके वर्णनमें लिख चुके हैं कि उसने अपने तीसरे पुत्र कीर्तिपालको गुजारेके लिये १२ गाँव दिये थे। इसी कीर्तिपालसे चौहानोंकी सोनगरा शाखा चली।

किराडूके लेखमें लिखा है कि केल्हणका भाई कीर्तिपाल था। इसने किराडूके राजा आसलको परास्त किया, कायद्राके युद्धमें मुसलमानोंको हराया और जालोरमें अपना निवास निश्चित किया।

वि० स० १२३५ (ई० स० ११७८) का एक लेख किराडूके सोमेश्वरके मन्दिरमें लगा है। यह चौलुक्य भीमदेव द्वितीयके समयका है। इसमें इसके सामन्त मदन ब्रह्मदेवका भी उल्लेख है। प्रो० डी० आर० भाण्डारकरका अनुमान है कि शायद उपर्युक्त किराडूके लेखका आसल इसी मदन ब्रह्मदेवका उत्तराधिकारी होगा।

इसमें जो कायद्रा (कासहृद) का नाम है उससे आबू पर्वतकी तराईमेंके कायद्रा नामक गाँवसे तात्पर्य है। क्योंकि ताजुल्म आसिरमें लिखा है[१]—

"जब कुतुबुद्दीन अनहिलवाडे पर हमला करनेके लिये अजमेरसे रवाना हुआ तब रायकरन और दारावर्सकी अधीनतामें आबूकी तराईमें बहुतसे हिन्दू योद्धा एकत्रित हो गये और रास्ता रोककर डट गये। परन्तु मुसलमानोंने उस स्थानपर उनसे लडनेकी हिम्मत न की, क्योंकि उसी स्थानपर लडकर सुलतान मुहम्मद साम गोरी जखमी हो चुका था।"

(१) Elliot's History of India Vol I, P. 170

इससे प्रकट होता है कि उपर्युक्त कासहृद्से आबूके पास (सीरोही राज्यमें) के कायद्रा गाँवसे ही तात्पर्य है और करन और दारावरससे केल्हण और धारावर्षका ही उल्लेख है । तथा उक्त केल्हणके साथ ही उसका भाई कीर्तिपाल भी युद्धमें सम्मिलित हुआ होगा । हम इस युद्धका वर्णन केल्हणके इतिहासमें भी कर चुके हैं ।

कीर्तिपालका दूसरा नाम कीतू था । कुंभलगढ़से मिले कुम्भकर्णके लेखसे प्रकट होता है कि गुहिलोत राजा कुमारसिंहने कीतूसे अपना राज्य पीछा छीन लिया था ।

किराड़के लेखके ३६ वें श्लोकमें निम्नलिखित पद लिखा है —

" श्रीजाबालिपुरेस्थित व्यरचयनड्लराजेश्वर "

इससे अनुमान होता है कि नाडोलका स्वामी कहलाने पर भी शायद इसने नाडोलकी समतलभूमिके बजाय जालोरके पार्वत्य दुर्गम और दृढ दुर्गमें रहना अधिक लाभजनक समझा होगा और वहाँपर दुर्ग बनवानेका प्रबन्ध किया होगा । लेखादिकोंमें जालोरकी पर्वतमालाका उल्लेख काचनगिरि नामसे किया गया है और काचन नाम सोनेका है, अत उसपरका नगर और दुर्ग भी सोनलगढ नामसे प्रसिद्ध था और वहाँपर रहनेके कारण कीर्तिपालके वंशज सोनगरा कहलाये । इसका तात्पर्य सोनगिरीय–अर्थात् सुवर्णगिरिके निवासियोंसे है ।

इसके तीन पुत्र थे–समरसिंह, लाखणपाल और अभयपाल । इसकी कन्याका नाम रूदलदेवी थी । इसने जालोरमें दो शिवमन्दिर बनवाये थे ।

जालोरके तोपखानेके दरवाजे पर वि० स० ११७४ का एक लेख लगा है । इसमें परमारके वंशमें क्रमश वाक्पतिराज, चन्दन, अपराजित, विज्जल, धारावर्ष, वीसल और सिंधुराजका होना लिखा है । इससे

प्रकट होता है कि कीर्तिपालने परमारोंसे जालोर छीना था। मूता नैणसीके लिखे इतिहाससे भी इस बातकी पुष्टि होती है।

२–समरसिंह।

यह कीर्तिपालका बडा पुत्र और उत्तराधिकारी था।

इसके समयके वि० स० १२३९ (ई० स० ११८२) और १२४२ (ई० स० ११८५) के दो लेख जालोरसे मिले हैं[१]।

पूर्वोक्त सूधाके लेखसे प्रकट होता है कि इसने अपने पिताके प्रारम्भ किये दुर्गके कार्यको पूर्णतया समाप्त किया और समरपुर नामक नगर बसाया। इसने चन्द्रग्रहणके समय सुवर्णसे तुला-दान भी किया था।

वि० स० १२६३ (ई० स० १२०६) का चौलुक्य भीमदेव द्वितीयका एक लेख मिला है[२]। इसमें उक्त भीमदेवकी स्त्री लीलादेवी को—"चाहु० राण समरसिंहसुता"—चौहान समरसिंहकी कन्या लिखा है।

३–उदयसिंह।

यह समरसिंहका छोटा पुत्र और मानवसिंहका छोटाभाई था। आबू-पर्वतसे मिले वि० स० १३७७ के एक लेखमें मानवसिंहको समरसिंहका पुत्र और उदयसिंहका बडा भाई लिखा है। परन्तु मानवसिंहका विशेष वृत्तान्त नहीं मिलता।

सूधाके लेखमें लिखा है कि, यह नड्डल (नाडोल), जावालिपुर, (जालोर), माण्डव्यपुर (मण्डोर), वाग्भटमेरु (पुराना बाडमेर), सूराचद्र (सूराचन्द-साचोर), राटह्रद (गुढाके पासका प्रदेश), खेड, रामसैन्य (रामसेन), श्रीमाल (भीनमाल), रत्नपुर (रतनपुरा) और सत्यपुर (साचोर) का अधिपति था।

(१) Ind Ant Vol VI, p 195
(२) Ind Ant Vol IX, p 80

इसने मुसलमानोंका मद मर्दन किया । सिंधुराजको मारा । यह भरतमुनिकृत (नाट्य) शास्त्रके तत्त्वोंको जाननेवाला और गुजरातके राजासे अजेय था । इसने जालोरमें महादेवके दो मन्दिर बनवाये थे । इसकी रानीका नाम प्रह्लादनदेवी तथा पुत्रोंका नाम चाचिगदेव और चामुण्डराज था ।

तवारीख ए फरिश्तामें लिखा है कि-" अल्तमशके सामन्तराजा उदयशाने कर देनेसे इनकार किया । इसपर बादशाहको उसपर चढ़ाईकर उसे काबूमें करना पड़ा[1] । "

ताजुलम आसिरमें लिखा है[2] —

" शम्सुद्दीनको मालूम हुआ कि जालेवर दुर्गके निवासियोंने मुसलमानों द्वारा किये गये रक्तपातका बदला लेनेका विचार किया है । इनकी पहले भी एक दो बार इसी प्रकारकी शिकायत आ चुकी थी । इस लिए शम्सुद्दीनने बड़ी भारी सेना एकत्रित की और रुक्नुद्दीन हम्जा, इज्जुद्दीन बख्तियार, नासिरुद्दीन मर्दानशाह, नासिरुद्दीनअली और बदरुद्दीन आदि वीरोंको साथ ले जालोरपर चढ़ाई की । यह खबर पाते ही उदीशाह जालोरके अजेय किलेमें जा रहा । शाही फौजने पहुँच उसे घेर लिया । इस पर उसने शाही फौजके कुछ सर्दारोंको मध्यस्थ बना माफी प्राप्त करनेका यत्न प्रारम्भ किया । इस बात पर विचार हो ही रहा था कि इसी बीच किलेके दो तीन बुर्ज तोड डाले गये । इस पर वह खुले सिर और नंगेपैर आकर सुल्तानके पैरों पर गिर पड़ा । सुल्तानने भी दया कर उसको माफ कर दिया और उसका किला उसीको लौटा दिया । इसकी एवजमें रायन कारस्वरूप एकसौ ऊंट और बीस घोडे सुल्तानकी भेट किये, इस पर सुल्तान दिल्लीको लौट गया । "

---

(१) Brigg's Farishta Vol I, P 207

(२) Elliot's History of India, Vol II, p 238

यह घटना हिजरी सन् ६०७ (वि० स० १२६८=ई० स० १२११ के निकट हुई थी।

उपर्युक्त लेखोंसे भी उदयसिंहके और मुसलमानोंके बीच युद्धका होना प्रकट होता है।

परन्तु मूता नैणसीने अपने इतिहासमें लिखा है कि यद्यपि सुलतानने उदयसिंह पर चढ़ाई की तथापि उसे वापिस लौटना पड़ा। सूंधा पहाड़ीके लेखमें भी इसे तुरुष्काधिपके मदको तोड़नेवाला लिखा है। अतः फारसी तवारीखोंमें जो सुलतान द्वारा जालोर-विजयका वृत्तान्त लिखा गया है वह बहुत कुछ कपोलकल्पित ही प्रतीत होता है और अगर वास्तवमें सुलतानने उदयसिंहको अपने अधीन किया होगा तो भी केवल नाममात्र के लिए ही। इसका एक यह भी सबूत है कि यदि सुलतानने पूर्ण विजय प्राप्त की होती तो फारसी तवारीखोंमें वहाँके मन्दिरों आदिके नष्ट करनेका उल्लेख भी अवश्य ही होता।

उपर्युक्त सूंधाके लेखमें इसे गुजरातके राजाओंसे अजेय लिखा है। निम्नलिखित घटनाओंसे इस बातकी पुष्टि होती है.—

कीर्तिकौमुदीमें लिखा है कि—" जिस समय दक्षिणसे यादवराजा सिंहणने लवणप्रसादपर चढाई की, उस समय मारवाड़के भी चार राजाओंने मिल उसपर हमला किया। परन्तु बघेल राजाने उन्हें वापिस लौटनेको बाध्य किया।"

हम्मीर-मदमर्दन काव्यमें लिखा है कि—" जिस समय लवणप्रसादके पुत्र वीरधवलपर एक तरफसे सिंघणने, दूसरी तरफसे मुसलमानोंने और तीसरी तरफसे मालवेके राजा देवपालने चढाई की, उस समय सोमसिंह, उदयसिंह और धारावर्ष नामके मारवाडके राजा भी मुसलमान सेनाकी सहायतार्थ तैयार हुए, परन्तु वीरधवलने चढाई कर उन्हें अपनी

तरफ होनेको वाध्य किया।" इनमेंका उदयसिंह उपर्युक्त चौहान राजा उदयसिंह ही होगा।

सूधाके लेखमें आगे चलकर इसे 'सिंधुराजान्तक' लिखा है। अत या तो यह शब्द सिन्धदेशके राजाके लिये लिखा गया होगा या यह उक्त नाम-का राजा होगा, जिसके पुत्र शङ्खको वघेल लवणप्रसादके राज्यसमय खंभातके पास वस्तुपालने हराया था।

इसके समयका वि० स० १३०६ (ई० स० १२४९) का एक लेख भीनमालसे मिला है।

रामचद्रकृत निर्भयभीमव्यायोगकी एक हस्तलिखित प्रतिमें लिखा है—

" सवत् १३०६ वर्षे भाद्रवावदि ६ रवावद्येह श्रीमहाराजकुल-श्रीउदयसिंहदेवकल्याणविजयराज्ये . ।"

इससे स्पष्ट है कि उपर्युक्त उदयसिंहसे भी चौहान उदयसिंहका ही तात्पर्य है।

जिनदत्तने अपने विवेकविलासके अन्तमें लिखा है कि उसने उक्त ग्रन्थकी रचना जावालिपुर (जालोर) के राजा उदयसिंहके समय की थी।

उदयसिंहके एक तीसरा पुत्र और भी था। इसका नाम बाहडदेव था। उदयसिंहके एक कन्या भी थी। इसका विवाह धोलका (गुजरातमें) के राजा वीरधवलके बडे पुत्र वीरमसे हुआ था। राजशेखररचित प्रबन्धचिन्तामणि और हर्षगणिकृत वस्तुपाल-चरित्रमें लिखा है कि वस्तुपालने वीरमके छोटे भाई वीसलको गद्दीपर बिठला दिया। इसपर

(१) Dr Peterson s First report (1882-83), App p 81

(२) Dr Bhandarkar's Search for Sanskrit Mss for 1883-84, p 156

(३) G B P Vol I, p 482,

वीरमको भागकर अपने श्वशुर उदयसिहकी शरण लेनी पडी। परन्तु वहाँपर वस्तुपालके आदेशानुसार वह मार डाला गया।

चतुर्विंशति प्रबन्धसे भी इस बातकी पुष्टि होती है। परन्तु यह वृत्तान्त अतिशयोक्तिपूर्ण प्रतीत होता है। हाँ, इतना तो अवश्य ही निश्चित है कि वीरम जालोरमें मारा गया था।

उदयसिहके समयके तीन शिलालेख भीनमालसे और भी मिले हैं। इनमें पहला वि० सं० १२६२ आश्विन सुदि १३ का, दूसरा वि० स० १२७४ भाद्रपद सुदि ९ का और तीसरा वि० स० १३०५ आश्विन सुदि ४ का है।

४–चाचिगदेव।

यह उदयसिंहका बडा पुत्र और उत्तराधिकारी था।

सूधा पहाडीके लेखमें इसे गुजरातके राजा वीरमको मारनेवाला, शल्यको नीचा दिखानेवाला, पातुक और सग नामक पुरुषोंको हरानेवाला और नहराचल पर्वतके लिये वज्र समान लिखा है।

वीरमके मारे जानेका वर्णन हम उदयसिंहके इतिहासमें लिख चुके हैं। सम्भव है कि वस्तुपालकी साजिशसे उसे उदयसिहके समय चाचिगदेवने ही मारा होगा।

घमोईके लेखमें[१] शल्य नामक राजाका उल्लेख है। यह लवणप्रसादका शत्रु था।

डी० आर० भाण्डारकरका अनुमान है कि पातुक संस्कृतके प्रताप शब्दका अपभ्रंश है और चाचिगदेवके भतीजे (मानवसिहके पुत्र) का नाम प्रतापसिंह था, तथा यह इसका समकालीन भी था।

---

(१) Ind Ant, vol VI, p 190,
(२) Ind Ant, Vol I, P 23,

संगसे सगनका तात्पर्य होगा । यह वीरधवलका साला और वनथली (जूनागढ़के पास) का राजा था।

इसके समयके ५ लेख मिले हैं । इनमें सबसे पहला वि० सं० १३१९ का पूर्वोल्लिखित सुंधा माताके मन्दिरवाला लेख है। दूसरा वि० सं० १३२६ का है, तीसरा वि० सं० १३२८ का चौथा वि० सं० १३३३ का और पाँचवाँ वि० सं० १३३४ का । इस अन्तिम लेखमें इसके दो भाइयोंके नाम दिये हैं—चाहडसिंह और चामुण्डराज ।

अजमेरके अजायबघरमें एक लेख रक्खा है । इससे प्रकट होता है कि चाचिगदेवकी रानीका नाम लक्ष्मीदेवी और कन्याका नाम रूपादेवी था । इस (रूपादेवी) का विवाह राजा तेजसिंहके साथ हुआ था, जिससे इसके क्षेत्रसिंह नामक पुत्र हुआ ।

५–सामन्तसिंह ।

सम्भवत यह चाचिगदेवका पुत्र और उत्तराधिकारी था । वि० सं० १३३९ से १३५३ तकके इसके लेख मिले हैं । इसके समय इसकी बहन रूपादेवीने वि० सं० १३४० में (जालोर परगनेके) बुडतरा गाँवमें एक बावडी बनवाई थी ।

६–कान्हड़देव ।

सम्भवत· यह सामन्तसिंहका पुत्र होगा ।

वि० सं० १३५३ के जालोरसे मिले सामन्तसिंहके समयके लेखमें लिखा है —

" ०श्रीसुवर्णगिरौ अद्येह महाराजकुलश्रीसामन्तसिंहकल्याणविजयराज्ये तत्पादपद्मोपजीविनि [रा] जश्रीकान्हडदेवराज्यधुरा [मु] द्वहमाने० "

(१) G B I , Vol I, P 200
(२) Ep Ind , Vol, XI, P 61.

इससे और ख्यातों आदिसे अनुमान होता है कि यह 'कान्हडदेव सामन्तसिंहका पुत्र था।

यद्यपि इसके राज्य समयका एक भी लेख अबतक नहीं मिला है, तथापि तारीख फरिश्तामें इसका उल्लेख है। उसमें[1] एक स्थानपर वि० स० १३६१ (ई० स० १३०४=हि० स० ७३) की अलाउद्दीनके सामन्त ऐनुलमुल्क मुलतानीकी विजयके वर्णनमें लिखा है कि जालवरका राजा नेहरदेव एनुलमुल्ककी उज्जैन आदिकी विजयको देखकर घबरा गया और उसने सुलतानकी अधीनता स्वीकार कर ली।

उसीमें आगे चलकर लिखा है[2] कि, "जालोरका राजा नहरदव दिल्लीके बादशाहके दरबारमें रहता था। एक दिन सुलतान अलाउद्दीनने गर्वमें आकर कहा कि भारतमें मेरा मुकाबला करनेवाला एक भी हिन्दू राजा नहीं रहा है। यह सुन नेहरदेवने उत्तर दिया कि यदि मैं जालोरपर आक्रमण करनेवाली शाहीसेनाको हराने योग्य सेना एकत्रित न कर सकूँ तो आप मुझे प्राणदण्ड दे सकते हैं। इसपर सुलतानने उसे सभासे चले जानेकी आज्ञा दी। परन्तु जब सुलतानको उसके सेन एकत्रित करनेका समाचार मिला तब उसे लज्जित करनेके लिये सुलतानने अपनी गुलबहिश्त नामक दासीकी अधीनतामें जालोर पर आक्रमण करनेके लिए सेना भेजी। उक्त दासी बडी वीरतासे लड़ी। परन्तु जिस समय किला फतह होनेका अवसर आया उस समय वह बीमार होकर मर गई। इस पर उसके पुत्र शाहीनने सेनाकी अधिनायकता ग्रहण की। परन्तु इसी अवसर पर नेहरदेवने किलेसे निकल शाही सेनापर हमला किया और स्वय अपने हाथसे शाहीनको कत्लकर उसकी सेनाको दिल्लीकी तरफ चार पडाव तक भगा

(१) Brigg's Farishta, Vol I, P 362,

(२) Brigg s Farishta, Vol I, P 370–71,

दिया। इस हारकी खबर पाते ही अलाउद्दीन बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने प्रसिद्ध सेनापति कमालुद्दीनकी अधीनतामें एक बडी सेना सहायतार्थ रवाना की। कमालुद्दीनने वहाँ पहुँच जालवर पर अधिकार कर लिया और नेहरदेवको मय उसके कुटुम्ब और फौजके कत्ल कर डाला तथा उसका सारा खजाना लूट लिया।"

उपर्युक्त तवारीखसे उक्त घटनाका हि० स० ७९ (वि० सं० १३६६—ई० स० १३०९) में होना पाया जाता है।

मूता नैणसीकी ख्यातमें लिखा है —

" चाचिगदेवके तीन पुत्र थे। सावतसी रावल, चाहडदेव और चन्द्र। सावतसीके पुत्रका नाम कान्हडदेव था। यह जालोरका राजा था। यह मय अपने पुत्र वीरमके बादशाहसे लडकर मारा गया। इसके मरनेपर जालोर बादशाहके कब्जेमें चला गया। उक्त घटना वि० स० १३६८-की वैशाख सुद ५ को हुई थी।"

तीर्थकल्पके कर्ता जिनप्रभसूरिने लिखा है कि वि० सं० १३६७ में अलाउद्दीनकी सेनाने साचोरके महावीर स्वामीके मन्दिरको नष्ट किया। इससे प्रकट होता है कि जालोरपर आक्रमण करते समय ही उक्त मन्दिर नष्ट किया गया होगा, क्योंकि सांचोर और जालोरका अन्तर कुछ अधिक नहीं है।

उक्त घटनाके साथ ही नाडोलके चौहानोंका मुख्य राज्य अस्त हो गया। इसीके आसपास अलाउद्दीनने सिवाना और साँचोर पर भी अपना प्रभुत्व फैला दिया। सिवानाके किलेके लेनेके विषयमें तारीख फरिश्तामें लिखा है —

" जिस समय मलिक काफूर दक्षिणमें राजा रामदेवको पराजित करनेमें लगा था, उस समय अलाउद्दीन सिवानेके राजा सीतलदेवसे दुर्ग छीननेकी कोशिश कर रहा था। क्योंकि कई बार इस कार्यमें निष्फलता हो चुकी

(१) Brigg's Farishta Vol I P 369-70

थी। तब राजा सीतलदेवने देखा कि अब अधिक दिनतक युद्ध करना कठिन है, तब उसने सोनेकी बनी हुई अपनी मूर्ति जिसके गलेमें अधीनतासूचक जंजीर पड़ी थी और सौ हाथी आदि भेटमें भेजकर मेल करना चाहा। अलाउद्दीनने उक्त वस्तुयें स्वीकार कर कहलाया कि जबतक तुम स्वयं आकर वश्यता स्वीकार न करोगे तबतक कुछ न होगा। यह सुन राजा स्वयं हाजिर हुआ और उक्त किला सुलतानके अधीन कर दिया। सुलतानने उक्त किलेको लूटनेके बाद खाली किला सीतलदेवको ही सौंप दिया। परन्तु उसके राज्यका सारा प्रदेश अपने सर्दारोंको दे दिया।"

यद्यपि उक्त तवारीखके लेखसे सीतलदेवके वंशका पता नहीं लगता है, तथापि मूता नैणसीकी ख्यातमें लिखा है कि वि० सं० १३६४ में बादशाह अलाउद्दीनने सिवानेके किलेपर कब्जा कर लिया और चौहान सीतल मारा गया।

मूता नैणसीकी ख्यातमें यह भी लिखा है कि, कीतू (कीर्तिपाल) ने परमार कुंतपालसे जालोर और परमार वीरनारायणसे सिवाना लिया था। अतः सिवानेका राजा सीतलदेव चौहान कीतू (कीर्तिपाल) का ही वंशज होगा।

७–मालदेव।

मूता नैणसीने अपनी ख्यातमें लिखा है कि, "जिस समय अलाउद्दीनने जालोरके किले पर आक्रमण किया, उस समय कान्हड़देवने अपने वंशको क़ायम रखनेके लिये अपने भाई मालवदेवको पहलेसे ही किलेसे बाहर भेज दिया था। कुछ समय तक यह इधर उधर लूटमार करता रहा; परन्तु अन्तमें बादशाहके पास दिल्लीमें जा रहा। बादशाहने प्रसन्न होकर रावल रत्नसिंहसे छीना हुआ चित्तौड़का किला और उसके आसपासका प्रदेश मालदेवको सौंप दिया। सात वर्षतक उक्त किला और प्रदेश इसके

अधिकारमें रहा । इसके बाद महाराणा हम्मीरसिंहने, जिसको मालदेवने अपनी लड़की ब्याही थी, धोखा देकर उस किलेपर अधिकार कर लिया। इसपर मालदेव मय अपने जेसा, कीर्तिपाल और वनवीर नामक तीन पुत्रोंके हम्मीरसे लड़नेको प्रस्तुत हुआ, परन्तु हम्मीरद्वारा हराया जाकर भाग गया । अन्तमें वनवीर हम्मीरकी सेवामें जा रहा और उसने उसे नीमच, जीरुन, रतनपुर और खेराडका इलाका जागीरमें प्रदान किया तथा कुछ समय बाद वनवीरने भैंसरोडपर अधिकार कर लिया और चम्बलकी तरफका वह प्रदेश फिर मेवाड राज्यमें मिला दिया । "

आगे चलकर मूता नैणसी लिखता है कि " मारवाडके राव रणमल्लने नाडोलमें कान्हडदेवके वंशजोंको एक साथ ही कत्ल करवा डाला । केवल वनवीरका पौत्र और राणका पुत्र लोला जो कि उस समय माके गर्भमें था वही एक बचा । उसके वंशजोंने मेवाड और मारवाडके राजाओंकी सेवामें रह फिरसे जागीरें प्राप्त कीं । "

कर्नल टॉडने अपने राजस्थानके इतिहासमें लिखा है कि " मालदेवने अपनी विधवा लड़कीका विवाह महाराणा हम्मीरके साथ किया था । " परन्तु यह बात बिल्कुल ही निर्मूल विदित होती है । क्यों कि जब राजपूतानेमें साधारण उच्च कुलोंमें भी अब तक इस बातसे बड़ी भारी हतक समझी जाती है, तब उक्त घटनाका होना तो बिलकुल ही असम्भव प्रतीत होता है ।

तवारीख–ए–फरिश्तामें लिखा है —

"आखिरकार चित्तौड़को अपने कब्जेमें रखना फजूल समझ सुलतानने खिजरखानको उसे खाली कर राजाके भानजेको सौंप देनेकी आज्ञा दे दी । उक्त हिन्दू राजाने थोड़े ही समयमें उस प्रदेशको फिर अपनी अगली हालत पर पहुँचा दिया और सुल्तान अलाउद्दीनके सामन्तकी हैसियतसे बराबर वहाँका प्रबन्ध करता रहा । "

(1) Brigg's Farishta Vol. II, p 363,

अबुलफजुलने आईने अकबरीमें उक्त घटनाका वर्णन दिया है और साथ ही उक्त हिन्दू राजाका नाम मालदेव लिखा है।

कर्नल टॉडने भी अलाउद्दीन द्वारा जालोरके चौहान मालदेवको चित्तौरका सौंपा जाना लिखा है[1]।

मालदेवके तीनों पुत्रोंमेंसे कीर्तिपाल (कीतू) सम्भवतः राणपूरके लेखका चौहान श्रीकीतुक ही होगा।

८–वनवीरदेव।

मुता नैणसीकी ख्यातके लेखानुसार यह मालदेवका तीसरा पुत्र था। वि० सं० १३९४ (ई० स० १३३७) का एक लेख[2] कोट सोलंकियोंसे मिला है। इससे उस समय आसलपुरमें महाराजाधिराजश्रीवणवीरदेवका राज्य करना प्रकट होता है। परन्तु इसमें महाराणा हम्मीरका उल्लेख न होनेसे सम्भव है कि उस समय यह स्वाधीन हो गया हो।

९–रणवीरदेव।

मूता नैणसीकी ख्यातमें वनवीरके पुत्रका नाम रणवीर या रणधीर लिखा है।

वि० सं० १४४३ (ई० स० १३८६) का एक लेख[3] नाडलाईसे मिला है। इससे उस समय नाड़लाईपर चौहानवंशज महाराजाधिराजश्रीवणवीरदेवके पुत्र राजा श्रीरणवीरदेवका राज्य होना पाया जाता है।

मुता नैणसीके लेखानुसार रणवीरके दो पुत्र थे—केलण और राजधर। इनमेंसे राजधर वि० सं० १४८२ में मारवाड़के राव रणमल्लके साथकी लड़ाईमें मारा गया। कर्नल टॉडने भी अपने इतिहासमें उक्त घटनाका वर्णन किया है।

---

(१) Annals & Antiquities of Rajasthan, Vol I, p 248

(२) Bhavanagar Prakrit & Sanskrit Inscriptions, p 114, -

(३) *Ep. Ind., Vol. XI*, p. 63, (४) Ep. Ind., Vol. XI, p 67

साँचोरकी शाखा ।

साँचोरसे प्रतापसिंहके समयका एक लेख मिला है । यह वि० सं० १४४४ का है । इसमें लिखा है:—

"नाडोलके चौहान राजा लक्ष्मणके वंशमें सोभितका पुत्र साल्ह हुआ । उसका लड़का विक्रमसिंह और संग्रामसिंह था और उसका पुत्र प्रतापसिंह उस समय सत्यपुर (सांचोर) पर राज्य करता था ।" आगे चलकर इसी लेखमें लिखा है-" कर्पूरधाराके वीरसीहका पुत्र माकड़ था और उसका वैरिशल्य । वैरिशल्यका पुत्र सुहड़शल्य हुआ । इसकी कन्या कामल देवीसे प्रतापसिंहका विवाह हुआ था । यह कामल देवी ऊमट वंशकी थी ।"

मूता नेणसिने चौहानोंकी साँचोर (सत्यपुर) वाली शाखाकी वंशावली इस प्रकार दी है:—

१ राव लाखन, २ बलि, ३ सोही, ४ महन्द्राव, ५ अनहल, ६ जिन्द्राव, ७ आसराव, ८ माणकराव, ९ आल्हण, १० विजैसी (इसीने साँचोर पर अधिकार किया था), ११ पदमसी, १२ सोभम, १३ सालो, १४ विक्रमसी, १५ पातो ।

अतः उपर्युक्त लेख जालोरकी शाखाका न होकर चौहानकी सांचोरवाली शाखाका है ।

---

(१) Ep. Ind., Vol. XI, p. 65–67.

नाडोलके चौहानोंका नकशा।

संख्या	राजाओंके नाम	परस्परकासम्बन्ध	ज्ञात समय	समकालीन राजा और उनके ज्ञात समय
१	लक्ष्मण	वाक्पतिराज प्रथमका पुत्र	वि० स० १०३९	चौलुक्य मूलदेव वि० सं० १०१७ से १०५२
२	शोभित	नं० १ का पुत्र		
३	बलिराज	नं० २ का पुत्र		परमार मुंज, वि० सं० १०३१, १०३६, १०५० राठोड धवल वि० सं० १०५३
४	विग्रहपाल	नं० २ का छोटा भाई		
५	महेन्द्र	नं० ४ का पुत्र		चौलुक्य दुर्लभ वि० सं० १०६६ से १०७८, राष्ट्रकूट धवल वि० सं० १०५३
६	अणहिल्ल	नं० ५ का पुत्र		चौलुक्य भीम, वि० स० १०७८ से ११२०, परमार, भोज वि० स० १०७६, १०७८, १०९९
७	बालप्रसाद	नं० ६ का पुत्र		चौलुक्य भीम, वि० सं० १०७८ से ११२०, कृष्णदेव, वि० स० १११७, ११२३
८	जेन्द्रराज	नं० ७ का छोटा भाई	वि० स० ११३२	
९	पृथ्वीपाल	नं० ८ का पुत्र		चौलुक्य कर्ण, वि० सं० ११२० से ११५०
१०	जोजलदेव	नं० ९ का छोटा भाई	वि० सं० ११४७	
११	रायपाल		वि०सं० ११८९,११९५, ११९८,१२००,१२०२	

नाडोलके चौहानोंका नकशा।

संख्या	राजाओंके नाम	परस्परकासम्बन्ध	ज्ञात समय	समकालीन राजा और उनके ज्ञातसमय
१२	अश्वराज	नं० १० का छोटा भाई	वि० सं० ११६७, ११७२, १२००	चौलुक्य जयसिंह वि० सं० ११५० से ११९९
१३	कटुकराज	नं० १२ का पुत्र	वि० सं० ११७२ सिंह-संवत ३१ (वि० सं० १२००)	चौलुक्य जयसिंह वि० सं० ११५० से ११९९
१४	आल्हणदेव	नं० १३ का छोटा भाई	वि० सं० १२०१,१२१८	चौलुक्य कुमारपाल वि० सं० ११९९ से १२३०
१५	केल्हण	नं० १४ का पुत्र	वि० सं० १२२१,१२२३, १२२४, १२२८, १२३३, १२३६, १२४९	यादव भिल्लिम (?) वि० सं० १२४४ से १२४८
१६	जयतसिंह	नं० १५ का पुत्र	वि० सं० १२३९, १२५१	कुतबुद्दीन

जालोरके चौहानोंका नकशा।

संख्या	राजाओंके नाम	परस्परकासम्बन्ध	ज्ञात समय	समकालीन राजा और उनके ज्ञातसमय
१	कीर्तिपाल	आल्हणका पुत्र	वि० स० १२१८	गुहिलोत कुमारसिंह
२	समरसिंह	नं० १ का पुत्र	वि० सं० १२३९, १२४२	
३	उदयसिंह	नं० २ का पुत्र	वि० १२६२, १२७४, १३०५, १३०६	वीरम
४	चाचिगदेव	नं० ३ का पुत्र	वि० सं० १३१९, १३२२, १३२८, १३३३ १३३४	शल्य
५	सामन्तसिंह	नं० ४ का पुत्र ?	वि० स० १३३९, १३४५, १३५२, १३५३	
६	कान्हडदेव	नं० ५ का पुत्र ?	वि० सं० १३५३, हि० स० ७०३ (वि० सं० १३६१)	
७	मालदेव	नं० ६ का छोटाभाई		
८	वनवीरदेव	नं० ७ का छोटा पुत्र	वि० सं० १३९४,	
९	रणवीरदेव	नं० ८ का पुत्र	वि० सं० १४४३	

चन्द्रावतीके देवड़ा चौहान।

१–मानसिंह।

हम पहले उदयसिंहके इतिहासमें लिख चुके हैं कि मानसिंह (मानवसिंह) उदयसिंह का बडा भाई था।

२–प्रतापसिंह।

यह मानवसिंहका पुत्र और उत्तराधिकारी था। इसका दूसरा नाम देवराज भी था और इससे इसके वंशज देवडा चौहान कहलाये।

३–बीजड़।

यह प्रतापसिंहका पुत्र और उत्तराधिकारी था। इसकी उपाधि 'दश स्यंदन' थी।

वि० सं० १३३३ (ई० स० १२७६) का इसके समयका एक लेख टोकरा (सीरोही राज्यमें) गाँवसे मिला है। इससे प्रकट होता है कि इसने आबूके पश्चिमका बहुतसा प्रदेश परमारोंसे छीन लिया था।

इसकी स्त्रीका नाम नामलदेवी था। इससे इसके ४ पुत्र हुए– लावण्य कर्ण, लुंढ (लुभा), लक्ष्मण और लूणवर्मा। इनमेंसे बड़े पुत्र लावण्यकर्णका देहान्त बीजड़के सन्मुख ही हो गया था।

१३७३ (ई० स० १३१७) के दो लेख और भी मिले हैं। ये आबू-परके विमलशाहके मन्दिरमें लगे हैं।

इसने अचलेश्वरके मन्दिरका जीर्णोद्वारकर एक गाँव उसके अर्पण किया था।

इसके दो पुत्र थे–तेजसिंह और तिहुणाक।

५–तेजसिंह।

यह लुंढका बड़ा पुत्र और उत्तराधिकारी था।

इसके समयके ३ शिलालेख मिले हैं। पहला वि० सं० १३७८ ई० स० १३२१) का, दूसरा वि० सं० १३८७ (ई० स० १३३१) न और तीसरा वि० सं० १३९३ (ई० स० १३३६) का।

इसने ३ गाँव आबू परके वशिष्ठके प्रसिद्ध मन्दिरको अर्पण केये थे।

६–कान्हड़देव।

यह तेजसिहका पुत्र और उत्तराधिकारी था।

इसके दो शिलालेख मिले हैं। इनमें पहला वि० स० १३९४ (ई० स० १३३७) का है। इससे प्रकट होता है कि इसके समय आबू परके प्रसिद्ध वशिष्ठमन्दिरका जीर्णोद्धार हुआ था। दूसरा वि० सं० १४०० (ई० स० १३४३) का है। यह आबू परके अचलेश्वरके मन्दिरमें रक्खी इसकी पत्थरकी मूर्तिके नीचे खुदा है।

इसके वंशजोंने सीरोही नगर बसाया था और अब तक भी वहाँपर इसी शाखाका राज्य है। रायबहादुर पण्डित गौरीशङ्कर ओझाने इस शाखाका विस्तृत वृत्तान्त अपने "सीरोही राज्यका इतिहास" नामक पुस्तकमें लिखा है।

परिशिष्ट ।

धौलपुरके चौहान ।

वि० सं० ८९८ की वैशाख शुक्ला २ का एक लेख धौलपुरसे मिला है। यह चौहान राजा चंड महासेनके समयका है। इसमें वहाँके चौहानोंकी वंशावली इस प्रकार दी है:—

१ ईसुक, २ महिशराम (इसकी स्त्री कगहुका इसके पीछे सती हुई थी), ३ चण्डमहासेन।

भड़ौचके चौहान ।

वि० स० ८१३ का एक ताम्रपत्र भड़ौच (गुजरात) से मिला है। उसमें वहाँके चोहानोंकी वंशावली इस प्रकार दी है —

१ महेश्वरदाम, २ भीमदाम, ३ भर्तृवृद्ध प्रथम, ४ हरदाम, ५ धूमट (यह हरदामका छोटा भाई था), ६ भर्तृवृद्ध द्वितीय (यह नागावलोकका सामन्त और भड़ौंचका राजा था)।

इस समय चौहानोंके वंशजोंका राज्य छोटा उदयपुर, बरिया, सीरोही, बूंदी और कोटा इन पाँच स्थानोंमें है। इनमेंसे पहलेकी तीन रियासतों-का सम्बन्ध तो सामरकी मुख्य शाखासे बतलाया जा चुका है और बाकीकी दो रियासतोंका सम्बन्ध भी मूता नैणसीकी ख्यात और कर्नल टॉड आदिके आधारपर नाडोलकी शाखाकी ही उपशाखामें प्रतीत होता है। इनके एक पूर्वजका नाम हरराज था। उसीके नामके अपभ्रंशसे ये लोग हाडा चौहानके नामसे प्रसिद्ध हुए।

परिशिष्ट ।

धौलपुरके चौहान ।

वि० सं० ८९८ की वैशाख शुक्ला २ का एक लेख धौलपुरसे मिल है। यह चौहान राजा चंड महासेनके समयका है । इसमें वहाँके चौहानोंकी वंशावली इस प्रकार दी है:—

१ ईसुक, २ महिशराम (इसकी स्त्री कण्हुल्ला इसके पीछे सती हुई थी), ३ चण्डमहासेन ।

भड़ौचके चौहान ।

वि० सं० ८१३ का एक ताम्रपत्र भड़ौच (गुजरात) से मिला है। उसमें वहाँके चौहानोंकी वंशावली इस प्रकार दी है.—

१ महेश्वरदाम, २ भीमदाम, ३ भर्तृवृद्ध प्रथम, ४ हरदाम, ५ धूमट (यह हरदामका छोटा भाई था), ६ भर्तृवृद्ध द्वितीय (यह नागावलोकका सामन्त और भड़ौंचका राजा था) ।

इस समय चौहानोंके वंशजोंका राज्य छोटा उदयपुर, बरिया, सीरोही, बूंदी और कोटा इन पाँच स्थानोंमें है । इनमेंसे पहलेकी तीन रियासतोंका सम्बन्ध तो साभरकी मुख्य शाखासे बतलाया जा चुका है और बाकीकी दो रियासतोंका सम्बन्ध भी मूता नैणसीकी ख्यात और कर्नल टॉड आदिके आधारपर नाडोलकी शाखाकी ही उपशाखामें प्रतीत होता है । इनके एक पूर्वजका नाम हरराज था । उसीके नामके अपभ्रंशसे ये लोग हाडा चौहानके नामसे प्रसिद्ध हुए ।